विज्ञान

भाग ८८ संख्या १

अक्टूबर १९५८, तुला २०१५ वि०, आश्विन १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [इस अङ्क का मूल्य ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञापन की दर

	एक अंक के लिये	एक वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	२० रुपया	२०० रुपया
आधा पृष्ठ	१२ रुपया	१२० रुपया
चौथाई पृष्ठ	८ रुपया	८० रुपया

प्रत्येक रंग के लिये १५ रुपया प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में कुछ अविस्मरणीय तथ्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश की सरकार ने नव रचना के जो कार्य किये वे सर्व विदित हैं। प्रारम्भ से ही विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए भी सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में अनेक महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की है हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में परिचालित योजनाओं और उनकी प्रगति देखता है किन्तु सम्पूर्ण प्रदेश की प्रगति का ज्ञान इससे कहीं अधिक विश्वास का सृजन करने में समर्थ है। नीचे के कुछ तथ्य हमारे विश्वास को बल देंगे, अपने भविष्य के प्रति नयी आस्था से हमारे हृदय को परिपूर्ण करेंगे, इसमें संदेह नहीं। कृषि सिंचाई और पशुपालन के क्षेत्र की यह प्रगति निश्चय ही उत्साहवर्द्धक है।

	१९५०—५१ में	१९५६—५७ में
खाद्योत्पादन—	१ करोड़ ७ लाख ६० हजार टन	१ करोड़ २० लाख ६० हजार टन
राजकीय साधनों से सिंचन सुविधाएं—	९८ लाख एकड़ भूमि में	१ करोड़ ८ लाख एकड़ भूमि में
पशु चिकित्सालयों की संख्या—	२२७	२८१

औद्योगिक विकास की दशा में भी इस अवधि में महत्वपूर्ण काम हुआ। यद्यपि प्रथम पंचवर्षीय योजना मुख्य रूप से कृषि-विकास की योजना थी तथापि उद्योगों की उपेक्षा नहीं की गयी। निम्नांकित तथ्य इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

प्रथम योजना की अवधि में

२ करोड़ ८६ लाख ५४ हजार रुपया कुटीर उद्योगों के विकास पर खर्च किया गया। इन उद्योगों को आर्थिक सहायता तो दी ही गयी, कच्चा माल सुलभ करने, समुन्नत हाट-व्यवस्था करने और वस्तुओं की उपयोगिता अधिकाधिक बढ़ाने में भी सहायता प्रदान की गयी। राजकीय क्षेत्र में दो बड़े उद्योग खोले गये, चुर्क सीमेंट का कारखाना एवं लखनऊ में अणुवीक्षण यन्त्र कारखाना। सीमेंट कारखाने में ७०० टन सीमेंट प्रतिदिन उत्पादित करने की क्षमता है।

१९५६—५७ में

इस वर्ष लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के निमित्त ४७ कार्यक्रम चलाये गये। १ करोड़ रुपये की लागत से कानपुर एवं आगरा में औद्योगिक संस्थानों की स्थापना की गयी। सीमेंट एवं सूक्ष्म यन्त्र कारखाने का विस्तार किया गया। नैनी में सूत कातने का कारखाना खुला। कानपुर, वाराणसी, में कारखाने खोलने के लिए अनुमति पत्र दिये गये।

और गाँवों में नये जीवन का संचार करने के उद्देश्य से सामुदायिक कल्याण योजनाओं का शुभारम्भ हुआ सन् १९५२-५३ में उत्तर प्रदेश में इन योजनाओं का व्यापक क्षेत्र में आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र में जो प्रगति हुई उसका परिचय निम्नलिखित आँकड़े देते हैं :—

प्रथम योजनावधि में	१९५७ में
२६ सामुदायिक विकास खण्ड एवं १३५ राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड खोले गये।	विकास खण्डों की कुल संख्या ३३३ हो गयी।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८८	तुला २०१५ विक्र० आश्विन १८८० शाकाब्द; अक्टूबर १९५८	संख्या १

अगले दस हजार वर्ष

जोजेफ हैरल्ड रश

गत ३० वर्षों में दो विश्व-युद्धों के कारण जो संकट उपस्थित हुए और जिस ढंग से अणुबमों ने उनको प्रोत्साहित किया, उसे कोई भी व्यक्ति उपेक्षा से नहीं देख सकता। फिर भी, आज पृथ्वी पर जीवन के लिए जो संकट प्रस्तुत हो रहा है, वह आणविक विनाश का भय नहीं है। वह तो केवल इसका अत्यन्त तीक्ष्ण एवं स्पष्ट लक्षण है। इस संकट का कारण तो सूझ बूझ की सृष्टि तथा विकास के मार्ग में उसका हस्तक्षेप है।

पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं में मानव को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है और आस-पास के वातावरण पर उसकी शक्तियों की तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। उसकी सूझ-बूझ की शक्ति ने अन्य प्राणियों को इतना अधिक पीछे छोड़ दिया है कि जीवन तथा स्वयं पृथ्वी की व्यवस्था पर मनुष्य के इस नये ज्ञान के प्रभाव का मूल्यांकन करते समय अन्य प्राणियों की उपेक्षा की जा सकती है। आज अपनी मशीनों तथा कार्य-प्रणालियों द्वारा एक ही शताब्दी में मनुष्य जितनी प्रगति कर सकता है, क्रमिक विकास के अनुसार उसमें १० लाख वर्ष लगेंगे। मनुष्य को अन्य प्राणियों से बहुत अधिक विशेषताएं प्राप्त हैं, इसलिए अन्य जीव जन्तुओं को क्षति पहुँचा कर मनुष्य की संख्या में तीव्रता से वृद्धि होती जा रही है। ऐसा भय हो रहा है कि मनुष्य पृथ्वी से अन्य समस्त जीव-जन्तुओं का उन्मूलन कर देगा। ऐसा करने के लिए वह ऐसे अपरिवर्तनीय परिवर्तन कर सकता है, जो स्वयं उसका भी पृथ्वी से नाम-निशान मिटा दें। पृथ्वी की जन संख्या में इतनी तेजी से वृद्धि होती जा रही है कि आगे चल कर उसका पृथ्वी पर समा सकना कठिन हो जायेगा।

सूझ बूझ से युक्त मस्तिष्क का विकास स्वयं जीवन के प्रथम विकास के समान क्रान्तिकारी महत्व से परिपूर्ण है। जब से मनुष्य पृथ्वी पर आया है, उसकी कुछ जातियों का विकास प्राणियों के क्रमिक विकास के अनुरूप ही रहा है। कृषि समाज का निर्माण होने से पूर्व के काल में मनुष्य ने पौधों तथा जीव-जन्तुओं के समान उनके साथ ही पृथ्वी का उपभोग किया है। मनुष्य जीवन-निर्वाह के लिए उचित रूप में पृथ्वी का

उपभोग करता रहा और इस प्रकार इसका समूचे सन्तुलन पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। जब से कृषि-कार्य प्रारम्भ हुआ, प्राकृतिक एवं कृत्रिम जीवन प्रणालियों के मध्य सीमाएँ निश्चित हो गईं पृथ्वी पर जहां तहां सभ्य और कृत्रिम नागरिक क्षेत्रों का विस्तार हो गया।

जब तक वन-प्रदेश विद्यमान रहे, मनुष्य की प्रतिभा तथा कलात्मक शक्ति का प्रभाव अज्ञात रहा। किन्तु जब देशों की सीमाएं निर्धारित हो गईं तब यह भ्रम हुआ कि असीम रूप से व्यापक क्षितिज संकुचित हो गई है वास्तव में सभी सीमाओं की समाप्ति प्रारम्भ हो गई। यहां तक कि हमारे अपने ही काल में, लोगों ने वनों को मनुष्य की उन्नति के लिए बाधक समझ लिया।

आज के लोगों के जीवन में ही संसार के वन्य प्रदेश लुप्त हो जाएंगे। यह सत्य है कि हमारे अतीत का स्मरण दिलाने के लिए कुछ क्षेत्रों को उदाहरण के रूप में सुरक्षित रख लिया जाएगा। किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि ये अवशेष भी केवल मनुष्य की अनुमति से ही रह सकेंगे और व भी उसी की शक्ति का प्रदर्शन करेंगे। बुद्धिमत्ता निषेधक वस्तु है। यह प्रतयोगिता को सहन नहीं करती। जब तक पृथ्वी पर मनुष्य का नियन्त्रण स्थापित रहेगा, तब तक कोई भी सूझ बूझ युक्त अन्य व्यवस्था संसार में जन्म नहीं ले सकती। साथ ही जीवन का कोई ऐसा उन्नत ढंग भी प्रादुर्भूत नहीं हो सकता, जो मनुष्य की सूझ बूझ के सम्मुख टिक सकता हो। जिन बातों के हम अभ्यस्त हों उनकी समाप्ति पर खेद प्रकट करना स्वाभाविक है, भले ही कुछ नई बातों को हम अपना रहे हों। फिर भी सीमाओं की समाप्ति पर जो बल दिया जा रहा है, उसका कारण यह नहीं! इस बल का मूल अभिप्राय यह है: मनुष्य द्वारा वनों और वन्य-जीवन की समाप्ति का अर्थ यह है कि पृथ्वी के उस विकासवादी क्रम की मनुष्य द्वारा अवहेलना, जिसने मनुष्य को इस पृथ्वी पर पैदा किया है। अत्यधिक भयभीत करने वाली भावना के अनुसार, यह मनुष्य का अपने ही मार्ग पर अग्रसर हो जाना होगा।

जीवन के सिद्धान्त का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेना मनुष्य के लिए एक भारी बोझ होगा।

पृथ्वी पर जीवन दो महान् परिवर्तन के कालों का सामना कर चुका है पहला परिवर्तन उस समय हुआ जब पृथ्वी पर ऐसी संगठित व्यवस्था प्रारम्भ हुई जो वातावरण से बहुत कुछ स्वतन्त्र रहते हुए अपना अस्तित्व रख सकती थी तथा अपना पुनर्निर्माण कर सकती थी। दूसरा परिवर्तन जीव-रासायनिक क्रिया के विकास काल में आया। इसके फलस्वरूप भा-संश्लेषण (फोटो सिथैसिस) व्यवस्था तथा जीवित कोषों में परिवर्तन की क्रियायें प्रारम्भ हुईं। मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त जीवन-प्रवाह इन परिवर्तनों से फला फूला और पनपा। इनसे उसमें आत्मरक्षा की शक्ति की अभिवृद्धि हुई तथा अपने आपको परिस्थिति के अनुरूप ढाल लेने की नई शक्ति उत्पन्न हुई। इस समय एक तीसरा महान् परिवर्तन सम्मुख है।

क्या वर्त्तमान परिवर्तन भूतकाल के परिवर्त्तनों से मुख्य रूप में भिन्न हैं? दो अरब वर्षों के धैर्यपूर्वक किए गए जीवित कोषों सम्बन्धी परीक्षणों के परिणामस्वरूप मनुष्य की सृष्टि हुई है। भौगोलिक काल के हिसाब से मनुष्य की सृष्टि हुए अधिक समय नहीं हुआ है। फिर भी आज मनुष्य इतना शक्ति शाली हो गया है कि अपनी सभ्यता और यहां तक कि अपने समस्त वंशजों तक का विनाश करने में समर्थ है। कुछ दिन बाद वह इतना शक्तिशाली हो सकता है कि समस्त जीव यहां तक कि पृथ्वी का भी विनाश करने में समर्थ हो जाये। बाह्य रूप में यद्यपि अपने उत्तरदायित्व तथा साथ ही अपने विनाश का कोई चिन्ह मनुष्य प्रकट नहीं करता, फिर भी भय उसकी हड्डियों तक में समा गया है संभवतः यह उसकी रक्षा कर सके।

यदि मनुष्य अपने समस्त वंशजों का पूर्ण विनाश नहीं करता, तब दो सामान्य दिशाओं में से किसी भी दिशा में वह अग्रसर हो सकता है। यदि अपने समाज की कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्याओं को वह उपेक्षा की दृष्टि से देखेगा तथा उन अधिकाधिक आवश्यक बनते

जा रहे नियन्त्रणों को वह ठुकरा देगा, जो जीवन के उसके ढंग की दृष्टि से आवश्यक हैं, तो पृथ्वी पर अपने वंशजों की संख्या वह इतनी बढ़ा लेगा जो सहन नहीं की जा सकेगी। उस दशा में प्राप्त समस्त साधनों को वह समाप्त कर देगा। इसके बाद युद्ध और क्षुधा-पीड़न द्वारा उसे फिर कृषि-जीवन की ओर लौटना होगा। इसके विपरीत यदि वह अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेगा तथा इस प्रकार की समस्याओं से विजित होने से पूर्व ही अपनी सूझ-बूझ को काम में ले लेगा तो वह वास्तविक रूप में सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज के लिए द्वार मुक्त कर देगा। प्रत्येक दशा में समाज की वर्त्तमान स्थिति असहनीय होगी।

यदि मनुष्य को जीवन की परिपक्वता प्राप्त करनी है, तो इसके लिए उसे कुछ प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। जन संख्या इतनी रखनी होगी कि पृथ्वी पर बोझ न बन जाए। बोझ की यह बात भोजन और आश्रय की दृष्टि से नहीं कही गई। यह मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की दृष्टि से कही गई है। जीवन की अन्य व्यवस्थाओं की दृष्टि से भी हमारा कुछ उत्तरदायित्व है। भौतिक उन्नति का अधिकतम लाभ एक उचित जनसंख्या को पहुँचाने की दृष्टि से समाज को बड़ी मात्रा तथा विविध रूपों में सामग्री की व्यवस्था करनी होगी तथा साथ ही इस सामग्री के उचित उपयोग के लिए भी पर्याप्त शक्ति उत्पन्न करनी होगी। यह समस्या निकट भविष्य में ही अत्यधिक उग्र बन सकती है, क्योंकि प्राप्त ईंधन तथा धातुएं शीघ्र ही समाप्त हो सकते हैं।

हमारी तात्कालिक समस्या शक्ति के स्रोत हैं। तेल और कोयले ने मनुष्य को यान्त्रिक जीवन-व्यवस्था के प्रति आकर्षित कर लिया है। मनुष्य के इस जीवन से अभ्यस्त होने से पूर्व ही इन दोनों वस्तुओं की समाप्ति हो जाएगी। यह तथ्य कि सामग्री शक्ति में परिवर्तित हो सकती है तथा ऐसे नवीन पदार्थों की खोज जिनमें रासायनिक क्रिया द्वारा आणविक न्यष्टि में विद्यमान असीम शक्ति पर नियन्त्रण किया जा सके, शक्ति के नये स्रोतों को हमारे अधिकार में ला रहे हैं। इसके अतिरिक्त और सूर्य से भी सदा शक्ति का प्रवाह होता रहता है। यह सत्य है कि यूरेनियम और थारियम के भण्डार अत्यधिक सीमित हैं, किन्तु हम यह बात जानते हैं कि हर प्रकार के द्रव्य की बनावट में इसी प्रकार की हजारों गुनी शक्ति विद्यमान है। मनुष्य १० लाख वर्ष से पृथ्वी पर विद्यमान है। इसमें से आधा समय उसने यन्त्र बनाते ही बिताया पिछले ३०० वर्षों में ही उसने कुछ ऐसे कार्य किए हैं, जिन्हें वैज्ञानिक यान्त्रिक प्रगति का नाम दिया जा सकता है। अणुशक्ति के अस्तित्व का पता तो उसे पिछले ६० वर्ष से भी कम काल में लगा है। पिछले १८ वर्ष में वह इस शक्ति को केवल एक ही तत्व से बहुत कम यात्रा में तथा न्यून क्षमता से प्राप्त करने में सफल हुआ है। यह विश्वास करना अनुचित होगा कि अवशिष्ट समय में इससे अधिक अच्छी प्रकार यह कार्य करना उसके लिए संभव नहीं है।

यदि हर वस्तु पर नियन्त्रण करने की प्रेरणा बनी रहे, तो यह बात निश्चित है कि मनुष्य उसी निश्चिंतता के साथ जीवन-व्यवस्थाओं पर भी नियन्त्रण कर सकता है जिससे अणुओं और परमाणुओं पर वह आज नियन्त्रण कर रहा है। इस विकास का अगला क्रम प्रजनन सम्बन्धी वंशानुक्रम में वांछित परिवर्तन करना होगा यह कार्य संयोगवश प्राप्त हुई उलटी-सीधी नस्लों पर निर्भर न रह कर समझ-बूझ के साथ किए गए संश्लेषण और पुनर्व्यवस्था पर आधारित होगा।

जब मनुष्य जीवन की यान्त्रिक क्रिया का नियन्त्रण सीख लेगा तब यह बात निश्चित ही है कि वह अपनी नस्लों के विकास की जीव-वैज्ञानिक क्रिया पर भी नियन्त्रण प्राप्त कर लेगा। प्रारम्भिक काल की चयन की व्यवस्था के अभाव में तथा कृत्रिम प्रजनन की हानि से जो गिरावट आएगी उसकी दृष्टि से, इस प्रकार का नियन्त्रण आवश्यक और अनिवार्य होगा। इस नियंत्रण का स्वरूप क्या होगा, इसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं।

अपने वंशानुक्रम पर इस प्रकार के समझे-बूझे नियन्त्रण का प्रभाव अत्यधिक होगा। उस दशा में मनुष्य जाति मरेगी नहीं। जब तक उत्पादन के लिए पृथ्वी से सामग्री और शक्ति मनुष्य को प्राप्त होती रहेगी तथा सूर्य इतना अधिक उष्ण नहीं होगा कि उसे भस्म कर दे या अन्य किसी ब्रह्माण्ड सम्बन्धी संकट का उसे सामना नहीं करना होगा, तब तक मनुष्य अपनी अद्भुत साहसिकता की दृष्टि से स्वतन्त्र रहेगा। उस समय तक उसकी अन्य दूरवर्ती ग्रहों और नक्षत्रों तक पहुँच भी हो जाएगी।

ये समस्त घटनाएं, जिनके कारण मनुष्य कल्पनातीत सम्मान तथा साथ ही भय की सीमा तक पहुँच गया है, उसकी सूझ-बूझ के परिणाम हैं। इस सूझ-बूझ के फलस्वरूप मनुष्य ने बहुत थोड़े काल में जो परिवर्तन किए हैं, वे क्रमिक विकास के अंतर्गत लाखों वर्ष में भी संभव नहीं थे, इन परिवर्तनों में स्वयं मनुष्य ने अपने आप में जो परिवर्तन किए हैं, उनकी संख्या भी कुछ कम नहीं। एक जंगली, स्वेच्छाचारी लुटेरे से उन्नति कर उसने सुसभ्य व्यक्ति का जो रूप धारण कर लिया है, उसका मूल्यांकन कठिन है। आज मनुष्य ने अपार शक्ति प्राप्त कर ली है, किन्तु केवल शक्ति प्राप्त कर लेने का अर्थ स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं। मनुष्य की शक्ति का साधन प्राविधिक ढंग से कार्य करने वाला एक ठोस एवं गूढ समाज है। यह समाज एक जीवित प्राणी के गुणों का प्रदर्शन करता है तथा इस पर मनुष्य का नियन्त्रण नहीं है। इसके बदले यह समाज मनुष्य पर नियन्त्रण रखता है। अन्य पशु जिस स्वाधीनता का उपभोग करते हैं, मनुष्य ने उसका सौदा कर लिया है। मेरा विश्वास है, अपनी स्वाधीनता का यह सौदा मनुष्य को अखरता है।

अपने प्राकृतिक वातावरण का परित्याग कर मनुष्य एक ऐसे मार्ग पर अग्रसर हो गया है, जिसमें या तो अन्त में समस्त वस्तुओं पर नियन्त्रण करना या सोच-समझ कर प्रत्येक वस्तु पर से नियन्त्रण हटा लेना आवश्यक है। यदि सभ्यता उसे संघटित रखती है, तो वातावरण को नियन्त्रित करने की उसकी क्षमता में आवश्यक रूप में अभिवृद्धि हो जाएगी। इस बात का स्वयं मनुष्य पर भी प्रभाव पड़ेगा। ऐसी दशा में प्रश्न साधनों के नियन्त्रण का नहीं है, अपितु उन लक्ष्यों का है, जिनकी प्राप्ति के लिए साधनों को काम में लाया जाए। अब तक मनुष्य बिना पहले से सोच-विचार किए अपनी शक्ति का उपयोग करता रहा है। उसकी स्थिति उस नवयुवक जैसी है, जो अपनी मांसपेशियों को लचीली बना रहा हो तथा अपने कार्य में जुटा न हो। शक्ति की खोज में मनुष्य ने अपनी बहुत सी स्वतन्त्रता खो दी है, यद्यपि कुछ नई स्वतन्त्रताएं भी उसे इस बीच प्राप्त हुई हैं। ऐसी दशा में उसके लिए सबसे बड़ा काम अपनी शक्ति के ऐसे उपयोग को सीखना है, जिससे उसकी स्वतन्त्रता में अभिवृद्धि हो सके।

यह स्वतन्त्रता क्या है? इसका उत्तर देने के लिए एक अन्य प्रश्न पूछा जा सकता है कि मनुष्य की सबसे अनोखी शक्ति क्या है? स्पष्ट रूप से अपने चारों ओर के वातावरण पर मनुष्य की शक्ति। इस शक्ति का रहस्य क्या है? यह रहस्य मनुष्य की स्वतन्त्रता ही है।

मनुष्य अपना निर्माण किस प्रकार करेगा, वह अपनी क्षमता को बढ़ाएगा या उसे विनष्ट कर देगा, यह बात स्वयं उसकी प्रकृति की कुछ अनिश्चित धारणाओं पर निर्भर करती है। अपनी सूझ बूझ के साधन की खोज और ज्ञान की दृष्टि से अपने विवेक और सूझ-बूझ से काम लेने के उसके प्रयत्न सर्वथा हास्यास्पद हैं इस दृष्टि से मनुष्य यूरेनियम के उस अणु के समान है, जो ओकरिज (टैनेसी) के अणु-शक्ति केन्द्र को समझने की चेष्टा कर रहा हो। वैज्ञानिक ज्ञान का प्रारम्भ आवश्यक रूप में अधिक स्पष्ट पहलुओं को लेकर होता है। मनोविज्ञान तब तक प्रगति नहीं कर सका, जब तक आत्मा, महत्वपूर्ण सिद्धान्त, उद्देश्य तथा ऐसी ही समझ में न आने वाली अन्य बातों का चिन्तन इसका प्रमुख विषय रहा। ज्ञात भौतिक सिद्धान्तों के सहारे अपनी खोज प्रारम्भ कर मनोवैज्ञानिक तथा शरीर-रचनाशास्त्री मस्तिष्क का पता लगाने में

[शेष पृष्ठ ६ पर]

विज्ञान अक्टूबर १६५८
पृष्ठ ७-६

चार्ल्स डारविन और विकासवाद का सिद्धान्त

[जटाशंकर द्विवेदी एम० एस-सी०, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

चार्ल्स डारविन का जन्म श्रूवरी के एक सम्पन्न डाक्टर रावर्ट डारविन के घर हुआ। अपने बाल्यकाल में चार्ल्स ने गिल्बर्ट व्हाइट लिखित प्राकृतिक इतिहास की पुस्तक पढ़ी। इस पुस्तक ने उन्हें बहुत प्रभावित किया और उनकी अभिरुचि प्राकृतिक तथ्यों के निरीक्षण द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की ओर हो गई। युवावस्था में बीटल के शिकार खनिजों के एकत्रीकरण और पक्षियों के स्वभाव परिचय की ओर इनका ध्यान अधिक रहा। रावर्ट डारविन का विचार अपने पुत्र को डाक्टरी पढ़ाने का था। इस हेतु उन्होंने चार्ल्स को श्रूवरी के डाक्टरी विद्यालय में प्रवेश दिलाया और डाक्टर बटलर के शिष्यत्व में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की। डाक्टरी विषयों के अध्ययन के साथ-साथ ही चार्ल्स ने अंडे एकत्र करने, मछली मारने, और अपने बगीचे में रासायनिक प्रक्रियाओं के अध्ययन करने का क्रम भी चलाया। १६ वर्ष की आयु में चार्ल्स को एडिनबरा के डाक्टरी स्कूल में विशेष अध्ययन करने के हेतु भेजा गया। कालेज के व्याख्यानों, मरीजों आदि की चीर-फाड़ की ओर आपकी विशेष रुचि नहीं थी। अपने इस विद्यार्थी-जीवन में वे पक्षियों के अध्ययन में ही विशेष रुचि लेते थे। केवल १७ वर्ष की आयु में आपने सामुद्रिक जीवों से सम्बन्धित एक अनुसंधान लेख प्रस्तुत किया।

डाक्टरी की ओर चार्ल्स की रुचि न देख उनके पिता जी ने उन्हें कैम्ब्रिज के क्राइस्टचर्च कालेज में प्रवेश दिलाया जिससे वे वहाँ से स्नातक होकर धर्माधिकारी का पद ग्रहण करने योग्य हो सकें। चार्ल्स अपने पाठ्य क्रम सम्बन्धी विषयों का केवल उतना ही अध्ययन करता था जिससे वह अपनी परीक्षा में सफल हो सके। शेष समय वह वनस्पतिविद जे० एस० हेनस्लो, प्राकृतिक अन्वेषक वान हम्बोल्ट, दार्शनिक हर्शल, भूविद प्रो० एडम सिजविक आदि के साथ वाद विवाद तथा विभिन्न विषयों के अध्ययन और मनन में ही व्यतीत करता था।

सन् १८३१ में वैज्ञानिक पर्यवेक्षण करने के विचार से संसार के विभिन्न महाद्वीपों में जाने की योजना बनी। बीगल नामक जहाज को इस कार्य के लिये उपयोग में लाने का निश्चय किया गया। केम्ब्रिज के गणितज्ञ तथा ज्योतिषविद जार्ज पीकाक को योग्य व्यक्तियों को नियुक्त करने का भार दिया गया। जार्ज पीकाक ने चार्ल्स डारविन को प्रकृतिविद के कार्य के लिये नियुक्ति पत्र भेजा। इन्हें परिवार के लोगों के विरोध और असहयोग का सामना करना पड़ा। अन्त में डारविन के दृढ़ निश्चय की विजय हुई और इन्होंने २२ वर्ष की आयु में २७ दिसम्बर १८३१ को प्लाई माउथ बन्दरगाह से समुद्री यात्रा प्रारम्भ की।

यह यात्रा ५ वर्ष चली। इस बीच में जहाज डारविन को एक स्थान पर उतार जाता और कुछ दिनों के बाद फिर चक्कर लगा कर उन्हें लेने आता। इस अवधि में डारविन महोदय उस स्थान पर भ्रमण करते, स्तनपोषी तथा अन्य पशुओं के पुरातत्वीय-अवशेष एकत्र करते, अपने पर्यवेक्षणों पर टिप्पणी लिखते और उन प्रयोगों के फलों पर विचार करते। दक्षिणी अमेरिका की यात्रा के समय वहाँ के पशुओं के पुरातत्वीय अवशेषों की परीक्षा करने पर उन्हें पता लगा कि ये अवशेष वहाँ के जीवित पशुओं से एक विशेष सामञ्जस्य रखते थे। पृथ्वी के विभिन्न तलों से प्राप्त अवशेषों की तुलना करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि जीवों के गठन में धीमी गति से परिवर्तन होते गये।

पशुओं का गठन आवश्यकतानुसार बदलता गया और जिन पशुओं ने अपने को परिस्थितिओं के अनुकूल न बना पाया उनका नाश हो गया। इससे अतिरिक्त यह भी पता लगा कि पशुओं के विकास, सफलता, विफलता तथा नाश की क्रियायें एक निश्चित क्रम से हुई। इससे पता लगता है कि पशुओं की आयु उतनी ही है जितनी इन परतों की और पशुओं में जीवित रहने के हेतु सदैव से ही संघर्ष चला आया है।

ईक्वेडर से ६०० मील पश्चिम की ओर विषुवत रेखा पर पहुँचने पर उन्होंने ग्राउन्ड फिञ्चों, मिमर्सों (mocking bird) कछुओं, छिपकलियों और एकलित द्वीपों में उत्पन्न पौदों की परीक्षा की। इस परीक्षा के परिणाम स्वरूप उनके मन में इस निश्चय ने जड़ पकड़ ली कि नवीन प्राणियों की उत्पत्ति पुरानी जातियों के विकास से हुई। यहीं पर डारविन के मन में विकासवाद के सिद्धान्त का स्फुरण हुआ। इस तथ्य की परीक्षा इन्होंने गेलप्पागोज द्वीप समूह में २० वर्ष तक प्रयोग करके की। इनकी इस धारणा को इनके प्रयोगों से और भी बल मिला।

जुलाई १८३७ में इंगलैण्ड वापस जाने पर इन्होंने जातियों के रूपान्तर पर धाराप्रवाहित रूप से पुस्तिकायें लिखीं। मानव जाति को भी सम्मिलित करके समस्त जीवों के पूर्वज एक थे इस तथ्य से उठने वाले अपवादों से डारविन महोदय अपरिचित न थे। मानव चयन द्वारा पशुओं में नवीन जातियों का निर्माण सरलता से कर लेता है। मानव जाति में भी ऐसे परिवर्तन सरलता से लाये जा सकते हैं तथा किन्तु प्रकृति में यह क्रिया किस प्रकार चलती है इसका उनके मन में स्पष्ट उत्तर न था।

सन् १८४२ में आपने विकासवाद पर ३५ पृष्ठ का एक लेख लिखा किन्तु उसे प्रकाशित न करा सके। लगभग ५० वर्ष बाद उस लेख की पाण्डुलिपि इनकी मेज की दराज में पाई गई। इसी वर्ष इन्होंने सुप्रसिद्ध "प्रवालीवाद" (Theory of Coral Reef) प्रकाशित करायी। यह सिद्धान्त इनके बीगल पर किये गये समुद्री भ्रमण के प्रयोग पर आधारित था।

सन् १८४४ ई० में आपने लगभग २३० पृष्ठ का एक वृहत सारांश लिखा। भूविद् चार्ल्स लाइल और वनस्पति विद् जोसेफ हुकर से आपने इस सारांश पर विचार विमर्श और वाद विवाद किया। किन्तु इसे छपवाया नहीं।

सन् १८४६ ई० में उन्होंने उन कलहंसों पर पर प्रयोग प्रारम्भ किये जिन्हें इन्होंने बीगल की यात्रा में एकत्र किया था। इन परीक्षणों पर आधारित तथ्यों की आधार शिला पर इन्होंने ४ जिल्दों में व्यवस्थित रूप से संसार के कलहंसों के विषय में लिखा। ये चार जिल्दें १८५१ और ५४ के बीच में प्रकाशित हुईं। अपनी दिशा में यह कार्य अनोखा था।

सन् १८५४ ई० में आपने जातियों के रूपान्तर पर प्रयोगों में अधिक परिश्रम किया। सन् १८५६ में श्री लायल के अनुरोध से आपने इस विषय पर एक वृहत निबन्ध लिखा किन्तु उसे प्रकाशित नहीं कराया।

सन् १८५८ में उन्हें एक बड़ा धक्का लगा। उनके एक प्रकृतिवादी साथी अल्फ्रेड रसेल वेलेस ने "विभिन्न श्रेणी की जातियों का आदि रूप से अनिश्चित सीमा तक विचलित होने की प्रवृत्ति" पर एक निबन्ध प्रकाशित कराया। यह लेख प्राकृतिक चयन द्वारा विकास पर के सिद्धान्त का ही सारांश था। यह सत्य है कि वेलेस महोदय इस सिद्धान्त के समर्थन में उतने तथ्य प्रस्तुत न कर सके जितने डारविन ने एकत्र किये थे किंतु फिर भी प्रथम बार इस तथ्य को प्रकाश में लाने के कारण वेलेस का नाम भी अमर हो गया।

अन्त में लाइल और हुकर के विशेष बल देने पर डारविन ने वेलेस के साथ ही विकास वाद के सिद्धान्त पर अपने विचार 'लीनियन सोसाइटी, लंदन' भेजे। ये विचार इस समिति के बाद के अंकों में प्रकाशित हुये।

२४ नवम्बर १८५८ में डारविन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जातियों का उद्भव' (Origin of Species) प्रकाशित कराई। इस पुस्तक को इन्होंने अपने १३ महीने के परिश्रम से लिखा था। डारविन के समय की

यह सर्वोत्तम रचना है। पुस्तक का आकर्षण भयंकर था। पहले संस्करण में केवल १२ ० प्रतियाँ ही छापी गई थी वह सब उसी दिन बिक गईं। इस पुस्तक की बड़ी आलोचना हुई। धर्माधिकारियों ने इसमें निहित सिद्धान्तों की बड़ी खिल्ली उड़ाई। डारविन के गुरु आदम सिजविक तक ने कहा कि इसमें दिये गये विचार असत्य और उद्दण्डता पूर्ण हैं।

डारविन के मतानुसार पौदे और पशु अपने आधुनिक रूप में उत्पन्न नहीं हुये। उनका आधुनिक रूप उनमें लम्बे सतत विकास का ही प्रतिफल है। यह सिद्धान्त विकासवाद के सिद्धान्त का आधार है। आधुनिक युग में प्राप्त सभी पशु और पौदे अपने से पूर्ववर्ती किन्हीं एक या अधिक पूर्वजों से मिल कर उत्पन्न हुये तथा प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा जीवन निर्जीव पदार्थों से उत्पन्न हुआ। यह विकास क्रमिक और अत्यन्त मन्द गति से हुआ। पुरातत्वीय अवशेषों की परीक्षा से यह सरलता पूर्वक सिद्ध किया जा सकता है। आधुनिक काल के प्रयोगों द्वारा भी यह सिद्ध हो गया है कि जीव तथा वनस्पति प्राकृतिक चयन द्वारा वातावरण के अनुसार अपने में परिवर्तन करते हैं।

अपने जीवन के गत ४० वर्षों में डारविन ने प्राणि-शास्त्र पर श्रेष्ठ साहित्य का सृजन किया जिससे पाश्चात्य विचारों और वादों की नींव हिल गई। सन १८४२ ई० में अपनी सामुद्रिक यात्रा का विवरण प्रकाशित कराने के पश्चात आपने लन्दन में स्थायी रूप से रहने का प्रबन्ध कर लिया। इस बीच में इन्होने बड़ा परश्रम किया और अपने विचारों के प्रतिपादन के हेतु अनेकों प्रयोग किये तथा बहुमूल्य सामग्री भी एकत्र की। जीवन के अन्तिम वर्षों में निद्राभाव सरदर्द तथा अन्य कई रोगों से पीडित रहने पर भी आप अपने कार्य में संलग्न रहे।

विकास वाद का सिद्धान्त आइन्स्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त से भी अधिक महत्वपूर्ण है। मानवता के के मस्तिष्क के विकास, उसके मिथ्याभिमान के नाश और आत्मनिरीक्षण की भावना की जितनी प्रेरणा इस विकासवाद के सिद्धान्त से मिली संभवतः किसी अन्य वाद से न मिली होगी, चार्ल्स डारविन का नाम महान वैज्ञानिकों की श्रेणी में सदैव ही बड़े सम्मान से लिया जावेगा।

—:o:—

अगले दस हज़ार वर्ष

[पृष्ठ ६ का शेष]

सफल हुए हैं तथा उन्होंने व्यक्ति तथा वातावरण के बीच के क्षेत्र के कार्य-संचालन का एक विश्वसनीय चित्र तैयार कर लिया है संक्षेप में मनुष्य और उसके वातावरण का सम्पर्क अनेक प्रकार की इन्द्रियों से होता है। ये इन्द्रियां स्मृति और निर्णय केन्द्र तक सूचनाएं पहुँचाती है इसके बाद क्रिया के लिए आदेश संकेत प्रसारित करने वाली स्नायुओं के द्वारा भेजे जाते हैं।

यह ऐन्द्रियिक व्यवस्था ही वह साधन है जिससे सामान्य रूप में मनुष्य को अपने वातावरण का पता चलता है। फिर भी कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। प्रत्येक ज्ञान सदैव आंशिक ही होता है। ऐसी दशा में प्रगति को अन्तिम रूप मान बैठना धोखे में पड़ जाना मात्र है। खास तौर पर मस्तिष्क के विषय में इस प्रकार का धोखा और भी अधिक गम्भीर है। यह धारणा भी कि मनुष्य केवल एक यन्त्र है, जो अपने वातावरण के संकेतो से संचालित होता है, व्यक्तिगत ज्ञान और विशेषता की कुछ खूबियों से मनुष्य को वंचित करना होगा।

सामान्य भौतिक उत्तेजना से मनुष्य को जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है उसकी प्रचुरता, अपने वातावरण के विरुद्ध मनुष्य ने जो संघर्ष छेड़ रखा है उसकी निरन्तरता तथा सोद्देश्यता, मोटे इन्द्रियगत अनुभवों को आदर्शात्मक रूप देने की मनुष्य की क्षमता तथा इन्द्रियगत शक्तियों के अतिरिक्त अन्य शक्तियों की प्राप्त करने की मनुष्य की चेष्टा, ये समस्त बातें मस्तिष्क की असीम क्षमताओं का सुझाव उपस्थित करने वाली हैं। यह मस्तिष्क स्वयं अपना और सारे संसार का विनाश कर सकता है तथा साथ ही संसार मे अधिक उच्च तथा उलझे हुये प्राणी का निर्माण भी अपने प्रयत्नों और ज्ञान के बल पर कर सकता है।

सोवियत संघ की वेधशालाएं

ले० टी० कुलिकोवस्की, भौतिकी और गणित सम्बन्धी विज्ञानों के केण्डीडेट

पुल्कोवो वेधशाला विश्व की ज्योतिर्वैज्ञानिक राजधानी कहीं जाती है। इसका निर्माण १८३५-३६ में रूस के महान ज्योतिःशास्त्री वासिली स्त्रूव के निरीक्षण में हुआ। उसका मुख्य उद्देश्य नक्षत्रों की सही स्थिति का पता लगाना था, जिससे रूस में ज्यामितीय कार्यकलाप का तथा तारक मण्डल के वैविध्यपूर्ण अध्ययन का विकास हो। पुल्कोवो वेधशाला द्वारा तैयार किया गया तारों का विशाल सूचीपत्र विश्व भर में प्रामाणिक समझा जाता है। त्रेदिखिन तथा अकादमी सदस्य ए० बेलोपोलस्की के पथ-निर्देशन में ज्योतिर्भौतिक—आकाशीय पिण्डों के भौतिक गुणों के विज्ञानका—विकास पुल्कोवो में १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में प्रारम्भ हुआ। तारों का ज्योतिर्भौतिकी अध्ययन सिमेइज वेधशाला का मुख्य क्षेत्र था, जिसकास्थापना १९०८ में पुल्कोवो वेधशाला की दक्षिणी शाखा के रूप में क्रीमिया में हुई। पुल्कोवो वेधशाला की एक अन्य दक्षिणी शाखा निकोलायेव वेधशाला १८९१ में स्थापित हुई, जिसका क्षेत्र आस्ट्रोमेट्री था।

१९वीं शताब्दी में बहुत से विश्वविद्यालयों में वेधशालाएँ स्थापित हुई। (खार्कोव-१८०८, मास्को १८३०, काजान—१८३३, कीव—१८४५, ओडेस्सा—१८७१, ल्वाव—१८७७, पीटर्सबर्ग—१८७८, तार्तू—१८०९) और एक वेधशाला ताशकन्द (मध्य एशिया) में १८७४ में बनाई गई।

अक्तूबर-क्रान्ति के बाद विज्ञान, जिसमें ज्योतिषशास्त्र भी सम्मिलित है, की उन्नति की तरफ बहुत अधिक ध्यान दिया गया। वेधशालाओं में अधिक अच्छे कार्यकर्ता नियुक्त किये गये। उनके साज-सामान में वृद्धि की गई और एक के बाद ज्योतिर्विज्ञान के नये-नये केन्द्र प्रादुर्भूत होने लगे। इस प्रकार ज्योतिःशास्त्र की वार्षिक प्रगति के सम्बन्ध में पुस्तकों के संकलन और प्रकाशन के लिए लेनिनग्राद में एक विशेष गणना-केन्द्र खोला गया, जिसका नाम सोवियत विज्ञान अकादमी के सैद्धान्तिक ज्योतिर्विज्ञान की संस्था था। इससे वैज्ञानिक संस्थाओं, जहाजरानी और उड्डयन की आवश्यकताएं भी पूरी हुई। यह संस्था ज्योतिर्विज्ञान-जहाजरानी और उड्डयन के सम्बन्ध में विश्व की सर्वोत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त क्षुद्र ग्रहों, जिनकी संख्या इस समय १६०० से ऊपर पहुंच चुकी है, की पहले से गणना की गई अनुमानित स्थिति के सम्बन्ध में तालिकाएं भी प्रकाशित करती है।

मास्को में द्वितीय दशक में स्थापित ज्योतिर्भौतिकी संस्था तथा ज्योतिर्विज्ञान और ज्यामिति की संस्था बाद में मास्को विश्वविद्यालय की ज्योतिर्विज्ञान वेधशाला में सम्मिलित कर दी गई, और उनका नाम मिला कर स्तेर्नबर्ग इन्स्टीट्यूट रखा गया, जो कि सोवियत संघ की सबसे बड़ी ज्योतिर्विज्ञान संस्थाओं में एक है। यह इन्स्टीट्यूट अपनी समय सम्बन्धी सेवा, तारक-सम्बन्धी, ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र (प्रोफेसर पी० पारेनागो) परिवर्तनशील तारों के अध्ययन (प्रोफेसर बी० कुकार्किन), पुच्छल तारा सम्बन्धी अनुसन्धान (प्रोफेसर एस० ओर्लोव), भारमितीय व ज्योतिःशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन एवम् तारकीय मिकेनिक्स की जांच (प्रोफेसर जी० दुबोशिन) के लिए प्रसिद्ध है।

किताबे में १९३० में संस्थापित अक्षांश स्टेशन ताशकन्द विश्वविद्यालय की शाखा बन गया है और

इस समय अन्तर्राष्ट्रीय अक्षांश सेवा का भी स्टेशन है।

१९३२ में जॉर्जिया में आवास्तुमनी में पर्वतीय ज्योतिर्भौतिकी वेधशाला स्थापित की गई और १९३४ में स्तालिनाबाद में (ताजिकिस्तान) एक वेधशाला का निर्माण हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत ज्योतिर्विज्ञान वेधशालाओं को बहुत क्षति पहुँची। पुल्कोवो वेधशाला पूर्णतया नष्ट हो गई, फासिस्टों ने सिमेइज वेधशाला को लूट कर उसमें आग लगा दी। सोवियत संघ के यूरोपीय भाग की कुछ वेधशालाओं में कार्य स्थगित कर देना पड़ा, तथा कुछ को हटा कर देश के पूर्वी भागों में स्थानान्तरित करना पड़ा। किन्तु युद्ध के समय भी सोवियत संघ ने ज्योतिःशास्त्र पर ध्यान देना जारी रखा। सितम्बर, १९४१ में सोवियत ज्योतिःशास्त्रियों ने बड़ी सफलतापूर्वक सूर्यग्रहण का निरीक्षण किया। इस निरीक्षण में प्रयुक्त यन्त्र सामग्री अल्मा-आता के नये वैज्ञानिक केन्द्र भौतिकी व ज्योतिर्विज्ञान की संस्था का आधार बनी। अकादमी सदस्य वा० वी० फेसेन्कोव के पथ-निर्देशन में ५०० मिलीमीटर दर्पण से युक्त माक्सुतोव मेनिस्कस दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से झिल्लीदार नीहारिकाओं की सूक्ष्म बनावट का अध्ययन किया जा रहा है, सूर्य का निरीक्षण लियो किस्म के कोरोनोग्राफ की सहायता से किया जा रहा है। ज्योतिःशास्त्र की विधियों से पृथ्वी के वायुमण्डल के गुणों का भी अनुसन्धान यहां चल रहा है।

महायुद्ध समाप्त होने के बाद से पुल्कोवो और सिमेइज वेधशालाओं के पुनर्निर्माण पर विपुल धनराशि व्यय की गई है। बहुत सी नयी वेधशालाओं ने भी जन्म लिया है, जिनमें क्रीमिया स्थल डमरूमध्य के भीतरी पठार पर स्थित ज्योतिर्भौतिकी वेधशाला भी सम्मिलित है। यह नयी वेधशाला तथा सिमेइज वेधशाला मिल कर एक इकाई बनाती हैं। इसमें १२२ सेण्टीमीटर दर्पण का एक विशाल रिफ्लेक्टर है, एक बड़ा ध्रुव दूरवीक्षण यन्त्र तथा इसी तरह के अन्य नये यन्त्र भी हैं। अभी हाल में यह वेधशाला आकाश गंगा के गैसीय उद्गम नीहारिका की जाँच करती रही है, जिसका प्रारम्भ दिवंगत जी० शाइन ने किया था, तथा सोवियत संघ में निर्मित आधुनिक ढंग के इण्टरफिअरेन्स और पोलराइजेशन फिल्टरों की सहायता से सूर्य के पृष्ठ पर घटने वाली घटनाओं की भी बहुमूल्य जांच की गई है (प्रोफेसर ए० सेवर्नी और इ० मुस्तेल)। तारकमण्डल के केन्द्र की खोज के लिए नये बिजली के यन्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है (प्रोफेसर वी० निकोनोव तथा अन्य लोग)। क्रीमिया की वेधशाला ठीक ही विश्व में सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। इस समय इसके लिए २.६ मीटर दर्पण के एक दूरवीक्षण यन्त्र का निर्माण हो रहा है (प्रोफेसर डा० माक्सुतोव और इंजीनियर वी० आयोन्निसियानी)।

ब्युराकान (आर्मिनिया) की नयी वेधशाला भी युद्ध के बाद ही बनी है, और इसने नये तारक गुच्छों, जिन्हें तारक संघ कहा जाता है, की खोज के सम्बन्ध में ख्याति प्राप्त की है। तारों तथा आकाश के अन्य पिण्डों की उत्पत्ति व विकास की समस्याओं का भी यहाँ सफलतापूर्वक अध्ययन किया गया है। उस वेधशाला के निर्देशक अकादमी सदस्य वी० आम्बारत्सुम्यान, प्रसिद्ध ज्योतिर्भौतिक शास्त्री हैं।

अल्मा-आता में ज्योतिर्वनस्पतिशास्त्र नामक नये विज्ञान का सफलतापूर्वक विकास हो रहा है। प्रोफेसर जी० तिखोव तथा उनके शिष्य एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्रकार के तथा कभी कभी तो कठोर मौसमी परिस्थितियों में पैदा होने वाले विभिन्न पार्थिव पौधों के वर्णावलि गुणों की मंगल-पृष्ठ के वर्ण विश्लेषण के परिणामों के साथ तुलना करके मंगल के वनस्पति जीवन की विशेषताओं के निर्धारण का यत्न कर रहे हैं। उनका विश्वास है कि मंगल पर वनस्पति जीवन विद्यमान है।

आश्खाबाद (तुर्कमेनिया) में युद्ध के दिनों में ही एक ज्योतिर्भौतिक प्रयोगशाला स्थापित की गयी थी, जो

उल्काओं व उनकी ऊंचाई आदि के अध्ययन में विशेष-रूप से कार्य कर रही है।

ज्यौर्जिया में भी ज्योतिर्विज्ञान ने पर्याप्त उन्नति की है। आवास्तुमनी वेधशाला डायरेक्टर प्रोफेसर इ० खार दूजे) माउण्ट कानोविल में १७०० मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। इसमें यूरोप का एक सबसे बड़ा मेनिस्कस दूरवीक्षण यन्त्र है जिसमें ७० सैण्टीमेड व्यास का एक दर्पण लगा है। यन्त्र यहीं बनाया गया है।

स्तालिनावाद वेधशाला परिवर्तनशील तारों और उल्काओं के अध्ययन में उन्नति कर रही है।

युद्ध के बाद यूक्रेन की विज्ञान अकादमी ने कीव के निकट एक नया वेधशाला स्थापित की है। इसका मुख्य यन्त्र ३८ सेण्टीमीटर का आस्ट्रोग्राफ है, जिससे आकाशीय पिण्डों की स्थिति का सही माप हो सकता है।

इस विज्ञान अकादमी की एक अन्य वेधशाला पोल्तावा में है। १९२६ से इसने भारमिती तथा पृथ्वी के ध्रुवों की गति के क्षेत्र में अनुसन्धान किये हैं। अन्य उपकरणों के अतिरिक्त इसमें दो शिरोविन्दु (जेनिथ) दूरवीक्षण यंत्र हैं।

जो जनतंत्र पिछड़े हुए थे, उनमें नये विज्ञान केन्द्रों की स्थापना से स्थानीय ज्योतिःशास्त्रियों की मांग बढ़ गई है। ज्यौर्जिया, आर्मीनिया, कजाकस्तान, आजर-बैजान तथा अन्य जनतत्रों में अब स्थानीय वैज्ञानिक राष्ट्रीय वेधशालाओं में काम कर रहे हैं, और आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के हल में तत्पर हैं।

पुल्कोवा वेधशाला में नयी इमारतें बन गई हैं, और उसमें नया साज-सामान आ गया है। प्रफेसर ए० मिखाइलोव के पथ प्रदर्शन में यहां के कार्यकर्ताओं ने ज्योतिःशास्त्र की समस्त आधारभूत शाखाओं में व्यापक रूप से वैज्ञानिक कार्य किया है। यहां पर मन्द ज्योति के तारों की विशाल सूची तैयार करने (प्रोफेसर एम० जेरेव), तारों की गति के निरीक्षण के लिए फोटो-इलेक्ट्रिक विधि (प्रोफेसर एन० पावलोव), सूर्य के वर्णावलि अनुसन्धान (प्रोफेसर वी० क्रात) तथा तारों की वर्ण जाँच के कार्यों में विशेष प्रगति हुई है। सूर्य के प्रभामण्डल के अध्ययन के लिए काकेशिया में किस्लोवोदस्क के निकट २१३० मीटर की ऊंचाई पर एक विशेष प्रकार की पर्वतीय सौर वेधशाला १९४८ में तैयारी की गई, जो लियो किस्म के कोरानाग्राफ तथा अन्य उपकरणों से सज्जित है।

अल्मा-आता की ज्योतिभौतिकी संस्था ने सूर्य, पृथ्वी पृष्ठ की ऊपरी तहों तथा सौर मण्डल की उल्काओं के अध्ययन के लिए १४५० मीटर की ऊंचाई पर एक वेधशाला बनाई है।

अनेक वेधशालाओं तथा भौतिकी विज्ञान की अन्य संस्थाओं में ज्योतिःशास्त्र की नई शाखा रेडियो-ज्योतिविज्ञान का सफलतापूर्वक विकास हो रहा है। अपने ढंग के नये रेडियो-दूरवीक्षण यन्त्र बनाये गये हैं एस० खाइकिन, वी० वितकेविच)। सोवियत वैज्ञानिकों ने (आई० श्कलोवस्की, वी० गिन्सबर्ग) रेडियो-ज्योतिविज्ञान में उल्लेखनीय प्रगति दिखाई है।

देश भर में ३० के लगभग ज्योतिर्विज्ञान केन्द्रों के कार्यकलाप का समन्वय सोवियत विज्ञान अकादमी का ज्योतिर्विज्ञान परिषद करती है। उसके विभिन्न कमीशनों के परस्पर सहयोग द्वारा अनुसन्धानों और निरीक्षणों का सारा कार्य सुविधापूर्वक आगे बढ़ता है, तथा समय सेवा और अक्षांश सेवा एवम् ज्योति वक्षन का योजनाबद्ध विकास किया जाता है। यह वेध-शालाओं के लिए आधुनिक यन्त्रों और सामग्री का सम्भरण सुनिश्चित बनाता है, तथा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में सोवियत ज्योतिवैज्ञानिकों के कार्यकलाप से सम्बन्धित रिपोर्टों पर विचार करती है।

विज्ञान अक्टूबर १९५८
पृष्ठ १३-१६

ट्रानसिस्टर

शशी मोहन

आवर्त्त वर्गीकरण में चौथे समूह में आने वाली धातुयें वैज्ञानिकों के लिये खोज का एक महत्वपूर्ण विष्य बनी रही हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—कार्बन, सिलिकन जर्मेनियम, स्टैनस तथा सीसा। ये धतुएँ आवर्त वर्गीकरण में बीच का स्थान रखने के कारण भौतिक तथा रसायन शास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें परस्पर संयोजकता की महान शक्ति होती है, इस कारण ये बहुत से यौगिक बना सकती हैं; जिसका जीता-जागता उदाहरण रसायन शास्त्र का एक बहुत बड़ा अंश कार्बनिक रसायन शास्त्र ही है।

भौतिक शास्त्र की दृष्टि में ये धातुएँ इसलिये महत्व पूर्ण हैं कि ये विद्युत के लिये अर्ध-चालक हैं। साधारणतयः हम उन धातुओं तथा वस्तुओं को अर्ध चालक कह सकते हैं जिनका प्रतिरोधक गुणक ऋणात्मक होता है। अर्ध चालकों के अध्ययन में पहिले हम यह देखना है कि ऐसा क्यों होता है और इसके बाद हम यह देखेंगे कि यदि शुद्ध अर्ध चालकों में विशेष विधियों से कुछ अशुद्धियों का योग किया जाये, तो अर्ध चालक के गुणों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इस अध्ययन का अधिकाँश भाग तो सारे अर्ध चालको के लिये होगा; परन्तु हम जर्मेनियम को लेकर उसका ही अध्ययन करेंगे। यहां यह बता देना आवश्यक होगा कि अर्ध चालकों से ट्रानसिस्टर कार्य विधि उत्पन्न करने के लिये उसमें नियंत्रित रूप से अशुद्धियों का ही मेल करना पड़ता है।

अर्ध चालकों के चौथे समूह में होने के कारण अपने बाहरी इलेक्ट्रान-पथ में ४ इलेक्ट्रान होते हैं। जर्मेनियम में वैसे तो ३२ इलेक्ट्रान होते हैं परन्तु २८ इलेक्ट्रान, ३२ धनात्मक चार्ज के साथ एक ४ धनात्मक चार्ज का क्रोड़ बनाते हैं। चालकता के अध्ययन में हम जर्मेनियम परमाणु को ४ धनात्मक चार्ज वाली एक क्रोड़ जिसमें ४ संयोजक इलेक्ट्रान हो मान सकते हैं।
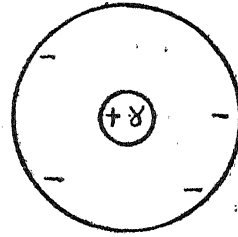
चित्र संख्या १

[चौथे समूह की अर्ध चालक धातुओं के ४ संयोजक इलेक्ट्रान तथा ४ धनात्मक चार्ज की क्रोड़]

इन धातुओं का एक विशेष गुण है कि इनके मणिभ षट्कोणक होते हैं। एक ऐसे आदर्श मणिभ में हर एक परमाणु के ४ पड़ोसी उससे बराबर अन्तर पर होते हैं। जब दो परमाणु पास आते हैं तो उनके संयोजक इलेक्ट्रान पारस्परिक संयोजक बन्धन बनाते हैं और एक मणिभ की रचना करते हैं।

पारस्परिक संयोजक बंध बनाने में यह इलेक्ट्रान क्वानटम भौतिक शास्त्र के नियमों का पालन करते हैं जिसके अनुसार केवल दो इलेक्ट्रान ही मिल कर एक बंध की स्थापना करते हैं इस कारण हर एक परमाणु चारों ओर से अपने जैसे चार परमाणुओं से ऐसे बंध स्थापित करता है। यदि तीन दिशाओं में न जाकर हम केवल दो दिशाओं का चित्रण करें, तो एक जर्मेनियम मणिभ को चित्र संख्या—३ के अनुसार बनाया जायेगा।
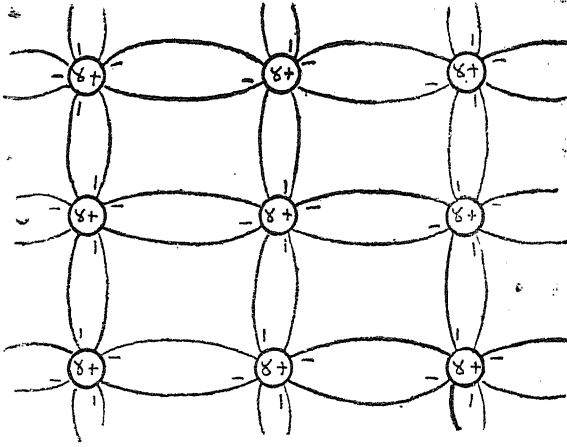
चित्र संख्या-३

इस अवस्था में जर्मेनियम मणिभ पृथक्कारी रहेगा; क्यों कि कोई भी इलेक्ट्रान स्वतत्र अवस्था में नहीं होगा और विद्युत चालन में भाग नहीं ले सकेगा। यदि ऐसे मणिम पर विभव लगाया जाये तो चालन न होकर क्रोड़ तथा इलेक्ट्रान की स्थिति में विस्थापन आ जाता है और इस प्रकार मणिभ में पारविद्युत ध्रुवण होता है जो विभव के हट जाने पर स्वयं समाप्त हो जाता है और मणिम में चालन क्रिया नहीं होती।

इससे पहले कि हम एक मणिभ को चालक बनाने की रीतियों का अध्ययन करें यह उचित होग कि हम कुछ ऐसे इलेक्ट्रानों का अध्ययनकरे जो एक ऐसे ही मणिभ में किसी प्रकार से डाल दिये गये हैं। मान लीजिए कि एक इलेक्ट्रान मणिभ के अन्दर इस प्रकार डाल दिया गया है कि मणिभ की अवस्था में कोई परिवर्तन न हो। जर्मेनियम का पार विद्युत नियतांक १६ होने के कारण स्थिर विद्युत शक्ति १६ गुनी कम हो जायेगी। ऐसी अवस्था में यदि इलेक्ट्रान में गतिज ऊर्जा नहीं हो तो वह अपने स्थान पर पड़ा रहेगा जैसे कि शून्य स्थान में हो। यदि अब इस पर विभव का प्रयोग किया जाये, तो यह इलेक्ट्रान, आकर्षण शक्ति के फल स्वरूप अपने स्थान से धनात्मक विभव की दिशा में चलेगा। राह में इसे इलेक्ट्रान (जो कि बंधे हैं) तथा क्रोड़ की शक्तियाँ प्रभावित करेंगी और इलेक्ट्रान आवर्त्त बल क्षेत्र में इस प्रकार चढ़ेगा कि जैसे कि शून्य स्थान में बढ़ रहा हो। हाँ, उसके भार में कुछ अन्तर अवश्य आ जायेगा। यह बात बड़ी अजब-सी प्रतीत होती है कि इलेक्ट्रान एक मणिभ के भीतर उसी आसानी से चल सकता है जैसा कि शून्य स्थान में। परन्तु यह नितान्त सत्य है; क्योंकि इलेक्ट्रान तरंग-यान्त्रिकी के नियमों का पालन करता है। और उसके चलने की यह रीति एक वेव गाईड में विद्युत तरंग के पनपने के समान है।

अब यदि एक नहीं वरन पर्याप्त संख्या में इलेक्ट्रान मणिभ के अन्दर डाल दिये जायें, तो वे घोल के ब्राउनियन कण के समान परस्पर टकरा कर मणिभ के अन्दर बिखर जायेंगे।

उनके चलने के मार्ग की रेखा चित्र संख्या—४ में दिखाई गयी है।
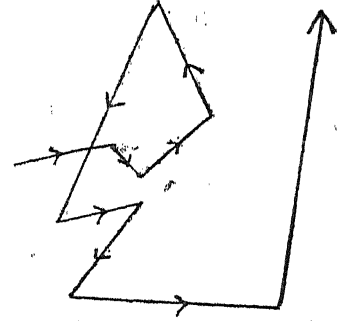
चित्र संख्या-४

इस प्रकार इलेक्ट्रान की घनता अपनी पुरानी स्थिति से दूर होने के साथ घटती जाती है और इस प्रकार से मणिभ में घनता प्रवणता विद्यमान हो जाती है। चित्र संख्या ५ (अ) में यह स्पष्ट अंकित है।

(अ)
चित्र संख्या - ५

(ब)
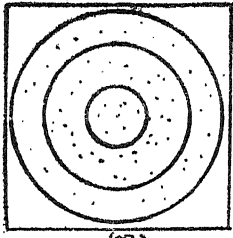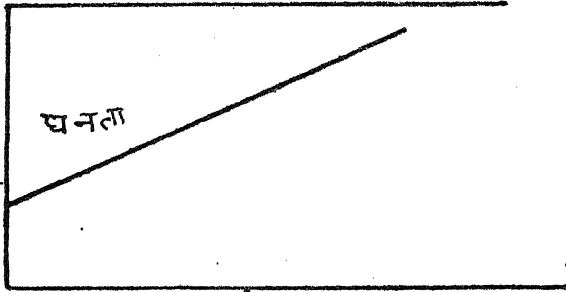
यदि यह इलेक्ट्रान मणिभ के बीच में न डाले जाकर एक किनारे पर डाले जायें तो वे मणिभ के दूसरे किनारों की ओर बिखरने लगेंगे। और यदि हम मणिभ का आकार इस प्रकार का लें कि उसकी लम्बाई उसके अनुप्रस्थ काट से बहुत छोटी हो, तो हम इलेक्ट्रान का विकीर्ण होना केवल एक ही दिशा में मान सकते हैं। ऐसा दशा में मणिभ के अन्दर का विकीर्ण होना चित्र संख्या ५ (स में अंकित किया गया है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है इलेक्ट्रान विकीर्ण होने से बायीं से दायीं ओर जायेंगे इस कारण मणिभ में विद्युत धारा का संचालन होगा जो दायीं से बायीं ओर चलेगी। इस धारा को विसरण धारा कहते हैं।

आईन्स्टीन ने विसरण का अध्ययन सैद्धान्तिक रूप में किया और उनके परिणाम यहां भी लागू होते हैं। यदि (ड) विसरण नियत है तो विसरण-धारा की शक्ति

= इलेक्ट्रान संख्या प्रति इकाई क्षेत्र इकाई समय में

= (ड) × इलेक्ट्रान प्रवणता

शोकले ने (ड) इलेक्ट्रान के माध्यमिक स्वतंत्र चालन पथ तथा ऊष्मीय गति का प्रयोग करके, विसरण धारा की शक्ति को आँका है। उसका सूत्र नीचे दिया गया है।

$$\text{विसरण धारा शक्ति} = \left(\frac{\text{ल} \times \text{व}_{\text{त}}}{२}\right) (\text{ड})$$

ल = माध्यमिक स्वतंत्र पथ, $\text{व}_{\text{ऊ}}$, त, तापक्रम पर ऊष्मीय गति, तथा

ड = विसरण नियत

जंकशन ट्रानसिस्टर में विसरण से ही विद्युत चलन होता है और इस कारण शोकले का यह सूत्र बहुत महत्वपूर्ण है।

यदि ऐसी ही एक विसरण की क्रिया पर विभव लगाया जावे तो इलेक्ट्रान के विसरण के साथ उनका अपवहन धनात्मक विभव की ओर होने लगेगा। फलस्वरूप चित्र संख्या ४ का पथ, चित्र संख्या ६ के पथ में बदल जावेगा।
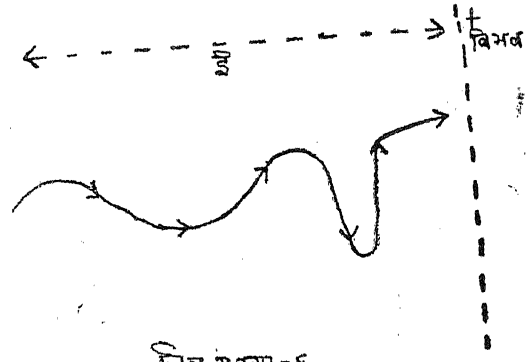
चित्र संख्या - ६

यदि $\text{व}_{\text{अ}}$, इलेक्ट्रान की अपवहन गति हो और (ई) विभव हो तो, शोकले ने एक सिधातिंक विश्लेषण से यह सिद्ध किया कि

$$\text{व}_{\text{अ}} = (\text{म्यू}_{\text{.}}) \times \text{ई}$$

जहाँ म्यू, इलेक्ट्रान की मोबेलीटी कहलाती है, इसका मूल्य भांति भांति के अर्ध चालकों के लिये अलग-अलग होता है।

यदि आइनस्टीन तथा शोकले के सूत्रों को जोड़ दिया जावे, एक ऐसा सूत्र प्राप्त होता है जो (ड़) और मोबीलिटी में सम्बन्ध स्थापित करता है।

$$म्यू = \left(\frac{च}{क \times त}\right) (ड़)$$

च=इलेक्ट्रान का चार्ज, क=बोल्टजमान का नियत, तथा त=परम ताप

ट्रानसिस्टर बनाने के कार्य में इन दोनों नियमों का प्रयोग होता है और इस दृष्टि से ये अत्यधिक महत्व-पूर्ण हैं। इनके प्राप्त मूल्य, सारणी—१ में दिये हुए हैं।

सारिणी—१

	इलेक्ट्रान		छिद्र	
	म्यू	( )	म्यू	ड़
सिलीकन	२००±१२०	३०±३	२५०±५०	६५±१२
जर्मेनियम	३६००±१८०	६ ±५	१७००±६०	४२±२

अब प्रश्न आता है कि एक मणिभ में इस प्रकार के इलेक्ट्रान कैसे डाले जायें। वैज्ञानिकों की खोज के परिणाम स्वरूप इसके लिए ३ विधियाँ उपलब्ध हैं:—

१—ऊष्मीय बंधन—विच्छेद

२—प्रकाश—विद्युतीय बंधन - विच्छेद

३—रासायनिक अशुद्धयों के रूपमें कणों का प्रवेश

ऊष्मीय बंधन विच्छेद्—जब हम एक मणिभ को ऊष्मीय ऊर्जा देते है तो वह मणिभ की कड़ियों में कम्पन पैदा कर देता है। यह कम्पन, क्वांटम शास्त्र के अनुसार कणों में बदल जाते हैं जिन्हें हम फोटोन कहते हैं। साधारण तापक्रम पर भी इन फोटोन की ऊर्जा इतनी होती है कि यह कुछ पारस्परिक संयोजक बंधों का विछेद करके उन में से इलेक्ट्रान निकाल देते हैं। यह इलेक्ट्रान मणिभ के अन्दर बिल्कुल स्वतंत्र विचरण करता है। यह अपना जो खाली स्थान बंध में छोड़ आता है उसे हम "छिद्र" कहते हैं। यह छिद्र पास के बंधन के किसी भी इलेक्ट्रान द्वारा भरा जा सकता है और जो पुनः एक नवीन, छिद्र अपने स्थान पर छोड़ आता है। साराँशतः छिद्र भी मणिभ में चलता है और मणिभ की चालकता में सहयोग देता है। चूंकि छिद्र एक इलेक्ट्रान के जाने से बनता है इस कारण उस पर एक इलेक्ट्रान के बराबर धनात्मक चार्ज माना जाता है। इसे हम सामान्य रूप से इलेक्ट्रान के समान ही मान सकते हैं परन्तु इसका चार्ज धनात्मक होता है। सारणी—१ में छिद्र के लिये, म्यू तथा (ड़) के मूल्य अंकित किये गये हैं और हम देख सकते हैं कि उनके मूल्य इलेक्ट्रान से भिन्न हैं परन्तु गुणात्मक विश्लेषण में हम छिद्र और इलेक्ट्रान में केवल चार्ज के चिह्न का अंतर ही मानते हैं।

ऊष्मीय बंधन विच्छेद, केवल तापक्रम पर ही आधारित हैं और इस पर विद्युत नियन्त्रण सम्भव नहीं है। इस कारण यह ट्रानसिस्टर के लिये कोई महत्व नहीं रखता और वास्तव में ट्रानसिस्टर बनाते समय इस बात का प्रयास किया जाता है कि यह प्रभाव कम से कम हो सके।

प्रकाश—विद्युतीय बंधन विच्छेद—जब प्रकाश की किरण मणिभ पर डाली जाती है तो क्वाँटम शास्त्र के अनुसार फोटोन पैदा होते हैं। यह फोटोन यदि पर्याप्त ऊर्जा के होते हैं तो, इलेक्ट्रान को बंधन मुक्त कर देते हैं और इस प्रकार मणिभ के भीतर इलेक्ट्रान तथा छिद्र को जन्म देते हैं और मणिभ की चालकता में परिवर्तन होता है। इस गुण का उपयोग फोटो ट्रानज़िस्टर बनाने में किया जाता है।

रासायनिक अशुद्धियों के रूप में कणों का प्रवेश:—यदि जर्मेनियम के एक आदर्श मणिभ में हम तीसरे समूह की धातु जैसे इण्डियम अथवा बोरोन के कुछ अणु इस प्रकार डाल सकें कि मणिभ की कड़ियाँ वैसी ही रहें तो वह अणु कहीं कहीं से जर्मेनियम अणु हटाकर उनका स्थान ले लेंगे। फलस्वरूप मणिभ की अवस्था चित्र संख्या ३ से बदल कर चित्र संख्या ७ जैसी हो जावेगी।
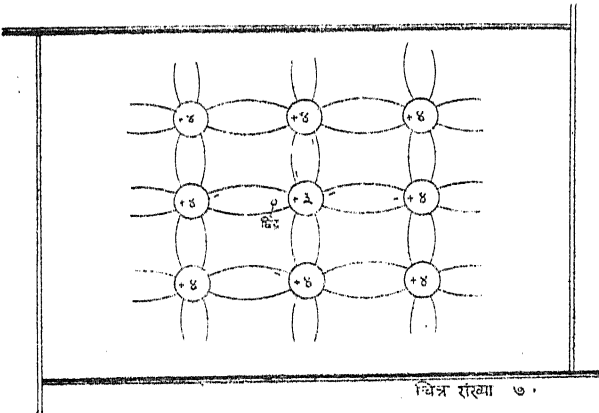
चित्र संख्या ७

फल स्वरूप मणिभ के अन्दर एक छिद्र डाल दिया गया है। इस प्रकार की जर्मेनियम में विद्युत का चलन धनात्मक कणों द्वारा होता है और इसे पी प्रकार की जर्मेनियम करते हैं। रासायनिक अशुद्धि जो इसमें प्रयोग की जाती है उसे ग्राही कहते हैं क्योंकि यह एक इलेक्ट्रान ग्रहण करती है। इस जर्मेनियम का (हाल गुणाँक) धनात्मक होता है।

इसके विपरीत यदि ५ वें समूह की धातु जैसे आर्सेनिक का प्रयोग किया जावे तो मणिभ की दशा चित्र संख्या ८ की हो जावेगी। अब एक इलेक्ट्रान मणिभ में डाल दिया जाता है। इस जर्मेनियम को एन प्रकार की जर्मेनियम कहते हैं और इसमें विद्युत चलन इलेक्ट्रान द्वारा ही होता है इसमें प्रयोग होने वाली अशुद्धि को "दाता" कहते हैं क्योंकि यह एक इलेक्ट्रान देती है। इसका हाल-गुणाँक ऋणात्मक होता है।
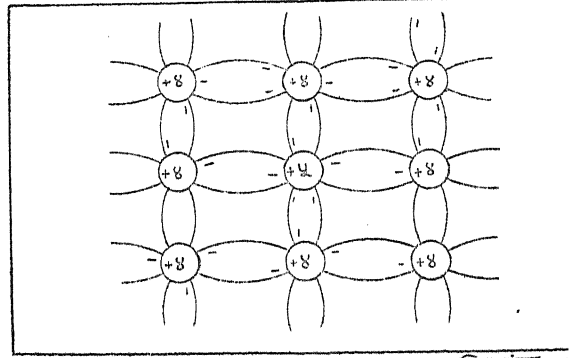
चित्र संख्या ८

दो प्रकार की जर्मेनियम का परिचय प्राप्त कर के आइये अब एक ऐसे जंकशन का अध्ययन करें जो इन दोनों प्रकार की जर्मेनियम के मणिभों को जोड़ता है (चित्र सं० ९)
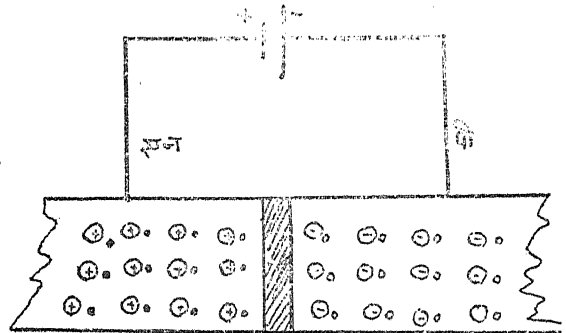
चित्र संख्या-९

चित्र देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इलेक्ट्रान बायीं ओर से चलकर छिद्रों से मिल जायेंगे और उन्हें नष्ट कर देंगे। परन्तु आयन अपनी स्थिति पर स्थिर होते हैं। (+) आयन छिद्रों को जंकशन के पार नहीं आने देते वरन उन्हें दायीं ओर प्रतिकर्षण द्वारा ठेलते हैं जब तक छिद्र उस स्थान पर नहीं पहुँच जाते जहां पर सबसे अधिक विभव है। ठीक इसी प्रकार (–) आयन इलेक्ट्रान को बायीं ओर ठेलते हैं जब तक वह सबसे कम विभव के स्थान पर नहीं पहुँच जाते। फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि एक बैटरी जंकशन के दोनों ओर लगा दी गई है जिसका प्रवत्व चित्र में दिखाया गया है।

इस जंकशन का एक महान गुण यह है कि यह ऋजुकरण कर सकता है, कारण यह जंकशन उसी अवस्था में चालक होता है जब कि एन की ओर ऋणात्मक विभव और पी की ओर धनात्मक विभव लगाया जाये। यदि एक प्र० धा० संकेत लगाया जावे तो वह केवल अर्ध चक्र में ही जंकशन के आर पार जा सकेगा। चित्र संख्या १० (अ) में जंकशन का यह प्रयोग अंकित किया गया है तथा चित्र संख्या १० (ब) में इसी कार्य को लेखचित्रण द्वारा समझाया गया है।
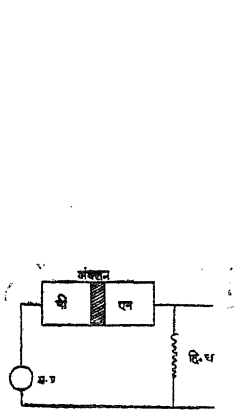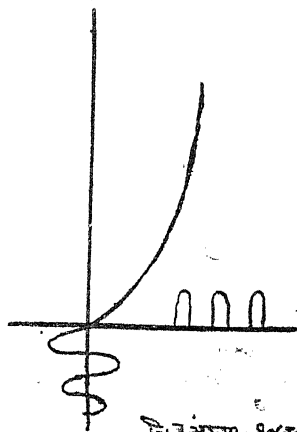
चित्र संख्या – १० (अ)। चित्र संख्या – १० (ब)

यदि दो आयोड आपस में इस प्रकार जोड़ दिये जावें कि एक पी भाग दो एन भागों के साथ आयोड बनाये तो एक जंकशन ट्रानसिस्टर की रचना होती है। चित्र संख्या ११ में एक एन-पी-एन ट्रानसिस्टर को अंकित किया गया है।
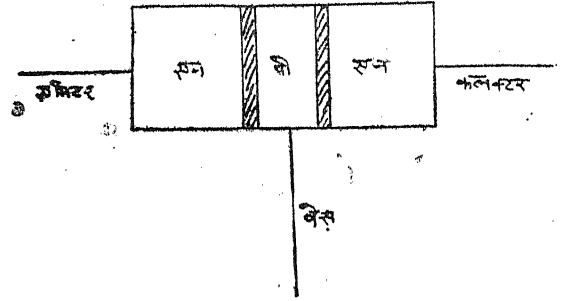
चित्र संख्या – ११

दोनों ओर दो एन भाग एक पी भाग को बीच में दाबे हुये हैं। एक एन भाग एमिटर तथा दूसरा एन भाग कलेक्टर कहलाता है। बीच का भाग बेस कहलाता है। यदि बीच का भाग एन प्रकार का हो और इधर उधर के भाग पी प्रकार के हों तो ट्रानसिस्टर पी-एन-पी प्रकार का कहलाता है।

इन दोनों ट्रानसिस्टरों में केवल अंतर यह होता है कि पी-एन-पी में छिद्रों द्वारा विद्युत संचार होता है और कलेक्टर पर धनात्मक विभव लगाया जाता है जब कि एन-पी-एन में इलेक्ट्रान यह कार्य करते हैं और कलेक्टर पर ऋणात्मक विभव लगाया जाता है।

ट्रानसिस्टर की कार्य विधि समझने से पहिले यह जान लेना आवश्यक होगा कि किन अवस्थाओं में एक जंकशन विद्युत संचार कर सकेगा। चित्र संख्या १२ (अ) में एक ऐसे जंकशन पर विभव लगे हुये दिखाये गये हैं। धनात्मक विभव पी क्षेत्र से छिद्रों को एन क्षेत्र में ठेलता है और वहाँ वे ऋणात्मक विभव द्वारा अपनी ओर खींच लिये जाते हैं। इसके साथ ही इलेक्ट्रान भी
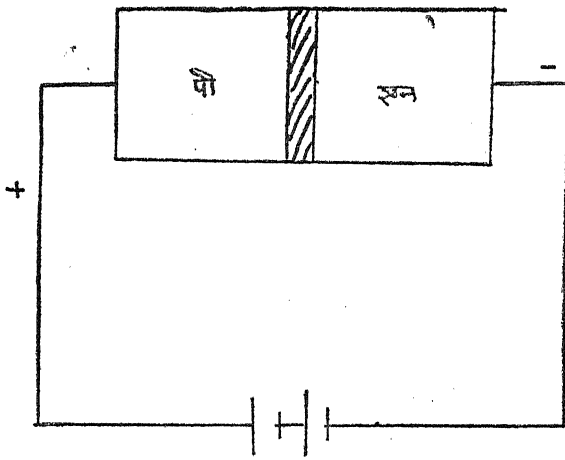
चित्र संख्या - १२(अ)

एन क्षेत्र से पी क्षेत्र में आ जा सकते हैं। ऐसे जंकशन के प्रयोग को हम अग्रचालक कहते हैं।

इसके विपरीति यदि पी क्षेत्र में ऋणात्मक तथा एन में धनात्मक विभव लगाया जावे तो विद्युत जंकशन को पार नहीं कर सकती। इस प्रकार के जंकशन के प्रयोग को हम पृष्टचालक कहते हैं।

चित्र संख्या १२ (ब
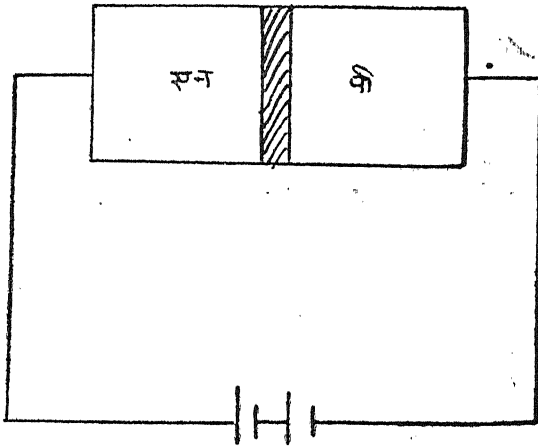
चित्र संख्या - १२(ब)

ट्रानसिस्टर के प्रवर्धक प्रयोग में एमिटर जंकशन पर इस प्रकार विभव लगाते हैं कि वह अग्रचालक होता है तथा कलेक्टर जंकशन का विभव उसे चालक रखता है। ऐसी अवस्था में ट्रानसिस्टर विभव, धारा तथा कार्य क्षमता तीनों का प्रवर्धन कर सकता है। चित्र संख्या १३ में ट्रानसिस्टर प्रवर्धक को अंकित किया गया है।
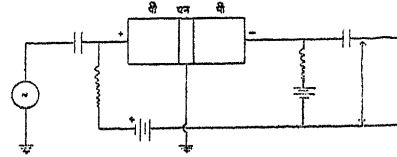
चित्र संख्या -१३ .

अंत में ट्रानसिस्टर के उन गुणों को जान लेना आवश्यक है जिनके कारण ये वाल्व को स्थानान्तरित करते जा रहे हैं।

(१) जीवन काल—अभी तक के अध्ययन के अनुसार ट्रानसिस्टर-का जीवन अनन्त है क्योंकि इनमें नाश जनक वस्तु कोई नहीं होती।

(२) ऊर्जा खपत :—वाल्व की अपेक्षा ट्रानसिस्टर में ऊर्जा की खपत बहुत कम है। दोनों में सामान्य रूप से १ और १००० का अनुपात है।

(२) ट्रानसिस्टर में अपना एक विशेष गुण यह है कि वह संकेत विभव के बहुत निम्न स्तरो पर भी बहुत सक्षम होते हैं जब कि वाल्व उन स्तरो पर कार्य कर ही नहीं सकते।

(४) ट्रानसिस्टर का आकार उनका अद्वितीय गुण है, जिसके विषय में प्रारम्भ में ही कहा गया है।

अभी ट्रानसिस्टरों में अत्यधिक कार्य क्षमता नहीं है और वे उस क्षेत्र में नहीं आ सके हैं, परन्तु निकट भविष्य में हम उन्हें उस क्षेत्र में भी पायेंगे। अभी तक उनकी कार्य-क्षमता केवल ८ वाट तक पहुँच सकी है जो सामान्य रेडियो वाल्व ६ वी ६, ६ एफ ६ इत्यादि के समान है; परन्तु शीघ्र ही यह क्षमता १००० वाट तक पहुँच जायेगी, ऐसा मेरा विचार है।
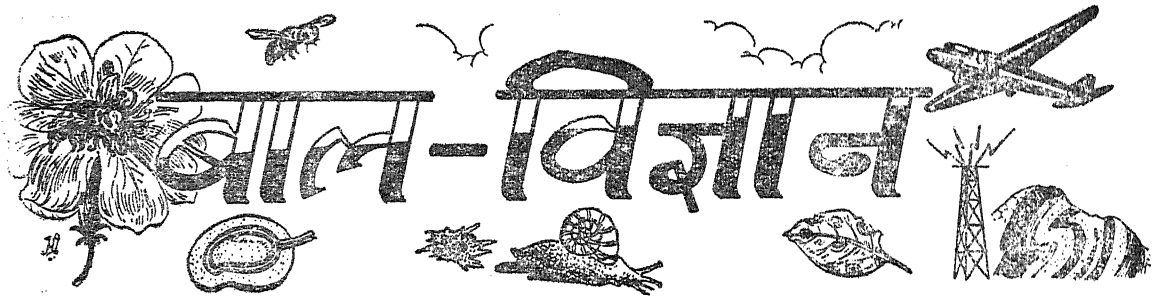
कीड़ों का शिकार करने वाले पौधे !

प्रकृति के ऐसे रहस्यमय पौधों को देख कर सचमुच आश्चर्य होता है जो केवल धूर्तता से सीधे साधे कीड़ों को अपने जाल में फँसाने के लिए ही उगते हैं। ये कीड़े इन पौधों की ओर केवल अमृत, मधु, भोजन और पानी के छोटे से कोष के लिए ही मोहित हो जाते हैं। बहुत पहले इन कीड़ों के पूर्वज यह जानते थे कि यह अच्छा दिखाई पड़ने वाला मधु सचमुच मीठा जहर है। पौधे जीवन भर के लिए उन्हें जाल में फंसा कर कैद कर लेते हैं और इस प्रकार उनसे अपना स्वादिष्ट भोजन बनाते हैं।

'सनड्यू' एक छोटा पौधा है। भारतवर्ष में इसकी केवल तीन किस्में पाई जाती हैं। इसकी पत्ती हल्के बालों से ढंकी रहती है जिसे 'टैन्टेकिल्स' कहते हैं और जो अपने अन्दर एक रसदार जहरीला पदार्थ छुपाए रहती है। यही पदार्थ सूर्य के प्रकाश में ओस की बूँदों की तरह चमकता है और इसी लिए उसका नाम 'सनड्यू' पड़ा।

कीड़े इस चमकते हुए पदार्थ को मधु समझ कर पत्तियों पर आकर बैठ जाते हैं। उनके बैठते ही 'टैन्टिकिल्स' झुक कर चारों ओर से उन्हें ढक लेते हैं। जब वे घुट कर मर जाते हैं तब पौधा उन्हें खाना शुरू करता है और ये 'टैन्टिकिल्स' तब तक उन्हें बन्द रखते हैं जब तक कि उससे मिलने वाला समस्त भोजन समाप्त नहीं हो जाता।

इनकी ग्रन्थियों के अन्दर छुपे हुए रस में 'हाइड्रो-क्लोरिक ऐसिड' होता है जो कीड़े के शरीर को गला कर खाने योग्य बना देता है। इसके सम्बन्ध में एक और बड़ी अजीब बात यह है कि यदि पत्तियों पर कोई अन्य पदार्थ गिर पड़े तो इसके 'टैन्टिकिल्स' में कोई क्रिया नहीं होती पर यदि मांस का कोई छोटा टुकड़ा गिर पड़े तो 'टैन्टिकिल्स' झुक जाते हैं और ग्रन्थियाँ रस पदार्थ निकाल कर अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं।

'वनिस फ्लाई ट्रैप' एक दूसरा पौधा है, यह अमरीका में पाया जाता है और अधिकतर पानी में ही उगता है। कीड़ों को अपना शिकार बनाने के लिए इसके पास भी एक तरीका है—वह यह कि पत्तियों के कोने दरवाजों में लगाने वाले कब्जे की तरह बीच से मुड़ जाते हैं। इनके कोनों में बहुत से बाल होते हैं जिन्हें 'ट्रिगर हेयर्स' कहते हैं।

ये बाल एकदम छुई मुई की तरह होते हैं और कीड़ों का एक हलका स्पर्शमात्र ही पत्तियों के कोनों को एकाएक पास लाने के लिए काफी होता है। कुछ दिनों के बाद कीड़े के अन्दर से खाया जा सकने वाला पदार्थ पौधा सोख लेता है और शरीर का बेकार सख्त भाग बाहर निकाल देता है। इसके बाद उसके कोने पुनः किसी नये शिकार की आशा से खुल जाते हैं।

कलकत्ते के पास नमकीन दलदल में एक छोटा

पौधा फ्लाई ट्रैप (अल्ड्रोवैन्डा) पाया गया है। यह बिना जड़ का है और ऊपर ही सतह पर तैरता रहता है। कीड़ों को पकड़ने का ढंग इसका भी वैसा ही है जैसे 'वनिस फ्लाई ट्रैप' का।

सबसे पहले कीड़ों को पकड़ने वाला पौधा जो मिला था, वह शायद 'पिचर प्लान्ट' था। जिसकी दो चार किस्में भारतवर्ष में भी पाई जाती हैं। ये पौधे भी बहुत छोटे होते हैं जो दूसरे पौधों पर अपने सहारे के लिए लम्बी लता तन्तुएं निकाल लेते हैं। यह लतातन्तु पत्तियों के कोनों से बनता है और जिसकी लम्बाई ४ इंच से ८ इंच तक होती है। कीड़े इसके चिकने धरातल से फिसल कर पिचर की गुहा में भरे हुए रस पदार्थ में गिर कर डूब जाते हैं।

पेड़ों द्वारा मौसम की पूर्व-सूचना

एक वनस्पति शास्त्र वैज्ञानिक, एक पुराने पेड़ का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहे हैं। यह पेड़ स्पेन के आरमेडा की हार और कोलम्बस द्वारा अमरीका की खोज से पहले उगा था। वह यह पता लगाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि शताब्दियों पूर्व न्यूजीलैण्ड के लोग किस मौसम में रहते थे।

१६०६ में यह टेटारा वृक्ष गिर पड़ा, उस समय यह ४३५ वर्ष पुराना था। वृक्ष की झुर्रियों ने उसकी उम्र वर्षों में और अपनी जीवितावस्था में उसने कितना कार्बन सोखा है, बता दिया। वह बता सकता है कि मौसम जल्दी बदल जायेगा या देर में, मौसम सुहावना होगा या ठंड पड़ेगी।

उस पेड़ ने शताब्दियों से परिवर्तित वायु मंडल का संग्रह किया था और वनस्पति शास्त्री भी ५० वर्षों से, जब से वह वृक्ष क्षीण हुआ था, वायु मंडल में हुए परिवर्तनों को देख रहा है।

अन्य वैज्ञानिकों ने पिछले कुछ वर्षों के अध्ययन के बाद यह बता दिया है कि एक दिन यह सम्भव है कि पेड़ों के तनों का अध्ययन करके हम यह बता सकें कि जिस वर्ष जूलियस सीजर की हत्या हुई थी मौसम सुहावना था या तेज ठंडक का। और क्या मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर तीव्र ऊष्ण मौसम में हुआ था।

ब्रिटेन के कुछ किसानों का कहना है कि कुछ पेड़ मौसम की पूर्व सूचना दे सकते हैं।

ग्लौसिस्टर शायर के दो देवदार के पेड़ों का अध्ययन वहाँ की स्थानीय जनता छुट्टियों में करती है। एक किसान का कहना है कि यदि बसन्त के दिनों में पत्तियाँ सफेद हों तो गर्मी अधिक पड़ेगी और यदि पत्तियाँ हरी हों तो शीत, यदि किसी वर्ष पत्तियाँ सफेद और हरी दोनों ही हों तो यह इस बात का संकेत था कि जून से अगस्त तक का मौसम सम रहेगा।

उंगलियों की छाप से व्यक्ति की पचाहन

अँगुलियों की छाप का महत्व बताने वाला कौन था, और यह कैसे सम्भव है कि इन छापों को देख कर हम किसी व्यक्ति को पहिचान लें?

शरीर विज्ञान के क्षेत्र में हथेलियों की रेखाओं का अध्ययन सर्व प्रथम इटली के एक वैज्ञानिक 'माल पी घी' ने सन् १६८६ में किया और 'पुरकिंज' ने १८२३ में इस विषय पर सर्व प्रथम एक क्रमबद्ध अध्ययन, एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया। इन वैज्ञानिकों का अध्ययन मुख्य रूप से विज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। पर 'विलियम हार्शेल' ने इसे पहली बार एक व्यक्ति को पहिचानने के लिए उसके पेन्शन के प्रमाण पत्रों पर चिन्ह के रूप में प्रयुक्त किया। १८७७ में उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि इन चिन्हों का अपराधियों की छान बीन में प्रयोग किया जाय। पर इस सुझाव को किसी ने न माना, यद्यपि उन्होंने यह पता लगा लिया था कि किसी भी दशा में ये चिन्ह नहीं बदल सकते।

इसी समय जापान में 'फाल्डस' महोदय ने इन चिन्हों के वर्गीकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था और १८८० में आपने इस कार्य के परिणामों का

विवरण एक वृद्ध व्यक्ति 'डारविन' को भेजा। डारविन ने उन्हें सलाह दी कि वह उसके चचेरे भाई, वैज्ञानिक गाल्टन' से मिले, जिसे वह इस कार्य के लिए सब से योग्य व्यक्ति समझते हैं। गाल्टन बड़ा ही उत्साही था। १८८६ से १६६१ तक के बीच में उसने अँगुलियों की छापों का नियमानुसार वैज्ञानिक रीति से अध्ययन कर विभिन्न व्यक्तियों को पहिचानने और उनका वर्गीकरण करने की एक प्रणाली बनाई, जिसमें चार आवश्यक बातें थीं—विभिन्नता, स्थिरता, असमानता और उन्हें वर्गानुसार संग्रहीत करने की सुगमता।

गाल्टन की इस खोज के बाद, अँगुलियों की छापों से व्यक्ति को पहिचानने की यह रीति सम्पूर्ण विश्व में मौलिक आधार के रूप में मान्य हुई। इसके बाद वर्जेन्टाइन में 'व्यूसेटिच' ने १८६१ में जो वर्गीकरण पद्धति चलाई, वह आज भी लैटिन अमरीका में प्रयुक्त होती है। हैनरी ने एँग्लो सैक्सन पद्धति को आगे बढ़ाया।

७० वर्ष पूर्व से चली आई इस नवीन खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी व्यक्ति की उंगुलियों की छाप उसके जीवन में कभी नहीं बदल सकती। यहाँ तक कि हफ्तों पानी में डूबे रहने के बाद भी मृतदेह की अंगुलियों की छाप से उस व्यक्ति को पहिचान लिया गया, और न ही यह सम्भव है कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार इस छाप की रेखाओं को बदल दे। कुछ अपराधियों ने कैद से बचने के लिए इन रेखाओं को ब्लेड से काट कर बदलने का प्रयत्न किया। पर रेखाओं की जगह घाव होना सन्देहप्रद था और फिर घाव के चारों ओर की रेखाएँ तो मिलती ही थीं, यही उन्हें पहिचानने के लिए काफी थीं।

व्यक्तियों को पहिचानने के लिए इन चिन्हों का दूसरा रहस्य "उनकी असंख्य विभिन्नतायें" है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों की अंगुलियों को छाप कभी एक जैसी नहीं होती। छाप की यह असमानता 'शरीर की बनावट सम्बन्धी विद्या' द्वारा समझाई जाती है, क्योंकि हर अंगुली की रेखाएँ छोटी बड़ी, घूमी हुई तथा एक दूसरे से विभिन्न अन्तर पर होती हैं। इसलिए विशेषज्ञों को किसी व्यक्ति को पहचानने के लिए, ऐसे ही अंतरों पर ध्यान देना पड़ता है। उँगुलियों के सिरे से बने हुए चिन्हों में तो इस प्रकार के बहुत से अन्तर मिल जाते हैं।

इसे छाप कर संग्रह करना बहुत ही आसान है। केवल एक किसी धातु की प्लेट, सरेस का बना हुआ रोलर और एक स्याही के ट्यूब की आवश्यकता पड़ती है। आज चिन्हों का वर्गीकरण करने की दो रीतियाँ प्रचलित हैं एक 'लेटिन अमरीका' में और दूसरी 'एँग्लो सैक्सन' देशों में, पर दोनों के तरीके एक जैसे ही हैं।

—:o:—

[पृष्ठ २६ का शेष]

इस मौसम के रोग और उनके उपचार

बाजार में गंदी, खुली हुई और बासी चीजें बिकती हैं इससे भी दस्त-कै की बीमारी हो जाती है, अतः हमें कभी भी बाजार की खानेवाली वस्तुयें नहीं खानी चाहिए। दूसरे बासी खाना चाहे वह बाजार का हो चाहे घर का, कभी इस मौसम में नहीं खाना चाहिए। बाजार से जो भी सब्जी या फल आवें उन्हें पहले लाल दवा के पानी में धोकर तब साफ पानी में धोकर इस्तेमाल करना चाहिए। यदि इन उपायों का हम करें तो बहुत कुछ हम इन रोगों को दूर करने में समर्थ हो सकते हैं।

(आकाशवाणी इलाहाबाद के सौजन्य से)

———

कीड़ों के नियंत्रण के लिए एक अनूठा परीक्षण

अमेरिकी कृषि-विभाग तथा टैक्सास के कृषि और यान्त्रिक कालेज के कृषि-परीक्षण केन्द्र के अनुसंधान-कर्ता कालेज स्टेशन (टैक्सास) नामी केन्द्र में यह पता लगाने की चेष्टा कर रहे हैं कि कीड़े किन चीजों को खाना अधिक पसन्द करते हैं।

अनुसंधानकर्ता इस खोज में रुचि यह जानने के लिए नहीं ले रहे हैं कि कीड़ों को अच्छी तरह से कैसे पाला जा सकता है, अपितु इस उद्देश्य से कि फसल नष्ट करने वाले इन कीड़ों को कैसे नष्ट किया जा सकता है या किस प्रकार उत्तम ढंग से इन पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

उक्त परीक्षण-केन्द्र में कीड़ों के संबंध में जो व्यापक अनुसंधान-कार्य हो रहा है, उसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि खटमल तथा अन्य कीड़े किन वस्तुओं को सब से अधिक पसंद करते हैं। अमेरिका के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र में स्थित बौजमैन (मौण्टेना) में भी अमेरिकी कृषि-विभाग की कीट-शास्त्र सम्बन्धी प्रयोग-शाला में इसी तरह का अध्ययन-कार्य जारी है। एम्ज तथा एन्कीनी (आयोवा) में समृद्ध मक्का-उत्पादक क्षेत्रों के परीक्षण-केन्द्रों में भी अमेरिकी कृषि विभाग तथा आयोवा राज्यीय कालेज के वैज्ञानिक इसी तरह के अनुसंधान-कार्य में रत हैं। हवाई स्थित अमेरिकी कृषि-विभाग के अनुसंधान-केन्द्रों तथा इसी तरह की अन्य अनेक प्रयोगशालाओं में भी वैज्ञानिक कीड़ों के बारे में अनुसंधान कर रहे हैं। अपने अनुसंधान कार्य में संलग्न विभिन्न संस्थाएं आपसी निकट सहयोग से काम करती हैं, क्योंकि एक संस्था की जानकारी से दूसरी संस्था लाभ उठाती है।

इन सब संस्थाओं के अनुसंधान-कार्य से जो जानकारी उपलब्ध होती है, उसका उद्देश्य कृषि-उत्पादकों एवं विशेषज्ञों को कृषि-निरोधक पौधों की किस्मों का विकास करने में सहायता प्रदान करना है। इन अनुसंधान-कार्यों के फलस्वरूप पौधों में इस तरह की दवाओं को प्रयुक्त किया जाएगा, जिनसे कीड़े या तो भाग जाएं या उन्हें सामान्य विकास एवं प्रजनन की दृष्टि से आवश्यक आहार से वंचित रहना पड़े।

अमेरिका तथा अन्य देशों में भी फसलों को नष्ट करने वाले कीड़ों के बारे में अध्ययन किया जा रहा है। इन अध्ययनों से जिन बातों के बारे में पता चलेगा उन्हें विस्तृत रूप में इस्तेमाल किया जाएगा, क्योंकि इनसे सभी फसलों के नष्ट होने से बचने की संभावना की जा सकती है।

कालेज की अनुसंधानशाला में वैज्ञानिकों को सही तौर पर यह बात पता चल गई है कि 'पिंक बालवर्म' नामी कीड़े को सबसे अधिक कौन सा खाना पसन्द है। १९२१ में जब इस कीड़े के सम्बन्ध में अनुसंधान-कार्य शुरू हुआ था, तब उद्योगशाला में 'पिंक बालवर्म, नामी कीड़ों के लगभग ९० प्रतिशत अण्डों से कीड़े उत्पन्न नहीं हुए थे। लेकिन अब प्रयोगशाला में शुद्ध केसीन (दूध का ठोस अंश) का प्रयोग कर बालवर्म नामी कीड़े खूब फलने-फूलने लगे हैं। बालवर्म जो खूराक पसन्द करते हैं, उसकी खोज हो जाने से 'ओलिगोफैगस' श्रेणी के कीड़ों के बारे इस प्रकार की पहली जानकारी प्राप्त हुई है। ये कीड़े खास किस्म के फूलदार पौधों को ही नष्ट करते हैं।

कैसीन के पुष्टिकारक तत्वों की मात्रा में परिवर्तन करने से बड़े आकार के या तेजी से विकसित होने वाले

डिम्भों का विकास किया जा सकता है। कीड़ों पर नियंत्रण रखने के लिए प्रयोगशाला में जो अनुसन्धान किए जाएँगे, इससे उन में आसानी हो जाएगी।

कीड़ों के लिए अच्छे खाने की खोज करते समय यह भी पता चल जाता है कि कौन सी वस्तुओं के मिलने पर वे पनप नहीं पाते। 'पिंक बालवर्म, के बारे में वैज्ञानिकों को यह पता लगा है कि खाने में चरबी तथा कोलीन (बी कामप्लैक्स का एक विटामिन) के न होने से डिम्भों के विकास में रुकावट पड़ती है। जब खाने में कोलैस्ट्रोल की मात्रा समाप्त कर दी गई, तब डिम्भ का प्यूपा (अण्डे की तृतीय उन्नत अवस्था) के रूप में विकास तो हुआ, लेकिन ये प्यूपा साधारण रूप नहीं प्राप्त कर सका। जब खाने में से सुक्रोस (एक प्रकार की चीनी) की मात्रा कम कर दी गई या नमक की मात्रा बढ़ा दी गई, तब डिम्भ के आकार में वृद्धि हो गई और प्रजनन तथा प्यूपा बनने के क्रम में भी तेजी आ गई।

बोजमैन प्रयोगशाला में अनुसन्धानकर्ता टिड्डों के खाने के उपयुक्त पौष्टिक तत्वों को आंकने के लिए उन्हें रासायनिक विधि से तैयार किए गए खाने पर पाल रहे हैं। इस अनुसन्धान-कार्य से उन्हें जो जानकारी उपलब्ध होगी उसे टिड्डों के वातावरण की प्रबन्ध-व्यवस्था में काम में लिया जाएगा और इस तरह कीड़े की चयापचय क्रिया को असन्तुलित किया जाएगा।

मक्का से जिन पदार्थों को निकाला गया है, उन के बारे में एम्ज तथा एन्कीनी में परीक्षाएं हो रही हैं। अनुसन्धानकर्ताओं का यह विश्वास है कि मीठी मक्का की कुछ किस्मों में ऐसे पौष्टिक गुण हैं जिन से मक्का को हानि पहुँचाने वाले कीड़े मक्का को अधिक हानि पहुँचाने से पहले ही परिपक्व हो कर बढ़ने लगते हैं। मक्का की इन किस्मों की विशेषताओं को दूसरी किस्मों में भी उत्पन्न कर देने से बहुत हद तक मक्का को कीड़ों से नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

मक्का के पौधों पर पलने वाले "यूरोपीय मक्का बोरर" नामी कीड़ों की प्रतिक्रिया का भी अध्ययन किया जा रहा है। इन कीड़ों के जीवन में जो विभिन्न रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनका भी अध्ययन किया जाता है। इन अध्ययनों को सम्पन्न करने में खिलाई जाने वाली वस्तुओं को पकाया जाता है, कीटाणु-मुक्त किया जाता है और अण्डों या डिम्भों के साथ छोटी छोटी शीशियों में रख दिया जाता है। इन शीशियों को बन्द कर दिया जाता है ताकि डिम्भों का बिना रुकावट विकास हो सके। इन कीड़ों के विरुद्ध किए जाने वाले संघर्ष का उद्देश्य इन्हें उस आहार से वंचित करना है जिससे ये फलते-फूलते हैं, अथवा इनके जीवन-क्रम को बदलना है जिससे कि ये कम से कम हानि पहुँचा सकें।

प्रयोगशाला के लिए जो कृषि-विशेषज्ञ फलों को नष्ट करने वाले कीड़े पालते हैं, उनका उद्देश्य यह होता है कि किस तरह से उनके हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता है। इन कृषि-विशेषज्ञों का यह विश्वास है कि यदि इन कीड़ों के मन-पसन्द खाने के बारे में हमें पता चल सके तो इन्हें पालने में अधिक सुविधा हो जाएगी। भूमध्य सागरवर्ती क्षेत्र तथा पूर्वी देशों के फलों को नष्ट करने वाली मैलन मक्खी तथा मैक्सिकन फलों को नष्ट करने वाली मक्खी पर भी इस सिद्धान्त को लागू किया जा सकता है। पकड़ने के साधनों एवं कीटमारों की उत्तमता की परीक्षा करने के लिए इस प्रकार के कीड़ों की बहुत सी किस्मों को पाला जाता है।

—:o:—
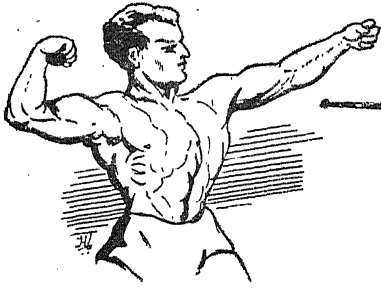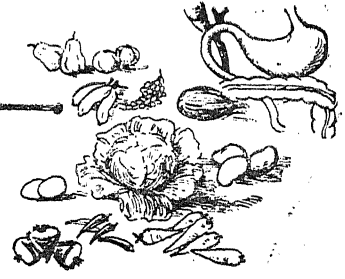
इस मौसम के रोग और उनके उपचार

(ले०—डा० के० स्थालेकर)

आज विनय जब दोपहर में ही बेसमय स्कूल से आकर लेट गया और मां के पुकारने पर भी कुछ नहीं बोला तब माँ उसके पास गई और पूछा कि क्यों रे बिन्नू, आज क्या बात है जो स्कूल से जल्दी आ गया और इस तरह चुपचाप लेटा है। यह कह कर जैसे ही ही मां ने विनय के सिर और माथे पर हाथ फेरा वैसे ही उसे पता चला कि बिन्नू को खूब तेज बुखार चढ़ा है। बिन्नू बोला,' मां मुझे सर्दी लग रही है, कुछ ओढ़ा दो। मां ने उसे दो कम्बल और रजाई ओढ़ा दी, पर उसको सर्दी और कंपकंपी लगती ही गई। करीब दो घन्टों के बाद उसकी सर्दी कम हुई और उसके सारे बदन से पसीना निकला तभी उसका बुखार भी कम हुआ। मां बिन्नू के अचानक तेज बुखार से घबड़ा गई थी, अतः उसने डाक्टर को बुला लिया था। डाक्टर ने कहा कि इस मौसम में यह बुखार बहुत लोगों को आता है, क्योंकि आजकल बरसात के कारण चारों तरफ गड्ढों, नालियों और नालों में पानी जमा हो जाता है और सब कहीं बड़ी-बड़ी घास उग आती है जिसमें मच्छर अपने अंडे देते रहते हैं। थोड़े ही दिनों में इनका नम्बर बहुत बढ़ जाता है और ये फिर रात-दिन, सुबह-शाम, जब कभी मौका पाते हैं, तो स्वस्थ और मरीज-सभी का खून पीना शुरू कर देते हैं। केवल खून पीने से ही कोई बीमारी नहीं होती, परन्तु मलेरिया के रोगी के खून पीने के साथ ही साथ मच्छर मलेरिया के कीटाणुओं को भी अपने शरीर में ले लेता है। ये कीटाणु बहुत बढ़ जाते हैं और जब मच्छर किसी स्वस्थ मनुष्य का खून पीता है उसी समय उसके शरीर में ये कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। मलेरिया के कीटाणु का जीवन इतिहास मनुष्य और मच्छर—दो जीवों पर निर्भर है। यदि तुम लोग मच्छरों से बचो मलेरिया नहीं हो सकता। परन्तु इसके लिये तुम्हें कुछ उपाय करने पड़ेंगे।

१. अपने मकान के तथा पास-पड़ोस के मकानों की सफाई, चारों तरफ के नाले, नालियों की सफाई, गड्ढों को मिट्टी से भरना, तथा बड़ी-बड़ी घासें निकालना बहुत आवश्यक है।

२. अपने घर के कोनों अंतरों की सफाई करना और खूब धुआँ करना चाहिए ताकि मच्छर भाग जायं।

३. रात में मच्छरदानी (मसहरी) का इस्तेमाल करना भी बहुत जरूरी है।

इस बीमारी से हिन्दुस्तान में ही लाखों आदमी हर साल मर जाया करते थे और हजारों की संख्या में अपाहिज हो जाते थे। परंतु ऐसा न समझना चाहिये कि हम इस बीमारी को जीत ही नहीं सकते, क्योंकि

'पनामा' नहर के उस प्रदेश में जहाँ बहुत अधिक मलेरिया फैलता था मच्छरों को नष्ट करके मलेरिया का अंत कर दिया गया है। इसी तरह दूसरे महायुद्ध के समय भूमध्यसागर में स्थित साइप्रेस द्वीप में भी मलेरिया और मच्छरों का नाम तक नहीं रहा। भारत सरकार भी इस देश से मलेरिया का अंत करने के लिये प्रयत्नशील है और सफलता भी प्राप्त हो चुकी है दिल्ली के आस-पास ६ मील तक के प्रदेश में मलेरिया तथा मच्छर नहीं पाये जाते।

बरसात के दिनों में सभी तरह के कीड़े, मकोड़े, मक्खी, मच्छर, भुनगे, पतिंगे आदि पैदा होते हैं। इन्हीं के कारण तरह तरह की बीमारियाँ भी फैलती हैं। मक्खी के कारण पेचिश और डायरिया (दस्त) फैलता है। मक्खी गन्दी जगहों और सड़ी हुई चीजों पर अपने अंडे देती हैं, इससे इस मौसम में उनका नम्बर भी बहुत हो जाता है। और यह मक्खी गन्दी जगहों पर बैठ कर अपनी गन्दी टाँगों से हमारी खाने की वस्तुओं पर बैठ जाती हैं और हम बीमारियों के कीटाणुओं को खाने के साथ खा जाते हैं—फलस्वरूप पेचिश और दस्तों की बीमारी शुरू हो जाती है।

इसी तरह इस मौसम में अधिकतर आंखें भी दुखने लगती हैं, क्योंकि मक्खियां सोते समय हम लोगों की आंखों पर बैठ जाती हैं और उसी गंदगी से आंखों में तकलीफ होने लगती है। इस लिये इनसे बचने के लिए घर में सफाई रखनी चाहिये, खाने-पीने की वस्तुओं को एकदम ढककर रखना चाहिये, मक्खियों को मारने के लिए डी० डी०टी, गैमरगीन तथा फिनाइल आदि का प्रयोग करना चाहिये तथा पाखाना, टट्टीघर की भी सफाई बहुत अच्छी तरह करवाना चाहिये।

इस मौसम में पानी काफी बरसता है। चारों तरफ कीचड़ रहता है। बच्चे, इसी कीचड़–मिट्टी में खेलते हैं, उसी से उनके खुजली शुरू हो जाती है। यह खुजली हाथ की उंगुलियों से शुरू होती है और काफी तकलीफ भी देती है। यदि हम सफाई से रहें, कीचड़–मिट्टी को आस-पास से हटा दें तो इस बीमारी से बच सकते हैं।

लगातार पानी बरसने के कारण हम सदा घर के अन्दर ही बंद रहते हैं। न कहीं बाहर निकल सकते हैं और न कहीं टहल ही सकते हैं। घर में रहकर खाना, लेटना और बैठना यही काम रह जाता है। खाना हजम होने के लिये चलना और टहलना बहुत जरूरी है इसलिए इस मौसम में ज्यादातर लोगों को बदहजमी या अपच या अजीर्ण हो जाता है, खाना नहीं पचता, खट्टी डकारें आती हैं, पेट में हल्का-हल्का दर्द रहता है तथा शरीर में सुस्ती मालूम होती है। इसलिए हमें चाहिए कि कभी एक आध दिन खाना न खायं जिससे पेट को आराम मिले। हमको भारी या गरिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए। हमारे भारत में मौसम में चातुर्मास शुरू होता है जिसमें व्रत रहकर हल्का खाना खाया जाता है। यह केवल इसीलिये है कि पेट बिगड़े नहीं और शरीर भी स्वस्थ रहे। परन्तु अब व्रत में हम पकवान तथा गरिष्ट चीजें खाते हैं जिससे व्रत का जो वास्तविक प्रयोजन है वह पूरा नहीं हो पाता है।

यह मौसम इतना अनिश्चित रहता है कि कभी एक दम तेज पानी बरसने लगता है, कभी एक दम सख्त गरमी और उमस होने लगती है। इसी अचानक सर्दी या ठंड और गर्मी के कारण भी हम बीमार पड़ जाते हैं और खांसी, जुकाम तथा बुखार आ जाता है। इसलिये हमें बहुत संभलकर रहना चाहिए। मौसम के हिसाब से कपड़े पहनकर परहेज करना चाहिए।

अब पीने वाला पानी भी गंदा मिलता है, क्योंकि लगातार पानी बरसने के कारण नदियों में बाढ़ आ जाती है, तमाम इधर-उधर की गंदगी बहकर पानी में मिल जाती है, दूसरे धूप नहीं निकलती। धूप के न निकलने से बीमारियों के कीटाणु नष्ट नहीं हो पाते, अतः टाइफाइड आदि तरह-तरह की अन्य बीमारियां भी हो जाती हैं। इसलिये इससे बचने के लिये पानी हमेशा उबालकर पीना चाहिये।

[शेष पृष्ठ ३२ पर]
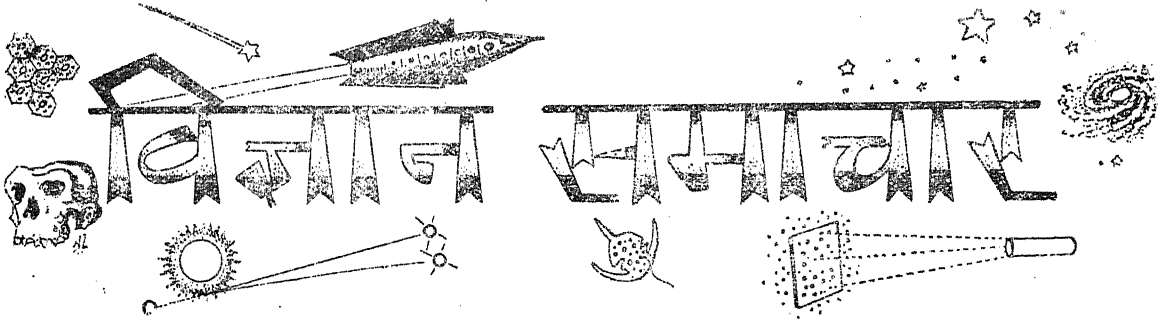
कल्याणकारी विज्ञान

विश्व के इतिहास का सब से बड़ा और कदाचित् सब से सफल वैज्ञानिक सम्मेलन शनिवार, १३ सितम्बर को जेनीवा में समाप्त हो गया।

सम्मेलन में भाग लेने वाले ६६ देशों के ६,३०० वैज्ञानिकों ने दो सप्ताह एक लोकोपयोगी आणविक विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र की जानकारी का विनिमय किया।

प्रतिनिधियों की यह सर्वसम्मत राय थी कि अणु-शक्ति के लोक-कल्याणकारी उपयोगों के सम्बन्ध में संयुक्तराष्ट्र-संघ के तत्वावधान में आयोजित किया गया यह दूसरा सम्मेलन अत्यधिक सफल रहा है।

अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत रूस सभी ने नियन्त्रित आणविक द्रावण से ताप उत्पन्न करने के सम्बन्ध में किये गये विविध प्रयत्नों के सम्बन्ध में हाल में ही गोपनीयता की नीति की समाप्ति की है। इस विधि में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाने पर संसार को समुद्री जल जैसे प्राकृतिक साधनों से शक्ति का एक प्रकार से असीम स्रोत प्राप्त हो जायेगा।

सम्मेलन-कक्ष के बाहर एक विशाल वैज्ञानिक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। इस प्रदर्शनी में २० सरकारों और दो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा अणुशक्ति से सम्बद्ध विविध. वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया। यहां दर्शकों ने एक सचमुच की आणविक भट्ठी को खड़ा होते, काम करते और बाद में उखड़ते हुए देखा। उन्होंने यहाँ द्रावण-अनुसन्धान सम्बन्धी यन्त्रों की वास्तविक परीक्षा ली जाती हुई देखी और अणुशक्ति के बीसियों पेचीदा अनुसन्धानात्मक यन्त्रों तथा उन मशीनों को भी देखा, जिन से विविध कार्यों के लिए इस शक्ति को उपयोग में लाया जाता है।

सम्मेलन के संबंध में आयोजित ७७ विभिन्न बैठकों में २,००० वैज्ञानिक निबंध प्रस्तुत किये गये। इस सम्मेलन से जिन कुछेक व्यापक प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ा है, वे इस प्रकार हैं :

(१) विखन्डन—आधार भूत प्रकार की आणविक भट्ठियों को सुधारने तथा नई किस्म की आणविक भट्ठियों का विकास करने की दिशा में १६५५ के बाद से भारी प्रगति हुई है। यह बतलाया गया कि अमेरिका में आणविक भट्ठा की इंजिनियरिंग से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समस्याओं को हल कर लिया गया है। १६६० के मध्य तक अमेरिका में व्यापारिक कार्यों के लिए ५ आणविक बिजली घरों से ७ लाख किलोवाट बिजली पैदा होने लगेगी।

सोवियत रूस ने अपने यहाँ १ लाख किलोवाट बिजली पैदा करने वाले एक बिजली घर के चालू किये जाने की घोषणा की उस ने बताया कि उस का इरादा पाँच और आणविक भट्ठियाँ लगा कर इस उत्पादन को छः गुना कर देने का है।

प्रशिक्षण और अनुसन्धान के काम आने वाली तथा उन अन्य प्रकार की आणविक भट्ठियाँ जितना आणविक ईंधन खर्च करती हैं उस से कहीं अधिक पैदा

कर लेती हैं, इसी प्रकार की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है।

जिन आणविक भट्ठियों का निर्माण वृहत्रूप में बिजली का उत्पादन करने के लिए किया गया है, उन में से अधिकाँश में इस समय ठोस ईंधन का उपयोग किया जाता है, किन्तु वैज्ञानिकों ने भविष्य में तरल ईंधन के उपयोग से क्या संभावित लाभ हो सकेंगे, इस प्रश्न की पूरी तरह छानबीन की।

(२) द्रावण—बिजली उत्पादन के इस साधन का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। विखण्डन-क्रिया सम्पन्न करने वाली आणविक भट्ठी में यूरेनियम जैसे तत्वों के अणु शृंखलावद्ध रूप में खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, जिस से भारी मात्रा में शक्ति उत्पन्न हो जाती है। द्रावण की क्रिया में उद्जन जैसे हलके तत्वों के अणु आपस में टकराते और संगलित हो जाते हैं, जिस से अधिक भारी तत्वों का निर्माण हो जाता है और अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यह क्रिया विखण्डन क्रिया से सर्वथा विपरीत है। वैज्ञानिक लोग इस बात से सहमत हैं कि नियन्त्रित द्रावण-क्रिया द्वारा सस्ती बिजली उत्पन्न करने में अभी वर्षों लगेंगे।

वैज्ञानिकों के सम्मुख मुख्य समस्या एक ऐसा साधन ढूंढ निकालने की है, जिस में प्ररस (प्लाज्मा) अथवा गरम अयनित गैस रह सके, जिस से पर्याप्त समय तक न्यूट्रोनों द्वारा आणविक ताप प्राप्त हो जाए। शृंखलावद्ध रूप में यह क्रिया सम्पन्न करने के लिए बहुत अधिक तापमान आवश्यक है। इस क्रिया के लिए लगभग १० करोड़ डिग्री सैण्टीग्रेड तापमान की आवश्यकता पड़ेगी।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए चुम्बकीय अथवा विद्यदणु चुम्बकीय क्षेत्रों में अधिकाँश प्रयत्न करने होंगे। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि काफी परीक्षणों के फलस्वरूप वे अन्ततः इस में सफल हो जायेंगे।

जेनीवा की वैज्ञानिक प्रदर्शनी के अमेरिकी विभाग में द्रावण सम्बन्धी अनुसन्धान के जिन चार यन्त्रों का प्रदर्शन किया गया, उनमें एक खिला भी है। इस यन्त्र का विकास लौस अलामोस की वैज्ञानिक प्रयोगशाला में किया गया है। विशेषज्ञों का कहना है कि इस यन्त्र द्वारा पिछले दो सप्ताहों में वास्तविक द्रावण-क्रिया सम्पन्न की जाती रही हो, इस बात की संभावना है।

(३) संचालन—अणुशक्ति के इस नये प्रयोग के बारे में, इस सम्मेलन में सम्भवतः सब से महत्वपूर्ण चीज थी वह नमूना, जिस से यह पता चलता था कि निकट भविष्य में अणुशक्ति से चलने वाला यात्री एवं मालवाही जहाज कैसा होगा और वह कैसे चलेगा।

अमेरिकी नौसेना के शिल्पी रिचर्ड पी० गोडविन ने कैमडन (न्यू जर्सी) में तैयार किये जा रहे 'सावेना' जहाज की कार्यप्रणाली पर विस्तार से प्रकाश डाला। सोवियत प्रतिनिधि मण्डल ने अणुशक्ति से चलने वाले बर्फ-तोड़क जहाज 'लेनिन' के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। जापानियों ने बताया कि वे एक ऐसे तेलवाही जहाज के निर्माण की योजना बना रहे हैं, जो अणुशक्ति-चालित पनडुब्बी होगा। फ्रांसीसियों ने कहा कि वे भी अणुशक्ति-चालित एक तेलवाही जहाज बनाने की सोच रहे हैं, किन्तु यह जहाज पानी के ऊपर चलेगा और एक बार ईंधन लेने के बाद दूर तक जा सकेगा।

(४) आइसोटोप और विकरण—वैज्ञानिक इस विषय में सामान्यतः एकमत हैं कि उद्योग, चिकित्सा तथा कृषि के क्षेत्रों में रेडियो-आइसोटोप तथा विकिरण महत्वपूर्ण साधन हैं और इन का महत्व और भी बढ़ता जायेगा।

रेडियो-आइसोटोप एक ऐसी अस्थिर वस्तु है, जिस से विकिरण होता है। इस का उत्पादन आणविक विखण्डन की क्रिया के समय गौण पदार्थ के रूप में किया जाता है। कभी कभी इसे प्रयोगशालाओं में विशेष रूप से भी तैयार किया जाता है।

(५) आधारभूत अनुसन्धान—इस क्षेत्र में व्यापक रूप में तेजी से प्रगति हो रही है, अमेरिकी प्रतिनिधि श्री आई० आई० रबी ने एक पत्रकार-सम्मेलन में बताया कि अमेरिका में आधारभूत अनुसन्धान की दृष्टि से आधे से भी अधिक कार्य किया जा चुका है।

(६) सुरक्षा—आणविक विज्ञान के इन सभी क्षेत्रों में अनुसन्धान-कर्त्ताओं तथा अणुशक्ति को व्यापारिक ढंग से उपयोग करने वालों के लिए सुरक्षा का प्रश्न सब से अधिक चिन्ता का है।

अमेरिकी मापदण्ड-विभाग पिछले ३० वर्षों से इस क्षेत्र में अग्रणी रहा है, उसकी सुरक्षा सम्बन्धी पुस्तिकाएं अनेक देशों में सुरक्षा सम्बन्धी सरकारी निर्देशों का आधार हैं।

प्राविधिक दृष्टि से, आणविक राख को ठिकाने लगाने की अब समस्या नहीं रही है, किन्तु अभी इस का आर्थिक हल नहीं ढूंढा जा सका है। अब ऐसी अद्भुत दवाओं का विकास कर लिया गया है जिन से जीवों पर से विकिरण के प्रभावों को दूर किया जा सकता है। फिर भी अभी इस दिशा में बहुत कुछ अनुसन्धान करने की आवश्यकता है।

रूस के अधूरे आंकड़ों को ध्यान में रखते हुए पिछले १६ वर्षों में विश्व भर में लगभग २०० आणविक भट्टियां चालू की गई हैं। इन से लोगों को किसी प्रकार की हानि पहुँचने का कोई समाचार नहीं मिला है।

आइसोटोपों द्वारा कैन्सर का उपचार हानिरहित

रूसी तथा पश्चिमी देशों के चिकित्सक इस बात में सहमत हैं कि कैन्सर के उपचार में रेडियो-आइसोटोपों को प्रयुक्त करने से मानव के मस्तिष्क एवं शरीर को जितना लाभ पहुँचता है, उसकी तुलना में हानि सर्वथा नगण्य होती है।

द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय अणु-सम्मेलन के सम्बन्ध में चिकित्सा जगत् में आइसोटोपों के उपयोग के विषय में किए गए प्राविधिक अधिवेशन के पश्चात एक पत्रकार सम्मेलन में वैनेज्वेला के डा० एम० रोशे ने यह बात बताई कि कैन्सर के निदान एवं उसके निश्चित स्थान का पता लगाने के उद्देश्य से कम मात्रा में रेडियो-आइसोटोपों को प्रयुक्त किया जाता है और इस से लेशमात्र भी हानि नहीं पहुँचती है।

रूसी प्रतिनिधि डा० ए० वी० कोजलोवा ने कहा कि परीक्षणों से यह पता चला है कि छोटी खुराकों में रेडियो-आइसोटोपों का उपयोग करने पर भी केन्द्रीय स्नायुमण्डल पर इसका प्रभाव पड़ता है, भले हो यह प्रभाव अस्थायी ही क्यों न हो। लेकिन डा० कोजलोवा ने उक्त अधिवेशन के अध्यक्ष डा० रोशे से इस बात में सहमति प्रकट की कि कैन्सर के निदान एवं उपचार कार्य में रेडियो-आइसो-टोपों को उपयोग में लाना चाहिए।

डा० रोशे ने बताया कि इस सब का यह अभिप्राय नहीं है कि कैन्सर के उपचार की कोई नई विधि पता लगी है। चिकित्सकों ने रेडियो-आइसोटोपों की सहायता से निदान कार्य में उपयुक्त होने वाली प्राचीन एक्सरे विधि को ही उन्नत बना लिया है।

समुद्र के नीचे विद्यमान सम्पदा

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के खान-इंजीनियर इस समय समुद्र के कुछ भागों में विद्यमान धातु युक्त चट्टानों को उपलब्ध करने की सम्भावनाओं का अध्ययन कर रहे हैं। यह अनुमान है कि इन भागों में समुद्र के नीचे प्रति वर्गमील में १५ लाख डालर की धातु सम्पदा विद्यमान है। इंजीनियरों का यह कथन है कि सब से बड़ी समस्या इस सम्पदा को सस्ती विधि से इस प्रकार अलग करने की है जिससे उसे बिक्री के योग्य बनाया जा सके। समुद्र के नीचे वाली चट्टानों में धातु की छोटी गोलों जैसी गाँठें मौजूद हैं, जिनकी विद्यमानता का पता लगभग ७५ वर्ष से है। इन चट्टानों में निम्न खनिज हैं—मैंगनीज, लोहा, निकल, तांबा तथा कोबाल्ट।

गाइगर काउंटर द्वारा मस्तिष्क की ग्रन्थियों का उपचार

शल्य-चिकित्सा बिना मस्तिष्क में ग्रन्थियों का पता लगाने के लिए वाशिंगटन में स्वास्थ्य सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था एक मशीन को इस्तेमाल कर रही है, जिसमें उन्नत गाइगर काउन्टर को प्रयुक्त किया गया है।

उक्त संस्था के डाक्टर पीयर्स बेली ने बताया कि उक्त नई ग्रन्थि निदान मशीन १७९ रोगियों की ग्रन्थियों का पता लगाने के लिए उपयोग में लाई जा चुकी है, इससे ८६ प्रतिशत रोगियों की ग्रन्थियों का पता लगाने में सफलता मिली है, उस नई मशीन के फलस्वरूप चिकित्सकों को रोगी की खोपड़ी की खाल उतारनी नहीं पड़ती है। डेढ़ घन्टे में ही सारी खोपड़ी की जांच कर ली जाती है।

डा० बेली ने बताया कि रोगी को रेडियमधर्मी आइसोटोप का टीका लगाया जाता है। ये आइसोटोप ग्रन्थियुक्त भाग में मस्तिष्क के सामान्य भाग की अपेक्षा अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं। जिस भाग में अधिक आइसोटोप संचित हो जाएं उसका पता उनके विकिरण की अधिक मात्रा का पता गाइगर कान्टर यंत्र द्वारा लगाया जा सकता है।

नया यांत्रिक मनुष्य

अणुशक्ति को लोक कल्याणकारी कार्यों में प्रयुक्त करने के सम्बन्ध में जेनीवा में जो द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय अणु-सम्मेलन है, उसमें आर्गोन राष्ट्रीय प्रयोगशाला द्वारा एक नया यान्त्रिक मनुष्य (रौबट) प्रदर्शित किया गया है, जिसका भार एक टन से अधिक है और ऊंचाई ८॥ फुट है।

आर्गोन में दूर के नियंत्रण से सम्बन्धित इंजीनियरिंग शाखा के ४३ वर्षीय निर्देशक श्री रैमन्ड सी० गोर्ट्ज का यह कथन है कि उस यान्त्रिक मनुष्य केवल चालक के आदेशों का पालन करता है। ये आदेश इसे बिजली द्वारा भेजे जाते हैं। यान्त्रिक मनुष्य में बहुत कम बुद्धि है। अपनी शक्ति से अधिक बोझ न उठाने के बारे में निश्चय करने की केवल शक्ति इसमें है। इस प्रकार के निर्णयों के लिए इसमें कुछ उपकरण विद्यमान हैं। यह यान्त्रिक मनुष्य अपनी प्रत्येक भुजा से ३० पौंड का भार लगातार और ५० पौंड का वजन कुछ समय तक विश्राम करने के बाद उठा सकता है।

श्री गोर्ट्ज और उनके तीन सहायक जेनीवा के के प्रदर्शनी-स्थल पर, यान्त्रिक मनुष्य के बारे में सूचना देने के लिए, उपस्थित रहते हैं।

यान्त्रिक मनुष्य (रौबट) की क्रियाओं के बारे में श्री गोर्ट्ज ने यह बात बताई :—

रेडियमधर्मी प्रयोगशालाओं में काम करने के लिए जिस मशीन को प्रयुक्त किया जाएगा, उक्त यान्त्रिक मनुष्य उसी का एक अग्रिम नमूना है। हमने यह यान्त्रिक मनुष्य का नमूना इस ढंग से तैयार किया है जिससे यह सरलता से मरम्मत कार्य कर सके। यह दूसरे ऐसे ही यान्त्रिक मनुष्यों की मरम्मत भी कर सकता है तथा साथ ही अन्य सामग्री और उपकरणों की देख भाल भी कर सकता है। स्वयं अपनी मरम्मत करनी भी इसके लिए संभव है। आवश्यक यह है कि इसका एक हाथ और क्रेन कार्य कर रहे हों।

जिस यान्त्रिक मनुष्य का जेनीवा में प्रदर्शन किया जा रहा है, वह ऐसे यान्त्रिक मनुष्यों में तीसरा है। मुख्य नियन्त्रण-कक्ष में बैठ कर इसका सरलता से नियन्त्रण किया जा सकता है। मुख्य नियन्त्रण कक्ष का भार लगभग १५०० पौंड होता है और इसके साथ १००० पौंड भार का विद्युदणु सामान वाला डिब्बा रहता है।

चालक अपने पांव से विभिन्न बटन दबा कर इस यान्त्रिक मनुष्य को स्वेच्छा के अनुसार चला सकता है। वह प्रत्यक्ष रूप से एवं टैलिविजन विधि से इसकी क्रियायों को आसानी से देख सकता है।

यान्त्रिक मनुष्य के सही जगह पर पहुँच जाने के बाद चालक उसकी भुजा एवं हाथ की क्रियाओं का विद्युदणु-चालित यन्त्रों द्वारा संचालन करता है।

उस यान्त्रिक मनुष्य के महसूस करने वाले हाथ महत्वपूर्ण अंग हैं। चालक इन हाथों एवं बाजुओं को अपने सामने पड़े ऐसे ही यान्त्रिक हाथों एवं बाजुओं की सहायता से चलाता है। चालक इन हाथों और बाजुओं को जिस प्रकार की गति देता है वैसी ही यान्त्रिक मनुष्य भी करता है।

डा० गोर्ट्ज ने यान्त्रिक हाथों की क्षमता के बारे में बताया कि—इनकी सहायता से वैज्ञानिक रेडियमधर्मी प्रयोग शालाओं में विकिरण के भय से मुक्त होकर जटिल परीक्षण कर सकेंगे।

सम्पादकीय

नापतौल की दाशमिक प्रणाली

भौगोलिक सीमाओं की दुरूहता तथा देश के छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होने के कारण भारत में अनेक प्रकार की नाप तौल और मुद्रा की प्रणालियां प्रचलित रहीं। अपने राज्य काल में प्रथम बार अकबर का ध्यान इन प्रणालियों की एकरूपता की ओर आकर्षित हुआ। कालावधि में परिवर्तन होते-होते अनेक प्रकार की प्रणालियाँ देश में चलने लगी।

इस समय देश में लगभग १५० प्रकार की नाप तोल की प्रणालियाँ चल रहीं है। लगभग १०० प्रकार के सेर प्रचलित है जिनका भार २४ तोले से ११२ तोले तक है। अनेक प्रकार के बीघे है जिनका क्षेत्रफल विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। इन विभिन्नताओं से बड़ी असुविधा होती है—बहुत से लोग ठगे जाते हैं; हिसाब-किताव के लिये भाँति-भाँति के पहाड़े रटने पड़ते हैं; व्यापार वाणिज्य में बाधा पड़ती है; उद्योग धंधों में, बेचने खरीदने में और वैज्ञानिक कार्यों में बड़ी गड़बड़ी रहती है।

अतः आवश्यक है कि देश भर में एक आदर्श प्रणाली का प्रचलन हो। आदर्श प्रणाली में यह गुण होने आवश्यक हैं:—

(१ प्रणाली सरल और बोधगम्य हो। (२) छोटे और बड़े पैमानों का एक सा क्रम हो और (३) प्रणाली में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग किये जाने की क्षमता हो। लगभग २००० वर्ष पूर्व भारत में शून्य का व्यवहार प्रारम्भ हुआ। १८ वीं शताब्दी से इस सिद्धान्त पर आधारित दाशमिक प्रणालियों का सूत्रपात हुआ। अमेरिकी स्वातन्त्र संग्राम के पश्चात राष्ट्रपति जेफर्सन ने डालर को १०० भागों में बांटा। फ्रान्स की क्रान्ति के पश्चात तल्लिरेन्द्र ने वहाँ दाशमिक प्रणाली का प्रचलन प्रारम्भ कराया। १८६० ई० में भारतवर्ष में दाशमिक प्रणाली के चलाने के हेतु एक विधेयक पारित हुआ। किंतु विदेशी सरकार प्रतिरोधी दल के समक्ष झुक गई और यह प्रणाली कार्यान्वित न हो सकी। देश के स्वतंत्र होने के पश्चात राष्ट्रीय सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १९५५ ई० में एक आयोग का गठन हुआ जिसने दाशमिक प्रणाली के प्रचलन की महत्ता स्वीकार की। १९५६ में एक विधेयक पारित हुआ जिसके अनुसार दाशमिक प्रणाली के प्रचलन को देश में मान्यता दी गई। दाशमिक प्रणाली के प्रचलन के महत्व को संसार ने भली भांति समझ लिया है। गत १०० वर्षों में संसार के ५८ देशों ने इसे अपनाया है।

भारत वर्ष में १ जनवरी १९५७ से इस प्रणाली के प्रचलन की व्यवस्था प्रारम्भ हुई इसी तिथि से तापमान को डिग्री सेन्टी ग्रेड में और वर्षा को मिलीमीटर में नापा जाने लगा। फिर १ अप्रैल १९५७ से दाशमिक मुद्रा का चलन प्रारम्भ हुआ। अब १ जुलाई १९५८ से पटसन के व्यापार में नाप तोल की दाशमिक प्रणाली अपनाई गई है और १ अक्टूबर १९५८ से देश भर में इस प्रणाली का उपयोग प्रारम्भ हो रहा है। सर्व प्रथम यह देश के कुछ चुने क्षेत्रों में और सूती वस्त्र, लोहा, इस्पात, इंजीनियरी, भारी रसायन, सीमेंट, नमक, कागज और कहवा में प्रयुक्त होगी। इन क्षेत्रों में नई और पुरानी दोनों प्रणालियाँ ३० सितम्बर १९६० तक मान्य होंगी। तत्पश्चात केवल दाशमिक प्रणाली द्वारा ही कार्य होगा। शेष सभी कार्यों के लिये ३० सितम्बर

१९६८ तक दोनों प्रकार की नाप तौल की प्रणालियाँ देश में चलेंगी। इस तिथि के पश्चात केवल दाशमिक प्रणालियों का चलन ही रह जायगा और पुरानी प्रणालियों की समाप्ति हो जावेगी।

भारतीय मानक संस्था के मानकों के आधार पर बाटों को बनाया गया है और स्केल मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी के अन्वेषणों के आधार पर बाटों का स्वरूप निश्चित किया गया है। सबसे बड़ा बाट ५० किलोग्राम का और सबसे छोटा १ मिलीग्राम का होगा। ये बाट क्रमशः ५०, २०, १०, ५, २ और १ किलो ग्राम और ५००, २००, १००, ५०, २०, १०, ५, २, और १ मिलीग्राम के रहेंगे। ५० किलोग्राम से १०० ग्राम तक के बाट षटकोणाकार होंगे। ५० किलोग्राम से ५ किलोग्राम तक के बाट ढलवा लोहे के बनेगें जिन में पकड़ने के लिये नरम इस्पात के कड़े होंगे। २ किलोग्राम से १०० ग्राम तक के बाँट भट्ठी में गरम किये गये इस्पात के होंगे जिनमें पकड़ने के लिये घुँडियाँ रहेंगी। सुनारों की सुविधा के हेतु १ किलोग्राम से १ ग्राम तक के बाँट पीतल या कांसे के बनेंगे। ये वृत्ताकार होंगे और अन्य साधारण बाटों की अपेक्षा अधिक ऊँचे रहेंगे। मिलीग्राम वाले बाट पीतल, अल्युमिनियम या निकिल सिल्वर की चादरों के बनेंगे। सुनारों के लिये यह सभी बाँट वृत्ताकार होंगे किन्तु साधारण उपयोग के हेतु ५००, ५० और ५ मिलीग्राम के बाट षटकोणाकार, २००, २०, और २ मिलीग्राम के बाँट आयताकार और १००, १० और १ मिलीग्राम के बांट त्रिभुजाकार होंगे। २० माग्र से ऊपर के पीतल के बांटों में छेद रहेगा जो ऊपर छोटा और अन्दर बड़ा होता जावेगा। इस में सीसा पिलाकर मुहर दे दी जावेगी।

सोने चांदी तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को तौलने के लिये विशेष रूप से पीतल या कांसे के बांट बनेंगे। ये बांट बेलनाकार होंगे। सब बाटों पर हीरे की मुहर रहेगी। २० किलोग्राम से १ ग्राम के बाटों पर हीरे की के साथ हिन्दी और अंग्रेजी में बुलियन भी लिखा मुहर रहेगा। २० किलोग्राम से १० किलोग्राम तक के बाटों में कड़े और ५ किलोग्राम से १ ग्राम तक के बाटों में घुंडियाँ रहेंगी।

दाशमिक प्रणाली का प्रचलन देश की उन्नति के लिये एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे प्रत्येक क्षेत्र में सुविधा हो जावेगी और अनिश्चय की बाधा दूर हो जावेगी। उद्योग की प्रगति की दृष्टि से इन प्रणालियों के प्रचलन के हेतु यह समय बड़ा उपयुक्त है। अमेरिका और इंग्लैंड जैसे व्यवसायी देश बहुत दिनों से दाशमिक प्रणाली अपनाने का विचार कर रहे हैं किन्तु वे ऐस कर पाने में असमर्थ हो गये हैं। उनके लिये दाशमिक प्रणाली अपनाने का अर्थ है करोड़ों हिसाब किताब की मशीनों (Calculating machines) को बेकार कर देना और इस हान को उठाने की क्षमता उनमें अब नहीं रह गई है। आज जब भारतवर्ष अपने उद्योग के शैशवकाल में है उसके सम्मुख ऐसी कोई समस्या नहीं है। इस लिये हम कह सकते हैं पुरानी प्रणालियों को छोड़ कर नई दाशमिक प्रणाली अपनाने का सर्वोत्तम समय यही है।

—

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,

इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

अक्टूबर १९५८

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशन—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ६६ चक, इलाहाबाद—३।

भाग ८८ संख्या २

नवम्बर १९५८, वृश्चिक २०१५ वि० कार्तिक १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [इस अङ्क का मूल्य ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान, नवम्बर १९५८
पृष्ठ ३३-३८

भू-अन्तर की रचना

[ओमशंकर द्विवेदी एम० ए०, भूगोल विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

भूगर्भ शास्त्रियों ने भू अन्तर की रचना के विषय में अनेकानेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। किन्तु अब भी भू अन्तर एक विवाद का ही विषय बना हुआ है। यद्यपि आधुनिकतम वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों से पृथ्वी की आंतरिक रचना स्पष्टप्रायः हो जाती है किन्तु उन पर्यवेक्षणों से विभिन्न भूगर्भवेत्ता विभिन्न प्रकार की आँतरिक रचनायें प्रमाणित करते हैं।

भूगर्भ की रचना के विषय में प्रतिपादित लगभग सभी सिद्धान्त निम्न तथ्यों पर आधारित हैं—

(क) भूगर्भ में ताप वृद्धि :— यह ज्ञात किया जा चुका है कि प्रति ३० स ८० फीट भू-अन्तर में १°फ० ताप बढ़ जाता है और यह ताप इसी अनुपात में बराबर अन्तर की ओर बढ़ता जाता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भूपटल के ६० मील नीचे ताप क्रम लगभग ७,०००°फ० होगा। यह ज्ञात ही है कि २,२००°फ० या इससे अधिक ताप पर कोई भी चट्टान अपने ठोस रूप में नहीं रह सकती है।

(ख) ज्वालामुखियों की उपस्थिति :- ज्वालामुखी के उद्‌गार के समय भू-अन्तर से लावा निकलता है जो कि गाढ़े द्रव के रूप में होता है और ठण्डा होने पर ठोस रूप धारण कर चट्टान बन जाता है। इससे भू-अन्तर में उपस्थित पदार्थों की रचना पर प्रकाश पड़ता है।

(इ) गर्म जल स्रोत :— दुनिया के अनेक देशों में जैसे न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, संयुक्तराज्य अमेरिका आदि में गर्म जल के सोते पाए जाते हैं जिन्हें गर्म जल स्रोत (Hot Spring) और गेसर (Geyser) कहते हैं। इनसे बहुधा गर्म जल और वाष्प निकलता रहता है। ये भू-अन्तर में ऊष्मा के प्रतीक हैं।

(ई) भूचाल :— भूचाल, भू-अन्तर की विभिन्न परतों में घनत्व और ताप के अन्तर के ही कारण आते हैं। इनसे पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं।

(उ) वैज्ञानिक निष्कर्ष :— वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि पूर्ण पृथ्वी का आपेक्षिक घनत्व ५.५ है तथा ऊपरी चट्टानों (परतदार या आग्नेय) का आपेक्षिक घनत्व २.६ है, अतः भू-अन्तर का आपेक्षिक घनत्व ५.५ से अधिक अवश्य होगा।

कान्ट और लापलास का मत

इन दोनों जर्मन भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार भूगर्भ द्रवावस्था में है। इनके मतानुसार पहले पृथ्वी गैस-पुञ्ज थी और शनैः शनैः ठण्डा होने पर द्रव और फिर ठोस हुई और चूंकि यह शीतलीकरण की क्रिया ऊपरी पटल से प्रारम्भ हुई थी इस कारण भू-अन्तर अब भी द्रवावस्था में होगा।

कान्ट और लापलास के अनुसार भूपटल के लगभग ६० मील नीचे के बाद पृथ्वी द्रवावस्था में है या भूगर्भ द्रव से निर्मित हैं।

इन दोनों विद्वानों ने ताप को ही प्राथमिकता दी है और चाप (Pressure) पर कोई विचार ही नहीं किया। जैसे जैसे हम भू-अन्तर की ओर जाते हैं ताप के साथ-साथ चाप भी बढ़ता जाता है और यदि ताप और चाप समान अनुपात में बढ़ें तो पदार्थ की दशा परिवर्तित नहीं होती।

यदि भू-अन्तर द्रव होता तो सभी ज्वालामुखियों से जो कि भू-अन्तर से सम्बन्ध रखते हैं एक ही प्रकार का लावा निकलना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं होता अतः भू-अन्तर के द्रव होने में सन्देह है। यदि हम यह

मान भी लें कि भू-अन्तर द्रवावस्था में होगा तो उसके गुण अवश्य ही ठोसों जैसे होंगे और यह सम्भावना हो सकती है कि जब भी उस पर चाप (किसी कारण से) कम हो जाता है तो वह द्रव रूप धारण कर लेता है, जिसे हम ज्वालामुखी उद्‌गार के समय देखते हैं।

स्वेस का सिद्धान्त

एडवर्ड स्वेस भी एक जर्मन भूगर्भ-शास्त्री थे। भू-अन्तर के विषय में उनका सिद्धांत चट्टानों के घनत्व पर आधारित है स्वेस ने भूपटल से भूकेन्द्र तक की दूरी को घनत्व के अनुसार तीन भागों में बांट दिया है जैसा कि चित्र संख्या १ में प्रदर्शित किया गया है। इन भागों के नाम हैं (१) सियाल (Sial (२) साइमा (Sima) तथा (३) (नाइफ) (Nife)।

चित्र सं० १
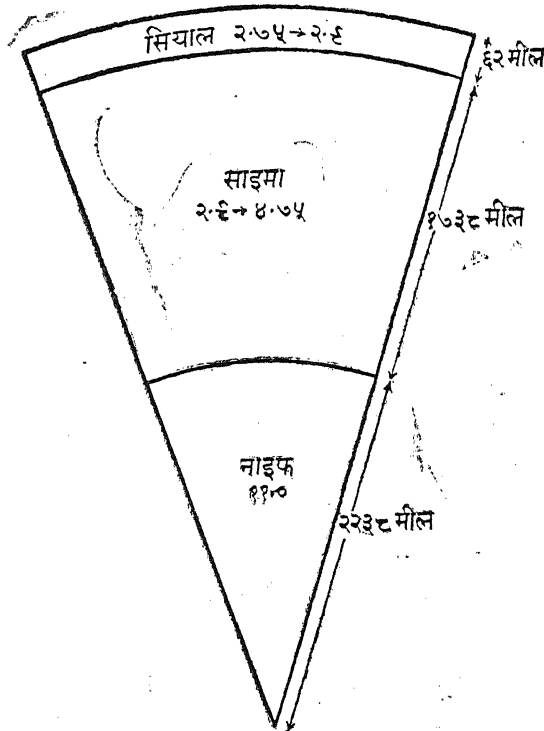
प्रथम परत या सियालः—यह भूमि की ऊपरी सतह है। इसे हम भूपटल भी कह सकते हैं। स्वेस ने भूसतह से इस परत की गहराई ६२ मील मानी है। उनके मतानुसार यह परत सिलिकन और एल्युमिनियम तत्वों से निर्मित है और इसका आपेक्षिक घनत्व २.७५ से २.९ के बीच में है। इस परत में ग्रेनाइट और नीसेस (Gneisses) प्रकार की चट्टानें तथा सोडियम, पोटैशियम और एल्यूमिनियम के सिलिकेट पाए जाते हैं। इसमें पर्तदार चट्टानें कठोर भूपृष्ठों (Shields) को ढके हैं और कहीं-कहीं इन परतदार चट्टानों को तोड़ कर ग्रेनाइट के ये पृष्ठ बाहर भी निकल आए हैं। इस परत की अधिकतम मोटाई वहीं पाई जाती है जहाँ कि भू द्रोण (Geosyncline) स्थित हो।

द्वितीय परत या साइमाः—यह स्याल परत के नीचे वाली परत है जिसकी कि मोटाई १७३८ मील है तथा आपेक्षिक घनत्व २.०९ से ४.७५ तक है। मुख्यतः यह परत सियाल परत के नीचे ही स्थित है किन्तु कहीं-कहीं ऊपरी पटल में लावा के रूप में प्रविष्ट हो गई है या ज्वालामुखी से पृथ्वी तल पर भी आ गई है और इस प्रकार से लावा के ठण्डा होने पर बसाल्ट (Basalt) तथा गेब्रो (Gabbro) प्रकार की चट्टानें बन गई हैं। इस परत के मुख्य तत्त्व मैगनीशियम, कैलसियम तथा लोहे के सिलिकेट हैं।

तृतीय परत या नाइफः—स्वेस ने इस परत की मोटाई का अनुमान २२३८ मील लगाया है, तथा इसका आपेक्षिक घनत्व लगभग ११ है। ऐसा अनुमान है कि इस परत के प्रमुख तत्त्व लोहा और निकिल के परस्पर सयोग से बने होंगे। इस प्रकार की चट्टानें हमें भूतल पर नहीं मिलती अतः इस परत का सभी ज्ञान अनुमानित है।

इस प्रकार स्वेस के अनुसार पृथ्वी का ऊपरी पटल स्याल का बना है जिसमें कि महाद्वीपीय भाग सम्मिलित हैं किन्तु कहीं २ इसमें भूपृष्ठ भी निकल आए हैं। दूसरी पर्त महासागरीय तलों से आरम्भ होती है।

वान्डरग्रेट (Vander Gracht) का सिद्धान्त

वान्डर ग्रेट का सिद्धान्त भी स्वेस के सिद्धान्त पर ही

आधारित है किन्तु वह स्वेस की तरह तीन पटलों की राय को नहीं मानते। ग्रेट के अनुसार भूपटल से पृथ्वी के केन्द्र तक चार अलग अलग-गुणधर्मों के भाग हैं जैसा चित्र २ से स्पष्ट है। ये चारों भाग आपेक्षिक घनत्व और तत्वों में एक दूसरे से भिन्न हैं।

चित्र सं० २

सियाल २.७५→२.९
६० किलोमीटर
साइमा
३.१→४.७५
११४० किलोमीटर
धात्वीय सिलिकेटों का मंडल
४.७५→५.०४६७५
१७०० किलोमीटर
धात्वीय न्येष्ठि
११.०
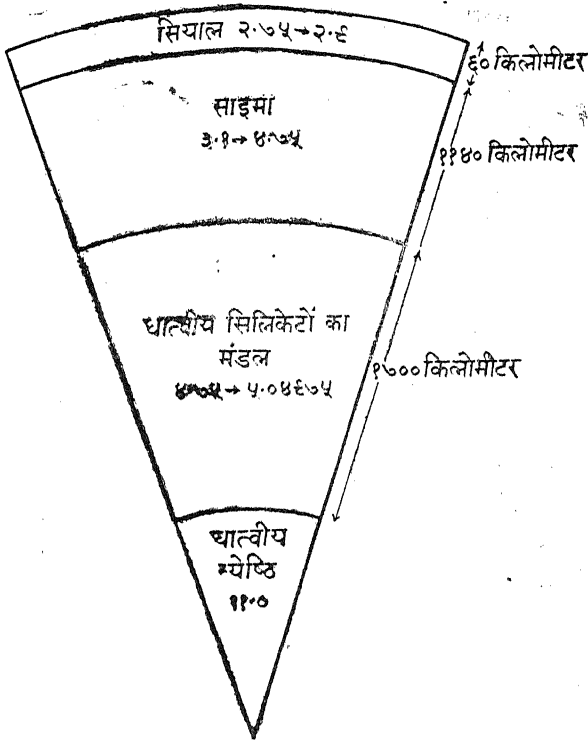
सियाल परत—ग्रेट के अनुसार यह परत ६० किलोमीटर मोटी है और इसका आपेक्षिक घनत्व २.७५ से २.९ तक है।

साइमा परत—इस परत की मोटाई लगभग ११४० किलोमीटर है तथा इसका आपेक्षिक घनत्व ३.१ से ४.७५ तक परिवर्तन होता है।

धात्वीय सिलिकेटों का मंडलः इस परत की मोटाई को ग्रेट ने १७०० किलोमीटर के लगभग आंका है तथा इसका आपेक्षिक घनत्व लगभग ४.७५ से ५.०४६७५ तक परिवर्तित होता है।

धात्वीय न्येष्ठिः—यह पृथ्वी के केन्द्रीय भाग में स्थित है और इसका आपेक्षिक घनत्व लगभग ११ है।

इन भागों के गुण तथा चट्टानें स्वेस के अनुसार ही हैं।

भू अन्तर और भूचाल विज्ञान Seismology)

सीस्मोग्राफ के आविष्कार के बाद भूगर्भ की रचना के विषय में अनेक नए तथ्य ज्ञात हुए और बहुत सी वह बातें भी प्रकाश में आ गईं जिनके कि विषय में पहले केवल विचार ही किया जाता रहा था।

भूचाल ज्वालामुखी के उद्गार, आँतरिक गुफाओं के भरने, बड़े हिमखण्डों के गिरने, भूखण्ड के फिसलने या अन्तर भू-शक्तियों (Endogenetic forces के) कारण ही आते हैं, किन्तु बड़े भूचालों के लिए सदैव ही बड़ी भूगतियां उत्तरदाई होती हैं। उपरोक्त कारणों से पृथ्वी में कम्पन पैदा हो जाते हैं जो कि भू-पटल और अन्तर को भी प्रभावित करते हैं। इन्हीं कम्पनों का अभिलेख जो कि सीस्मोग्राफ से होता है हमें भू अन्तर की रचना और गठन के विषय में सामग्री प्रदान करता है।

चित्र सं० ३
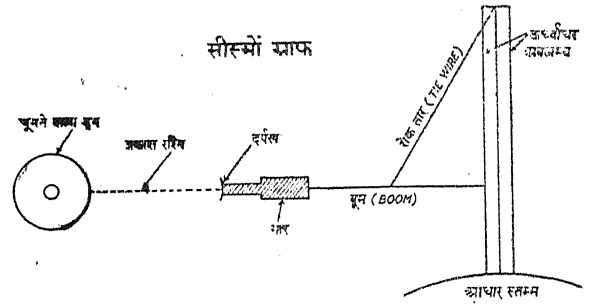
सीस्मोग्राम जैसा कि ऊपर के चित्र सं० ३ में दिखाया गया है आधार स्तम्भ पर लम्बवत एक लट्ठे पर खड़ा होता है और ऊर्ध्वाधर अवलम्बों से सधा रहता है। पृथ्वी से कुछ ही दूरी पर इसमें एक छड़ लगी होती है जिसे कि बूम कहते हैं। इसी बूम के दूसरे सिरे पर भार तथा दर्पण लगे होते हैं जिनकी कि सहायता से घूमने वाले ड्रम पर जिसके कि ऊपर फोटोग्राफिक प्लेट चढ़ी रहता है प्रकाश रश्मि डाली जाती है। बूम जो कि हर दिशा में गति करने के लिए स्वतन्त्र होती है ठीक स्थान पर रहने के लिए रोक तार से ऊर्ध्वाधर लट्ठे से

बाँध दी जाती है। जब पृथ्वी में कम्पन होते हैं तो अधिक लम्बाई के कारण बूम वेग से हिलने लगती है और यह दोलन प्रकाश रश्मि के द्वारा फोटोग्राफिक प्लेट पर अंकित कर लिए जाते हैं। यह दोलन विभिन्न आकार और तीव्रता के होते हैं जैसा कि चित्र के नीचे के भाग में दिखाया गया है।

जब सीस्मोग्राफ से इन भूचालीय दोलनों को अंकित किया जाता है तो हमें ज्ञात होता है कि पहले प्रारम्भिक दोलन आते हैं जिन्हें कि प्राथमिक तरंगें 'P' (Preliminary waves) कहते हैं। इसके कुछ अन्तर पर द्वितीयक तरंगें 'S' (Secondary waves) आती हैं यह दोलन प्राथमिक दोलनों से बड़े होते हैं। अन्त में लम्बी तरंगें L' (Long waves) आती हैं। भूतल पर भूचाल के दोलन इन्हीं तीन प्रकार की तरंगों के साथ आते हैं। किन्तु इन तरंगों की उपस्थिति ठोसों में ही होती है। द्रवों में यह तरंगें या तो गतिशून्य हो जाती हैं या नगण्य वेग से चलती हैं। L तरंगें नाभि Focus) से लम्बा परिधीय पथ ग्रहण करती हैं। P तथा S तरंगें क्रमशः संपीडन (Compressional) और विकृत (Distortional) होती हैं। P तरंगो का वेग घनत्व और माध्यम के संपीडन प्रतिरोध (Compressional Resistance) पर निर्भर करता है, तथा S तरंगो का वेग घनत्व तथा माध्यम के विकृत प्रतिरोध (Distortional Resistance) पर।

एक समावयव (Homogenious) ठोस में P तथा S तरंगों का मार्ग एक सरल रेखा ही होती है किन्तु यदि माध्यमों के जिनसे होकर यह तरंगें जाती हैं घनत्व में अन्तर है तो यह तरंगे भी प्रकाश किरणों की भाँति झुक जाती हैं या लौट जाती हैं। यदि माध्यम का घनत्व क्रमशः बढ़ता जाता है तो ठीक प्रकाश की किरणों की ही भाँति यह माध्यम की सतह की ओर उन्नतोदर हो जाती हैं।

उपरोक्त तीनों प्रकार की तरंगों के ज्ञात होने से हमें इतना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका था जितना कि बाद के वर्षों में इन्हीं तरंगों के कुछ अन्य विभागों के ज्ञात होने से हुआ। सन् १६०६ में क्रोशिया (Croatia) के भूचाल से एक नया तरंगों का जोड़ा प्रकाश में आया जिसके गुण P और S तरंगों के ही समान थे किन्तु इन तरंगों का वेग अपनी पूर्व तरंगों से कुछ कम था। इन तरंगों को Pg तथा Sg का नाम दिया गया। सन् १६२३ में टॉरन (Tauern) के भूचाल से एक तीसरी प्रकार की तरंगों का ज्ञान हुआ। ये तरंगे भी P और S के ही समान थी तथा इनका वेग P, S तथा Pg और Sg के बीच का था। इन तरंगो को P* तथा S* का नाम दिया गया। आंतरिक पृथ्वी के घनत्व में अन्तर होने के कारण P तथा S तरंगे प्रत्यावर्तित (Refract) हो जाती है और इन नई तरंगो Pg, Sg तथा P* और S* को जन्म देतीं हैं। इन्ही विभिन्न तरंगों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से पृथ्वी की विभिन्न आँतरिक रचनाओं का पता लगाया गया है।

विभिन्न स्थानों पर भूकम्प के समय लिए गये अभिलेखों से पृथ्वी के विभिन्न परतों की रचना की रूपरेखा का अनुमान किया जा सकता है। Pg और Sg तरंगो के आविष्कार से यह ज्ञात हो गया है कि यह तरंगे पृथ्वी की ऊपरी परतों में बहती हैं क्योंकि अभिकेन्द्र (Epicentre) के निकट स्थित सीस्मोग्राफ केन्द्र ही इनका अभिलेख करते हैं। जब कि P और S तरंगे भीतर के परतों में अधिक वेग से बह कर फिर धरातल की ओर प्रत्यावर्तित हो जाती हैं। P* और S* के माध्यमिक वेग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऊपरी परत और आंतरिक अधिक घनत्व की परत के अतिरिक्त पृथ्वी में एक माध्यमिक परत भी उपस्थित है और इन तीन प्रकार की परतों से ही तीन प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। तीनों प्रकार की तरंगों के वेग अलग-अलग होने से यह निश्चित हो जाता है कि इन तीनों परतों का घनत्व भी एक दूसरे से भिन्न है। किसी पदार्थ में तरंगों के वेग से उसके घनत्व और लोच का पता लग जाता है। प्रयोगशाला में विभिन्न पदार्थों पर विभिन्न भौतिक अवस्थाओं में प्रयोग करके उनकी सीस्मोग्राफ से प्राप्त वास्तविक परिणामों से तुलना करने पर विभिन्न परतों के घनत्व और लोच का पता लग जाता है। और इससे निम्न फल निकलते हैं—

चित्र सं० ४
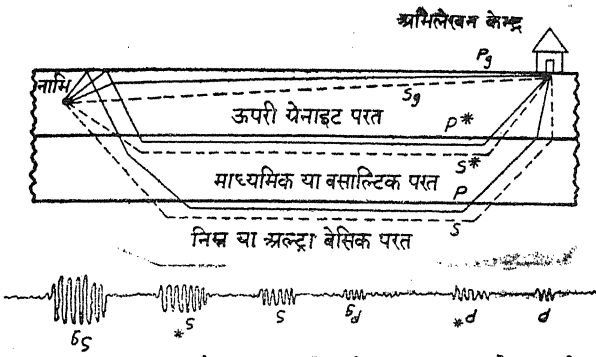
(१) Pg और Sg तरंगे जो कि भूपटल के ऊपरी भाग में क्रमशः ५.४ और ३.३ किलोमीटर प्रति सेकिण्ड के वेग से बहती है लगभग वही फल देती है जो कि प्रयोगशाला में इसी प्रकार की तरंगों को ग्रेनाइट की चट्टान में बहाने पर मिलता है अतः हम कह सकते हैं कि पृथ्वी की ऊपरी परत ग्रेनाइट चट्टानों की बनी है। आज सभी भूगर्भ शास्त्री इस तथ्य में विश्वास करते हैं। यद्यपि इस परत में आग्नेय, परतदार और परिवर्तित चट्टानों के भी अंश सम्मिलित हैं।

(२) माध्यमिक परत में P* तथा S* तरंगें क्रमशः ६.०—७.२ किलोमीटर और ३.५—४.० किलोमीटर प्रति सेकिण्ड के वेग से बहती हैं। यदि हम कल्पना कर लें कि यह परत प्लूटनिक और परिवर्तित चट्टानों से निर्मित होगी और इसका गठन बसाल्ट प्रकार का होगा तो वेगों का यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है। किन्तु पटल के गठन की अवस्था एक विवाद का विषय है। एक विशिष्ट गठन वाली द्रवित चट्टान भौतिक दशाओं और विशेषतः चाप के प्रभाव से विभिन्न खनिजों की रवेदार चट्टान में बदल सकती है या शीशे के समान बेरवेदार स्थिति में रह सकती है या यह सम्भव है कि वह ताप की न्यूनता के कारण ठोस अवस्था को प्राप्त कर ले। इन तथ्यों ने इस परत की रचना के विषय में बहुत से मतों को जन्म दिया। इसी आधार पर डाली (Daly) और जेफरी (Jefferey) इसे बसाल्ट-ग्लास (Tachylite) तथा वेगनर (Wagner) और होम्स (Holmes) एम्फीबोलाइट (Amphibolite) से निर्मित बताते हैं। प्रयोगशाला के प्रयोगात्मक कार्य से भी दूसरी धारणा को ही अधिक बल मिलता है। कुछ भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार यह परत बसाल्ट से निर्मित है जो कि ज्वालामुखी से निकले लावा पर आधारित है क्योंकि ज्वालामुखियों का स्रोत यही परत है।

जैसे-जैसे यह P तथा S तरंगे भूगर्भ में बहती जाती हैं इनका वेग भी क्रमशः बढ़ता जाता है जिससे कि स्पष्ट है कि भू-गर्भ का घनत्व भी बढ़ता जाता है। स्पष्ट है कि साधारण स्थिति में पृथ्वी के केन्द्र की ओर जाने पर अन्दर की ओर की चट्टानों का घनत्व अपने ऊपर के तल की चट्टानों से अधिक होगा।

होम्स के अनुसार यदि हम किसी तरंग के द्वारा एक स्थान से अभिलेख केन्द्र तक पहुँचने में लगे समय पर विचार करें तो विभिन्न परतों की मोटाई सरलता से ज्ञात की जा सकती है। होम्स के अनुसार विभिन्न चट्टानों की तहों की मोटाई निम्न प्रकार से है—

(१) परतदार तह, ०—१० किलोमीटर (अत्याधिक परिवर्तनशील)

(२) ऊपरी या ग्रेनाइट तह, १०—१५ किलोमीटर (आल्पस और काकेशश पर बहुत मोटी)

(३) माध्यमिक या बसाल्टिक तह, २०—३० किलोमीटर (आल्पस और काकेशश पर पतली तथा संयुक्त राज्य के सियरानवादा पर मोटी)

(४) निम्न तह—लगातार भू-क्रोड (Earth core) तक, लगभग २६०० किलोमीटर तक।

जेफरी के मतानुसार ऊपरी तह की मोटाई दस से बारह किलोमीटर तक है (उन्होंने यह निष्कर्ष यूरोपीय भूचालों से निकाले थे) और माध्यमिक तह की २० से २५ किलोमीटर तक, किन्तु जर्मन और जापानी भूचाल विज्ञान वेत्ताओं के अनुसार दोनों ही तहों की मोटाई इससे अधिक है। दूसरे मतावलम्बियों के अनुसार ऊपरी परत की मोटाई ५० से ६० किलोमीटर तक है किन्तु यह निश्चित ही तथ्य से अधिक है। विभिन्न मत होने के अनुसार हम यही कह सकते हैं कि ऊपरी तह

की मोटाई बहुत ही परिवर्तन शील है और सभी स्थानों पर एक सी नहीं है।

L तरंगें जो कि भू तल पर ही चलतीं हैं कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाश में लाती हैं, यथा यह तरंगें सागर तलों में महाद्वीपों की अपेक्षा अधिक वेग से बहती हैं और विशेष कर प्रशान्त महासागर के तल में। इससे यह प्रकट होता है कि प्रशांत तल में ग्रेनाइट परत या तो अनुपस्थित है या बहुत ही पतली है। प्रशान्त की अपेक्षा आन्ध्र महासागर में यह तरंगें घटे वेग पर चलतीं हैं जिससे यह स्पष्ट है कि वहां ग्रेनाइट परत की मोटाई अधिक है।

गहरे भूगर्भ की रचना

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि भू-अन्तर में गहराई के साथ P तथा S तरंगों का वेग बढ़ता जाता है। P तथा S तरंगों के वेगों में तीव्रता क्रमशः १३ तथा ७ किलोमीटर प्रति सेकिण्ड तक होती है यह वेग पृथ्वी के अर्धव्यास के ३/१० अर्थात लगभग २६०० किलोमीटर तक बढ़ता है। भू गर्भ में ४०० और ७०० किलोमीटर की गहराई पर भी वृहद परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं, किन्तु यह परिवर्तन या तो गठनात्मक अन्तर और या दशा परिवर्तन के कारण ही होंगे। इन परिवर्तनों के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि भू-गर्भ के गुण लोचदार ठोस के समान हैं। सन् १९०६ में ओल्डहम (Oldham) ने यह ज्ञात किया कि अभिकेंद्र (epicentre) से १२०° या अधिक की दूरी पर S तरंगें विलीन हो जाती है और चूँकि यह तरंगें अनुप्रस्थ (Transverse) प्रकार की होती हैं जो कि द्रवों से होकर नहीं जा सकतीं अतः यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी के अर्धव्यास का लगभग आधा भाग द्रव के समान गुण वाला है। यह देखा गया है कि वास्तविक P तथा S तरंगें इपीसैन्टर के १०४° के बाद निस्सरित नहीं होती हैं।

हेम्स के अनुसार P तथा S तरंगें जो कि २६०० किलोमीटर की दूरी पर पहुँच जाती हैं फिर भू-चाल के इपीसैन्टर से ११००० किलोमीटर की दूरी पर निस्सरित होती हैं। इसके बाद ५००० किलोमीटर तक जो स्थान आते हैं वह P अथवा S तरंगों का अभिलेख नहीं करते, यद्यपि L तरंगें पूर्ववत् आती रहती हैं। भू-चाल के इपीसेन्टर से १६००० से अधिक की दूरी पर P तरंगें पुनः प्रकट होती हैं और फिर इपीसेन्टर के एण्टीपोड (Antipode) तक उसी प्रकार प्राप्त होती रहती हैं। इस प्रकार से प्रत्येक भू-चाल में P तथा S तरंगों से हीन एक अंगूठी के रूप की छाया रहती है और वह भू-भाग जो कि इसका कारण है भू-क्रोड (Earth core) कहलाता है।

चित्र सं० ५
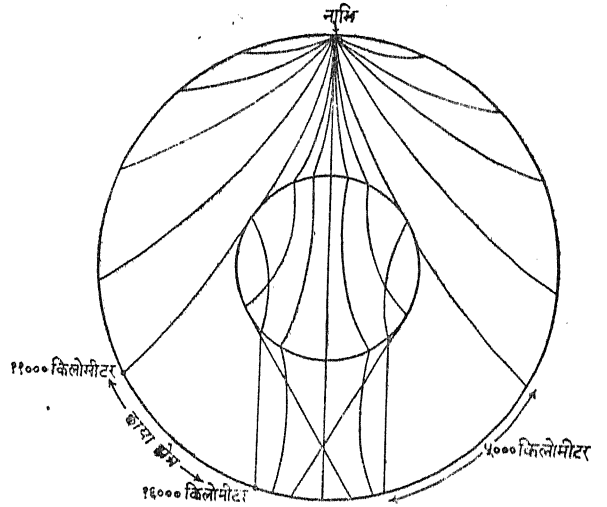
P तरंगें इस क्रोड में बहुत ही धीमे वेग से चलती हैं तथा S तरंगें इसमें बिल्कुल ही विलीन हो जाती हैं। द्रवों का यह गुण है कि उनमें विकृत लोच (istortional elasticity) नहीं होती इसी कारण S तरंगें उसमें से नहीं जा सकती अतः भू गर्भ अवश्य ही द्रव है। भू क्रोड में P तरंगों के वेग को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि क्रोड का घनत्व अधिक है और उसकी रचना में मुख्यतः लोहा तथा कुछ अंश में निकिल भी उपस्थित है।

स्पष्ट है कि पृथ्वी की आन्तरिक रचना के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत भी भिन्न भिन्न हैं। सीस्मोलोजी के विकास से अब नए-नए तथ्य स्पष्ट होते जा रहे हैं। इन तथ्यों के विकास तथा भू अन्तर में कृत्रिम विस्फोटों के परिणाम स्वरूप वैज्ञानिक पृथ्वी की आंतरिक रचना के विषय में अधिक स्पष्ट और निश्चित मत दे सकेंगे।

नवाँ पुष्प
विज्ञान, नवम्बर १९५८
पृष्ठ ३९-४२

भारतीय कृषि का विकास

[डा० शिवगोपाल मिश्र एम० एस-सी०, डी० फिल०, साहित्यरत्न]

भारत में नाइट्रोजन उद्योग का इतिहास बड़ा रोचक है। जर्मनी में हेबर-बाश पद्धति से नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन के संश्लेषण से अमोनिया तथा जिप्सम के साथ अमोनिया की प्रतिक्रिया से अमोनियम सल्फेट बनाने का प्रथम प्रयास भारत में एक अत्यन्त वृहत पैमाने में सिंदरी के कारखाने के निर्माण के साथ हुआ। दामोदर नदी की घाटी में, बिहार प्रांत में धनबाद से १४ मील नीचे सिंदरी नामक ग्राम में एक वृहत् रासायनिक खाद का कारखाना खोलने का निश्चय सन् १९४७ ई० में किया गया जो सन् १९५० में पूरा बन गया और अक्टूबर १९५१ की अर्द्धरात्र में दीपावली के दिन इसमें खाद का निर्माण भी प्रारम्भ हो गया। २ मार्च सन् १९५२ को प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया।

यह एशिया का सब से बड़ा खाद का कारखाना है और भारत में स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद राज्य की ओर से सब से बड़ा जन-कार्य। इसमें २३ करोड़ रुपये खर्च हुये हैं इसके द्वारा प्रति दिन १००० टन अमोनियम सल्फेट निर्माण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया (३५०,००० टन प्रति वर्ष), जो सन् १९५३ ई० में तैयार भी होने लगा। फिर भी यह अनुमान लगाया जाता है कि अंततोगत्वा सिंदरी से भारत की आवश्यकता का १/७ अंश या २० लाख-३० लाख टन प्रति वर्ष की ही पूर्ति होगी। आज कल भारत में अन्य ६ अमोनियम सल्फेट के कारखाने हैं जिनमें ८०००० टन उत्पादन की शक्ति है। सन् १९४९ ई० तक उनके द्वारा ४६००० टन का ही उत्पादन होता था। सिंदरी कारखाने का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर इसका विस्तार दुगुना किया जा सके और आवश्यक सामग्रियाँ जैसे शोरे का अम्ल अमोनियम नाइट्रेट और नाइट्रो चाक भी बनाये जा सकें,

जहाँ सिंदरी कारखाना स्थित है वहाँ पहले एक निर्जन स्थान था किन्तु अब वह चमक उठा है और वहाँ पर डाकखाने, अस्पताल, बाजार स्कूल तथा अन्य सुभीते वाली वस्तुयें उपलब्ध हैं। इस नगर के निर्माण में ही १२॥ करोड़ रुपये लग चुके हैं। शहर, कारखाने का विस्तार प्रायः ५ हजार एकड़ में है। यह ध्यान रखा गया है कि कारखाने के विस्तार के लिये पर्याप्त स्थान छोड़ दिया जाय क्योंकि दामोदर घाटी योजना के सफल होने पर यहाँ उद्योगों के बढ़ने की यथेष्ट सम्भावना है। कारखाने के निर्माण का उत्तरदायित्व एक अमेरिकन संस्था-रासायनिक निर्माण कार्पोरेशन-पर रहा है। भारतीय सरकार की एजेन्ट बनकर मशीनरी भेजने और बनाने में पावर गैस कार्पोरेशन आफ यू० के० (संयुक्त राष्ट्र की शक्ति उत्पादिनी संस्था) सहायक रही है। सिंदरी के कारखाने के निर्माण करने वाले इंजीनियरों में इंगलैण्ड, जर्मनी तथा अमेरिका और जापान के इंजीनियरों ने प्रमुख भाग लिया और यह अनुमान लगाया जाता है कि इस कारखाने के पुर्जों के बनाने में १० हजार आदमियों ने ५ वर्ष तक काम किया होगा। इस कारखाने के लिये पानी रेगिस्तान होकर लाया जाता है। ऐसा अनुमान किया गया था कि प्रतिदिन १००० टन अमोनियम सल्फेट निर्माण होने पर ६०० टन खड़िया मिट्टी (कैलशियम कार्बोनेट) का कीचड़ निकलेगा जिससे ३०० टन प्रतिदिन उत्पादित करने वाले एक सीमेंट के कारखाने का निर्माण सम्भव हो सकेगा। यह भी यह अनुमान लगाया गया है कि इस सिंदरी के कारखाने के निर्माण में ६१ हजार घन गज गारा; ११ हजार टन इस्पात; ४५ हजार टन का यंत्र, ८० मील लम्बी नालियाँ, १२ मील लम्बी रेलवे लाइनें, १७० मील लम्बाई तक के बिजली के तार लगे हैं। काम

करने के लिये प्रतिदिन कारखाने में १ करोड़ २० लाख गैलन पानी, ६०० टन कोक, ६००-२००० टन कोयला तथा १८०० टन जिप्सम (कैलसियम सल्फेट) प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त ४०० टन दूसरे पदार्थों का प्रयोग होता है। गैस यंत्र से नित्य प्रति ३ करोड़ ३० लाख घन फुट गैस मिलेगी। बिजली-घर की उत्पादन शक्ति ८०,००० किलोवाट होगी। तैयार की गयी खाद एक तहखाने में रखी जायगी जो संसार का सबसे बड़ा तहखाना होगा। यह :५० फीट चौड़ा, ६६० फीट लम्बा तथा मेहराब तक ६० फीट ऊंचा होगा। सम्पूर्ण इमारत को "एयर कंडीशन" (वायु अनुकूलित) बनाया गया है। नित्य प्रति—२०००० से ३०००० जूट के बोरों में स्वतः तौली जाकर खाद अपने आप भर जाने का प्रबंध भी है।

जिस रासायनिक क्रिया से अमोनियम सल्फेट बनाया जाता है वह इस प्रकार है—पहले वायुमंडल की हवा को शुद्ध करके नाइट्रोजन प्राप्त की जाती है और पानी के विश्लेषण से हाइड्रोजन गैस। इन दोनों को संश्लिष्ट करने पर अमोनिया बनती है जिसे कार्बन-डाई-आक्साइड के साथ पुनः संश्लिष्ट करा कर अमोनियम कार्बोनेट बनाया जाता है। अब पानी में मिश्रित जिप्सम के साथ इस की प्रतिक्रिया कराई जाती है जिसके फलस्वरूप खड़िया मिट्टी का कचड़ा तथा तरल अमोनियम सल्फेट बनता है जिसके सुखाने से उसके रवे बन जाते हैं जिन्हें इकट्ठा करके बड़े-बड़े तहखानों में बोरों में भर कर रख दिया जाता है। इस कारखाने के कुल ५ अंग हैं:—

(१) बिजली-घर—जिसमें ८०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होती है और सम्पूर्ण कारखाने के काम में आती है। उससे प्रकाश भी होता है।

(२) गैस-घर – जिसमें अमोनिया बनाया जाता है। इसमें ३ करोड़ ३० लाख घन फुट गैस प्रतिदिन इकट्ठा की जाती है।

(३) अमोनिया-संश्लेषण-गृह—इसमें प्रतिदिन २७० टन अमोनिया बनती है।

(४) अमोनियम सल्फेट-गृह—यहां पर जिप्सम के साथ अमोनियम कार्बोनेट की प्रतिक्रिया से अमोनियम सल्फेट, १००० टन की मात्रा में, प्रति दिन तैयार किया जाता है।

(५) तहखाना—जहां ६० हजार टन अमोनियम सल्फेट यानी ३ माह तक का उत्पादान ठंक से रखा जा सकता है।

अभी इस कारखाने को विस्तृत करने की योजनायें हैं जिनमें निम्न वृद्धियां स्वीकृत हैं।

(१) कोक-भट्ठी जो २॥ करोड़ रुपये की लागत से बनेगी।

(२) सीमेंट का कारखाना तथा (३) मेथानॉल का कारखाना।

यही नहीं बिहार सरकार यहीं पर सुपरफॉसफेट निर्माण करने के लिये कारखाने खोलने जा रही है। तब अमोनियम सल्फेट तथा सुपरफासफेट ये दो खादें बहुलता से प्राप्त हो सकेंगी। आज भी ये दोनों खादें सहकारी समितियों द्वारा सम्पूर्ण भारत में वितरित की जा रही हैं किन्तु हमारे किसान इन खादों के अभ्यस्त नहीं और न ये खादें सस्ती ही हैं अतः वे इनका उपयोग करने से हिचकते हैं। फिर और भी कुछ दूसरे कारण हैं जिनके कारण ये खादें भारत में ठीक से प्रयोगगत नहीं।

उपरोक्त वैज्ञानिक सफलता के साथ ही साथ भारत में और भी विशिष्ट कार्य हुये हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है।

कटक और नगीना में धान के ऊपर विशद अनुसंधान करने के केन्द्र खोले गये क्योंकि संसार भर की १/४ शक्ति चावल से ही प्राप्त होती है और चावल भारत के कुछ प्रदेशों का मुख्य खाद्यपदार्थ है, संसार भर की ८००० किस्मों में भारत में ३००० किस्मों को १६० एकड़ के क्षेत्र-

फल में कटक के "केन्द्रीय चावल अनुसंधान क्षेत्र" में उगाया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य अच्छी किस्मों के धानों के चुनाव द्वारा अधिक चावल की उत्पत्ति करना है। दुख की बात है कि जब जापान में २५०० पौंड (३१ मन प्रति एकड़ धान की उपज है तो भारत में केवल ७५० पौंड यानी जापान के तृतीयाँश से भी कम है अतः "अन्तर्राष्ट्रीय चावल कमीशन" के सुझावों के अनुसार भारत में कटक नामक स्थान पर धान के "वर्ण-संकर प्रयोग" हो रहे हैं। १६५० ई० में यह योजना प्रारम्भ की गई जिसके द्वारा अब तक ३०० से अधिक धान की किस्में ढूंढ निकाली गई हैं जिनसे १५-२०% अधिक उत्पादन सम्भव हो सकता है।

चावल के उत्पादन बढ़ाने के लिये मैसूर राज्य में "कृत्रिम चावल" का भी निर्माण होने लगा है। एक तीसरा उपाय है भारत में जापानी ढंग से धान की खेती का सूत्रपात। इस समय सम्पूर्ण भारत में २० लाख एकड़ में इस रीति से धान उगाया जाता है जिसमें सबसे अधिक क्षेत्रफल में बिहार में (४ लाख एकड़) फिर उड़ीसा (२॥ लाख एकड़) तथा सबसे कम क्षेत्रफल में उत्तर प्रदेश पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश (प्रत्येक में २ लाख एकड़ में उगाया जाता है। बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों में तो १ लाख एकड़ ही में धान उगाया जाता है। इस रीति से धान उगाने पर उत्तर प्रदेश में ३ मन प्रति एकड़ धान में वृद्धि हुई है। खादों के डालने पर ७-८ मन प्रति एकड़ वृद्धि हुई है। नगीना केन्द्र में हरी खादों को डाल कर धान के साथ प्रयोग हो रहे हैं। इस प्रणाली से धान उगाने में उत्तर प्रदेश के लिये चीन की किस्में लाभदायक सिद्ध हुई है। सी-एच०-१० नामक कुँआरी धान टेहरी तथा गढ़वाल जैसे उच्च भागों के लिये और सी० एच० ४ अन्य भागों के लिये उपयोगी है। अब चीन तथा उत्तर प्रदेश की किस्मों में परस्पर वर्णसंकरता के कुछ प्रयोग हो रहे हैं जो अधिक उपयोगी किस्म का धान उत्पन्न करने में सफल हुये हैं। ऐसी दो संकरित जातियाँ कुआरी टी० १३६ तथा कतिकी टी० १३७ उल्लेखनीय हैं।

चौथे प्रकार की उन्नति आदर्श योजनायें (Pilot Project खोलने से हुई है। इनके द्वारा किसानों को वैज्ञानिक रीतियों से कृषि करने का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। ऐसा केन्द्र सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश में इटावा (महेवा) में सन् १६४८ ई० में स्थापित किया गया जिसमें १०० गावों का सामूहिक केन्द्र था। यहाँ पर उन्नत कृषि तथा पशु पालन की विधियां जन स्वास्थ्य तथा सामाजिक शिक्षा पर ध्यान दिया गया जिसके लिये ग्राम सेवक तथा पंचायत के सेक्रेटरी जैसे लोगों की नियुक्ति की गई थी। इस केन्द्र में फसलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धियाँ देखने को मिलीं यथा-गेहूँ में ४०%, आलू में १००%, मटर में ४४.३%, गन्ने में १०.८%, जौ में १२.८% तथा चने में ३३.२%, सन् १६५० में गोरखपुर केन्द्र तथा १६५१ में आजमगढ़ गाजीपुर, बलिया में ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये।

पटना के "केन्द्रीय आलू अनुसंधान शाखा" में संसार भर की २००० से अधिक किस्मों के आलुओं पर परीक्षण कार्य हो रहा है और ३ ऐसी किस्में निकाली गई हैं जिनमें "कोयले जैसा सड़न" (चारकोल राट) का रोग नहीं हो पावेगा। संसार में भारत सर्व प्रथम देश है जिसने इस प्रकार की किस्म ढूंढ निकाली है। सम्पूर्ण भारत में इस समय ५,००००० एकड़ में आलू की खेती है जिसमें से प्रति व्यक्ति को ४ सेर आलू प्रति वर्ष खाने को मिलता है। यह सर्व विदित है कि १/२ सेर आलू से ४२ कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार आलू के उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है।

छठे प्रकार का कार्य जिसे हमारी केन्द्रीय जनप्रिय सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में सम्मिलित कर रखा है, वह है "कम्यूनिटी प्रोजेक्ट"। इस योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत में ५० से अधिक केन्द्र स्थापित करने का संकल्प किया है और उन्हीं के द्वारा ग्रामों को

उन्नत करने का प्रयत्न किया जायगा। सिंचाई की योजनायें, कृषि की उन्नति तथा सामाजिक उत्थान जैसी आवश्यक समस्याओं का हल इस योजना से किया जायगा। इस दिशा में सरकार को काफी सफलता प्राप्त हुई है।

अन्तिम प्रकार का कार्य है सम्पूर्ण राष्ट्र में मृत्तिका परीक्षण के केन्द्र खोलना इस समय सब से बड़ा कृषि अनुसंधान केन्द्र दिल्ली में है किन्तु १६ नवीन केन्द्र खोलने की योजना है जिसके द्वारा सम्पूर्ण भारत में मिट्टी परीक्षण के केन्द्र हो जायेंगे। इसके द्वारा भारतीय मिट्टियों का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो सकेगा और आसानी से किसानों को खादों के प्रयोग तथा अन्य समस्याओं पर सलाह दी जा सकेगा। इसी योजना के अन्तर्गत सक्रिय फासफोरस तथा अन्य तत्वों के आइसोटोपों का उपयोग खादों के अध्ययन तथा पौदों के भोज्य पदार्थों के पता लगाने में किया जायगा। सन् १९४२ से प्रचारित "अधिक अन्न उपजाओ" तथा सन् १९५० से 'वन महोत्सव' के नारे राष्ट्र-हित के लिये आवश्यक जान कर चलाये गये किन्तु उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अपेक्षा राजनैतिक प्रचार अधिक था जिसके कारण उनके द्वारा कोई आश्चर्य जनक सफलता न प्राप्त हो सकी। अब इन वैज्ञानिक शोध कार्यों और उनके जन साधारण द्वारा प्रयोगों से इस दिशा में कुछ ठोस कार्य हो सकेगा।

—:o:—

क्या आप जानते हैं ?

भारत का पटसन उद्योग

* संसार भर के पटसन कारखानों में कुल जितने करघे हैं, उसके ५३ प्रतिशत यानी ७२,३९५ करघे भारत के पटसन उद्योग में हैं।

* यहाँ पटसन की कुल ११२ मिलें हैं, जिनमें से बंगाल में १०१, आंध्र में चार, बिहार में तीन, उत्तर प्रदेश में तीन और मध्य प्रदेश में एक है। बंगाल की मिलें कलकत्ते के आस-पास, हुगली नदी के दोनों किनारों पर हैं। देश की ११२ पटसन मिलों का प्रबन्ध ८२ पटसन कम्पनियां देखती हैं।

* इन मिलों में एक पारी में प्रति सप्ताह ४८ घंटे काम होता है और इस प्रकार इनमें हर महीने १,००,००० टन पटसन का माल बनाया जाता है।

* देश में हर साल लगभग १ अरब ३० करोड़ रु० की कीमत की पटसन की वस्तुएं तैयार होती हैं।

* पटसन के उपकरणों के उत्पादन या वितरण पर सरकार का नियंत्रण नहीं है। इन्डियन जूट मिल्स असोसिएशन इस उद्योग पर इस विचार से नियंत्रण रखता है कि माल की माँग के अनुसार उत्पादन होता रहे।

* १९५७ में देश में पटसन का १०,९१,२४८ टन उत्पादन हुआ और लगभग ८,४८,००० टन निर्यात हुआ, जिससे देश को १ अरब १४ करोड़ २० लाख रु० की विदेशी मुद्रा मिली।

* पटसन की मिलें पिछले दो सालों से भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने पर विशेष ध्यान दे रही हैं। इनमें अमेरिका के लिए रुई भरने की बोरियाँ, कालीनों के नीचे बिछाने का टाट, तिरपाल, कालीन, जाल आदि हैं।

* १९५५-५६ में भारत से ८,७१,५०० टन पटसन का निर्यात हुआ। आजकल विदेशी माल भी बाजारों में आ जाने के कारण स्पर्धा बढ़ रही है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर दूसरी आयोजना में हर साल ९,००,००० टन पटसन के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है।

विज्ञान, नवम्बर १६५८
पृष्ठ ४३-४६

आचार्य जगदीशचन्द्र बोस

[जटाशंकर द्विवेदी एम० एस-सी०, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

आचार्य जगदीश चन्द्र बोस का जन्म मेमनसिंह नाम के स्थान में ३० नवम्बर १६५८ को हुआ। आपके पिता श्री भगवानचन्द्र बोस डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फरीदपुर में हुई। उच्च शिक्षा के हेतु आप कलकत्ता आये और सेन्ट जेवियर्स स्कूल में नाम लिखाया। माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्ति हेतु आपने सेन्ट जेवियर्स कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आप फादर लाफोन्ट के सम्पर्क में आये और उनके प्रभाव से आपको विज्ञान की प्रायोगिक शिक्षा में विशेष रुचि उत्पन्न हुई। आप विशेष कुशाग्र बुद्धि के विद्यार्थी नहीं थे। बी० ए० आनर्स में आपको द्वितीय श्रेणी ही प्राप्त हो सकी, आपके संबन्धी श्री आनन्द मोहन बोस ने जो केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय रेंगलर थे आपको विशेष प्रभावित किया। आपकी उत्कट इच्छा इंगलैण्ड जाकर आगे के अध्ययन करने की थी। धनाभाव के कारण आपको बड़ी कठिनाई थी। आपकी माता जी ने अपने आभूषण बेचकर आपके इंगलैण्ड के व्यय की व्यवस्था की। आसाम में रहने के समय आप पर कई बार मलेरिया का प्रकोप हुआ। इस लिये आपकी इच्छा इंगलैण्ड जाकर औषधि विज्ञान पढ़ने की थी किन्तु वहाँ प्राकृतिक विज्ञान की ओर आपका अधिक झुकाव हो गया। यहां आपने क्राइस्ट कालेज केम्ब्रिज में प्रवेश लिया। यह इंगलैण्ड का प्रथम विद्यालय था जिसमें भारतीय प्रवेश ले सकते थे। इण्डियन नेशनल कांग्रेस के सभापति श्री आनन्द मोहन बोस और दिवंगत जस्टिस सय्यद महमूद ने भी इसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ आप लार्ड रेले, फ्रान्सिस डारविन, सर माइकेल फोस्टर, सर जेम्स डेवार और सिडनी वाइन्स जैसे प्रमुख शिक्षकों के निकट सम्पर्क में आये। आपने कैम्ब्रिज से विज्ञान में बी० ए० की और लंदन से बी० एस-सी० की उपाधियां प्राप्त की।
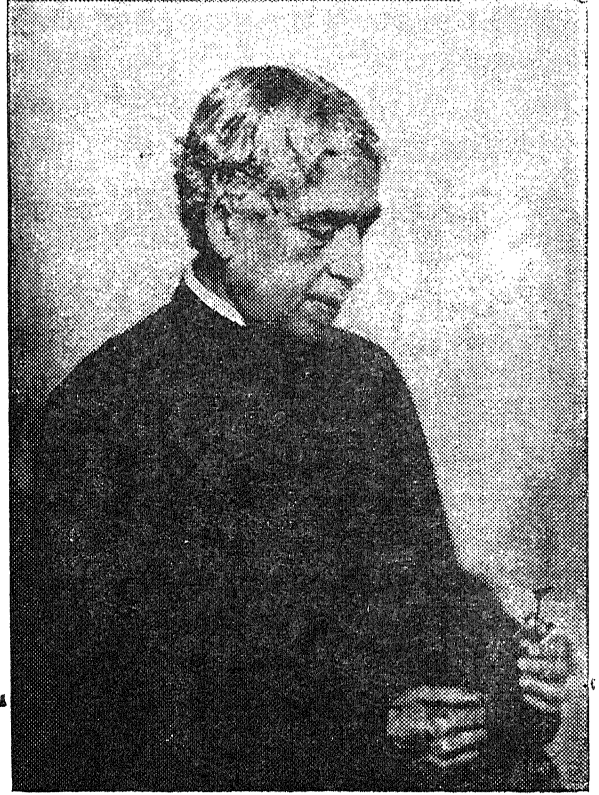
आचार्य जगदीशचन्द्र बोस

विदेश से लौटने पर सन् १८८४ में आप कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में भौतिक विभाग के जूनियर प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुये। सरकारी नौकरी से ५७ वर्ष की आयु में अवकाश पाने तक आप इस कालेज में अध्यापन कार्य करते रहे। अपने शिक्षक जीवन के प्रथम दस वर्ष आपने मुख्यतः अध्यापन कार्य किया। साथ ही पुरातत्त्वीय उपलब्धियों के अध्ययन, और पर्यवेक्षण में अपने अवकाश का समय बिताया सन् १८९२ ई० में आप भारतवर्ष में प्रथम बार एडीसन के फोनोग्राफ के प्राथमिक मॉडल लाये। आप सुप्रसिद्ध गायकों और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के स्वरों के रिकार्ड बनाते थे।

अपनी ३६ वीं वर्षगांठ के अवसर पर आपने अनुसंधान कार्य करने की प्रतिज्ञा की। प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्ते में शोध कार्य की सुविधायें उपलब्ध न थीं वैज्ञानिक यंत्र पुराने थे और वातावरण भी अनुसंधान कार्य के अनुकूल न था। फिर भी बोस ने हिम्मत न हारी और अनेकों प्रकार की असुविधाओं और बाधाओं की चिन्ता न कर अनवरत परिश्रम किया।

सन् १८९४ से १८९९ के बीच आपका अन्वेषण कार्य मुख्यतः लघु तरंग दैर्घ्य की विद्युत चुम्बकीय तरंगों के सृजन और उनके गुणों के परीक्षण से सम्बन्धित रहा। सन् १८६५ में क्लर्क मैक्सवेल ने बताया कि प्रकाश तरंगे विद्युत चुम्बकीय प्रकृति की है। इन तरंगों का वेग इन दोनों प्रकार की इकाइयों का अनुपात है। सन् १८८७ ई० में हर्टज ने ५.५ मीटर तरंग दैर्घ्य की विद्युत चुम्बकीय लहरें उत्पन्न करके मैक्सवेल के सिद्धान्त का परीक्षण किया और उसे सत्य पाया। इतने अधिक तरंग दैर्घ्य की लहरों के साथ प्रयोग करने के लिये बड़े आकार के यन्त्रों और अधिक स्थान की आवश्यकता पड़ती थी। बोस ने कम तरंग दैर्घ्य की तरंगे उत्पन्न करने की व्यवस्था की। उन्होंने तरंग उत्पादक के आकार को छोटा करके ५ मिली मीटर तरंग दैर्घ्य तक की विद्युत चुम्बकीय लहरें उत्पन्न की। इन लहरों का तरंग दैर्घ्य हर्टज द्वारा उत्पादित तरंगों के तरंग दैर्घ्य का दस हजारवाँ भाग है। इस प्रकार बोस ने अपने यन्त्रों का आकार भी छोटा और सुविधा जनक कर लिया। बोस के इन यन्त्रों की बड़ी प्रशंसा हुई। प्रमुख भौतिक वैज्ञानिक जे० जे० थामसन ने इस यंत्र का चित्र अपनी पुस्तक 'विद्युत और चुम्बक (Electricity and Magnetism) में दिया और एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के नवे संस्करण में भी इसका विवरण प्रकाशित हुआ। लगभग ४० वर्ष तक इन विद्युत चुम्बकीय लहरों पर कोई भी महत्त्वपूर्ण अन्वेषण कार्य नहीं किया गया। दूसरे विश्व युद्ध के अवसर पर इन तरंगों ने वैज्ञानिकों का ध्यान पुनः आकर्षित किया। इस अवसर पर इन लहरों के उत्पादन और पहचान के ढंगों में विशेष सुधार हुये और शत्रुपक्ष के हवाई जहाजों की गतिविधि लक्ष्य करने के लिये रैडार विधि का जन्म हुआ।

सन् १८९९ से १९०४ के बीच में आपने जो शोध कार्य किया उससे इस तथ्य पर विशेष प्रकाश पड़ता है कि जड़ और चेतन दोनों ही एक प्रकार की क्रिया के उत्तर में एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया करते हैं। इस सम्बन्ध में बोस ने कोहियरर (Coherer) पर प्रयोग किये। ब्रेनली ने कोहियरर में धात्वीय रवों का प्रयोग किया था। बोस ने इस कार्य के हेतु इस यंत्र में कुछ चालकों और अर्धचालकों का समावेश किया। आपने पाया कि कोहियरर निरन्तर प्रयोग के फल स्वरूप श्रान्ति के चिन्ह दिखाता है। कुछ समय के विश्राम के पश्चात यंत्र की कार्य क्षमता पुनः पूर्ववत हो जाती है। बोस ने कोहियरर की डिजाइन को सरल बनाया और उसमें कई सुधार किये। बोस अन्य परिज्ञापकों (Detectors) पर भी प्रयोग करते रहे। आपने परिज्ञापकों के रूप में गेलीना केलास (Crystal Galena) सेलीनियम और चाँदी की प्लेटों से बने फोटो इलेक्ट्रिक सेलों का भी प्रयोग किया। आज कल गेलीना केलास; सिलीकन, जर्मेनियम, सिलीनियम आदि के केलासों का

उपयोग ए० सी० विद्युत के शोधन (Rectification) में किया जाता है। सौर शक्ति को विद्युत शक्ति में परिवर्तन करने के लिये भी इस सिद्धान्त को उपयोग में लाया जाता है। बोस के द्वारा सम्पादित सिद्धान्तों पर ही डायोड और ट्रायोड वल्व के समान कार्य सम्पन्न करने वाले ट्रान्सस्टर का निर्माण हुआ। इस प्रकार लगभग ५० वर्ष पूर्व किये गये प्रयोगों के आधार पर एक सरल और सस्ता व्यवस्था ट्रान्सिस्टर के रूप में आ गई जो दुर्बल ए० सी० लहरों की पहचान करती है और उन्हें सबल बनाने की क्रिया में योग देती है। आशा की जाती है कि रेडियो के वाल्वों के स्थान पर अब ट्रान्सिस्टरों का उपयोग होगा।

वालर (Waller) के अनुसार जीवित टिशुओं (living tissues) में उत्तेजना के फलस्वरूप विद्युत की उत्पत्ति होती है। बोस ने अकार्बनिक पदार्थों के कुछ ऐसे नमूने बनाये जिनमें यांत्रिक अथवा प्रकाश द्वारा उत्तेजना देने पर विद्युत पैदा हुई। विष देने पर जीवित टिशुओं की भांति अकार्बनिक वस्तुओं पर भी प्रभाव पड़ा। सन् १६०० में पेरिस में और सन् १६०१ में रायल इन्स्टट्यूट लन्दन में आपने प्रयोगों द्वारा यह तथ्य सिद्ध करके दिखलाये। बाद के अन्वेषणों में आपने पौदों और जीव जन्तुओं के विषय में भी इसी प्रकार की समानता का प्रदर्शन किया। आपने बताया कि जीवित और निर्जीव वस्तुओं के बीच में एक सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। इस बीच में आपने जड़ और चेतन के दैहिक नियमों यथा बोध, मस्तिष्क द्वारा प्रभाव या नियंत्रण, स्मृति, चयन के गुण आदि के सम्बन्ध में मौलिक अनुसंधान किये।

सन् १६०५ से मृत्यु पर्यन्त आपने पौदों और मानवीय टिशुओं में उद्दीपन के प्रभाव की समानता पर कार्य किया। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने आपके सिद्धान्त का बड़ा विरोध किया। विरोधियों के आक्षेपों के निराकरण के लिये आपको १५ वर्ष की लम्बी अवधि तक कठिन परिश्रम करना पड़ा। अन्त में इस सिद्धान्त को मान्यता मिली और इनके सब से कट्टर विरोधी जो रायल सोसाइटी आफ लंदन के सदस्य थे इनके सिद्धान्त को मानने पर विवश हुये और सन् १६२२ ई० में आप को रायल सोसाइटी का फेलो चुन लिया गया, बोस का मत है कि पौदों और जीवों में प्रोटोप्लास्मीय पदार्थ के कारण एक ही प्रकार के प्रारम्भिक गुण रहते हैं। यथा चिड़चिड़ापन, सिकुड़ने का गुण, चालकता और संवेदनशीलता। अधिक विकसित जीवों में इन गुणों में से कोई एक विशेष गुण विशेष रूप से उन्नत हो जाता है। जैसे मांस पेशियों में सिकुड़न, चयनतंतुओं में चिड़चिड़ेपन का प्रभाव और हृदय की मांस पेशियों में संवेदनशीलता। पौदों के टिशू अभी इतने प्रभावी नहीं हो सके है।

डेस्मोडियम गायरेंस नामक पौदे की पत्तियों को तोड़कर कटा हुआ भाग पानी में डुबो दिया गया। परीक्षण से ज्ञात हुआ कि ऐसी स्थिति में भी पत्तियां में २ से ४ मिनट के अन्तर से नियमित वर्तुलाकार धड़कन चलती रहती है जैसा कि पशुओं के साथ होता है। दो धड़कनों के बीच लिया गया समय पत्ती की आयु, तापक्रम आदि पर निर्भर रहता है। जीवों के हृदय के समान इस पौदे की पत्तियों पर भी ताप, रसायन और उत्तेजकों के उपयोग से प्रतिक्रिया होती है।

मिमोसा प्यूडिका नाम के पौदे पर उत्तेजकों का वही प्रभाव पड़ता है जो ज्ञानतन्तुओं पर उसी प्रकार की स्थितियों में पड़ता। तापीय, यान्त्रिक अथवा वैद्युतिक उत्तेजनों के प्रभाव स्वरूप पत्ती में एक विशिष्ट गति की विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है जिसके परिणाम स्वरूप पत्तियाँ बन्द हो जाती है। अत्यधिक उत्तेजना के कारण बांरबार प्रतिक्रिया होने लगती है। यदि एक दुर्बल विद्युतधारा पत्ती में बहाई जाय तो यान्त्रिक प्रतिक्रिया की वृद्धि या ह्रास का मापन सरलता से किया जा सकता है। ठंड या क्लोरोफार्म या ईथर के प्रभावस्वरूप इस पौदे में उत्तेजना की चालकता अवसाद में परिवर्तित हो जाती है।

बोस ने उच्च सम्बर्धनशील यन्त्रों की सहायता से पौदों में उत्तेजना के फलस्वरूप हुई प्रतिक्रिया के यांत्रिक और वैद्युतिक प्रभावों का मापन किया और पाया कि पौदों का व्यवहार इस दिशा में जीवों की भांति ही रहता है। कृत्रिम उत्तेजनों के अतिरिक्त पौदों पर वातावरण के अनुसार तापक्रम, प्रकाश घनता, आद्रता, सिंचाई आदि का भी प्रभाव पड़ता हैं। इनके प्रभाव पर पौदों का विकास, टहनियों का विपरीत दिशाओं में झुकाव, टहनियों का इस प्रकार झुकना कि उन्हें अधिकतम प्रकाश मिल सके आदि निर्भर करता है।

सन १६१५ ई० में आप प्रेसीडेन्सी कालेज में एमरीटस (Emeritus) प्रोफेसर बनाये गये। सन १६१७ में आपने बोस इन्स्टीटयूट की स्थापना की। इस विद्यालय के हेतु आपने ११ लाख का दान प्राप्त किया। सरकार ने भी १ लाख का वार्षिक आवर्तक अनुदान दिया। बोस ने १२ लाख रुपये के एक ट्रस्ट की स्थापना की जिससे अनुसंधान को और विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता मिल सके। बोस की मृत्यु के बाद इनकी पत्नी श्रीमती अवला बोस ने अपने प्रयत्नों से एक ३॥ लाख रुपये के दूसरे ट्रस्ट का निर्माण किया जिसकी आय का उपयोग कई वैज्ञानिक और सांस्कृतिक कार्यों में होता है। इस इन्स्टीट्यूट की स्थापना के उद्देश्य निम्न हैं :—

(१) पौदों के दैहिक व्यवहार सम्बन्धी शोध कार्य को प्रोत्साहन।

(२) नालन्दा और तक्षशिला की परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए सभी जातियों में विज्ञान के प्रसार हेतु कार्य।

बोस इस इन्स्टीट्यूट के मृत्यु पर्यन्त (१६३७ तक) निर्देशक रहे। इनके जीवन काल में ही इस इन्स्टीट्यूट की अच्छी ख्याति हो गई थी। आजकल भी यहाँ अच्छा अनुसंधान कार्य चल रहा है।

बोस ने योरुप अमेरिका और जापान के विभिन्न वैज्ञानिक केन्द्रों पर व्याख्यान दिये। ये व्याख्यान और इन अवसरों पर आयोजित प्रायोगिक प्रदर्शन बड़े सफल रहे। सन् १६२२ ई० में आप रायल सोसाइटी लन्दन के फेलो चुन लिये गये। सन् १६२८ से १६३३ तक आप कमेटी फार इन्टेलेक्चुअल कोआपरेशन आफ दी लीग आफ नेशन्स के सदस्य रहे। २३ नवम्बर १६३७ में ७६ वर्ष की आयु में आप का देहावसान हो गया।

बोस आधुनिक भारत में वैज्ञानिक शोध कार्य के अग्रणी रहे हैं। आपने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कार्य किया है जिसे सारे विश्व ने मान्यता दी है आप का कार्य विशेष रूप से सीमावर्ती क्षेत्रों में रहा। अपने शोध कार्य की प्रथम शृंखला में आपने माइक्रो तरंगों और प्रकाश तरंगों पर कार्य किया। दूसरी शृंखलावत खोजें जड़ और चेतन वस्तुओं पर क्रियाओं की प्रतिक्रियाओं में समानता पर थी और अंतिम और तृतीय शृंखलावत अनुसंधान पौदों और जीव जन्तुओं पर उत्तेजना आदि के प्रभावों में समानता पर थे। बोस की इस वैज्ञानिक देन ने उन्हें सदैव के लिये अमर बना दिया है। वे उन भारतीयों में से थे जिन्होंने देश का मस्तक संसार के सम्मुख ऊंचा किया है।

—:०:—

अणु : संसार को एक बनाने वाली नई शक्ति

जेनीवा में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन शुरू हो चुका है। शीघ्र ही विशेषज्ञों की कृपा से प्राविधिक सूचनाओं की भरमार संसार में मच जाएगी। ऐसी अवस्था में उस समय से पूर्व ही कुछ ऐसी बातें अणु के बारे में कह देनी आवश्यक हैं, जो जेनीवा में एकत्रित ६६ राष्ट्रों के विशेषज्ञों की सीमा से बाहर तथा गैर-वैज्ञानिक समझी जाती हैं।

निश्चय ही अणु ने अनेक प्राचीन मान्यताओं को बदल दिया है। इस से प्रकृति सम्बन्धी ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित मान्यताओं में भी परिवर्तन हो गया है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के नए साधनों को प्रोत्साहित किया है।

किन्तु जेनीवा में यह भावना अत्यधिक प्रमुख है कि लोक-कल्याणकारी अणु ने वास्तव में इन सब बातों की अपेक्षा भी कुछ अधिक काम किया है। अणु ने अनेक रूपों में तथा एक पूर्ण परिवर्तित भावना के अनुसार कार्य करते हुए राजनीति से सम्बन्धित भौगोलिक अड़चनों से अपना मार्ग अवरुद्ध नहीं होने दिया है। लगभग हर दिशा में किए जाने वाले अपने अपार लाभों के फलस्वरूप इस ने संसार को एक बनाने वाली नई शक्ति का रूप धारण कर लिया है, क्योंकि ये लाभ राष्ट्रीय गोपनीयता के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन की नीति का तकाजा करते हैं।

सामान्य पर्यवेक्षक या अपनी विशिष्टता के संकीर्ण क्षेत्र में विशेष क्षमता रखने वाले वैज्ञानिक भी संभवतः इस महत्व का पूरी तरह अनुमान नहीं कर सकते। किन्तु अणु से जो प्रगति हुई है, वह ऐसी है जिसे मापा जा सकता है। साथ ही ऐसे लोगों के प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जो इस सम्मेलन के सम्बन्ध में अत्यधिक व्यापक विचार रखते हैं।

तीन वर्ष पूर्व जब प्रथम अंतर्राष्ट्रीय अणु-सम्मेलन किया गया था, तब यह डर था कि यह सम्मेलन कहीं प्रचार-प्रतियोगिता में परिवर्तित हो कर भ्रष्ट न हो जाए। ऐसा नहीं हुआ। इस का कारण एकता उत्पन्न करने वाली लोक कल्याणकारी अणु की प्रभावकारी शक्ति है। जेनीवा में वैज्ञानिक लोग राजनीति तथा अन्य बातों पर ध्यान दिए बिना एक दूसरे से मुक्त रूप में वार्ता करने के कार्य में संलग्न हैं। वे कल्याणकारी अणु को व्यावहारिक विकास की वर्तमान स्थित प्रदान करने वाले कार्यों के सम्बन्ध में ये वार्ताएं कर रहे हैं।

सम्मेलन के महामंत्री सिगवार्ड एकलुण्ड के कथनानुसार कल्याणकारी अणु विज्ञान का विकास तेजी से उस सीमा तक पहुँचता जा रहा है, जब कि राष्ट्रीय अनुसंधानशालाओं में प्राप्त की गई अधिकतम जानकारी अंतर्राष्ट्रीय रूप में मुक्त कर दी जाएगी तथा गोपनीयता का अंत हो जाएगा।

व्यावहारिक कार्यों में अणु को शीघ्र ही उपयोग में लाने पर पेटेण्ट तथा व्यापारिक रहस्यों के फलस्वरूप निःसंदेह कुछ अड़चनें पड़ेंगी, किन्तु ये अड़चनें कुछ निश्चित विधियों तक सीमित होंगी। फिर भी, लाइसेंस सम्बंधी समस्याओं के फलस्वरूप किसी प्रकार का गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष कभी नहीं हुआ है।

ब्रिटेन और अमेरिका की इस संयुक्त घोषणा से कि भविष्य की आणविक ताप सम्बंधी समस्त नई खोजें पूर्णतया मुक्त कर दी गई हैं, स्पष्ट रूप से अत्यधिक लाभ होगा। इसका अभिप्राय यह होगा कि समस्त ब्रिटिश या अमेरिकी खोजें संसार के सब राष्ट्रों को ज्ञात हो जाएंगी। आशा यह भी की जाती है कि रूस भी अपने आणविक कार्यक्रम पर से गोपनीयता के बंधन को हटा लेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय अणु-सम्मेलन की पुनः चर्चा करते हुए यह बात कही जा सकती है कि इस सम्मेलन में कई प्रकार की चर्चाएं होंगी। व्यापक प्रश्नों पर सामान्य अधिवेशन तथा अपेक्षाकृत संकीर्ण क्षेत्रों की समस्याओं के बारे में उन से सम्बंध रखने वाले विशेषज्ञों के विशेष अधिवेशन किए जाएंगे। इन दोनों प्रकार के अधिवेशनों के अतिरिक्त अनौपचारिक गोष्ठियां भी होंगी। यह स्पष्ट है कि गोपनीयता रहते हुए इस प्रकार की चर्चाएं सम्भव नहीं थीं।

अणु के कल्याणकारी कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रम होने पर भी यूरोप तथा अन्य स्थानों के अनेक देश इस दिशा में तीव्र गति से प्रगति करने के लिए प्रयत्नशील हैं। जहाँ तहाँ अब भी इसके खतरों के सम्बन्ध में रहस्यपूर्ण भय विद्यमान है। इस दिशा में सावधानी से कदम उठाया जा रहा है।

इस बात का एक प्रमाण आणविक बीमा सम्बन्धी यूरोपीय अध्ययन केन्द्र है। यह संस्था सितम्बर १९५५ में उस समय स्थापित की गई थी, जब कि अणु शक्ति सम्बन्धी प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अणु-सम्मेलन हुआ था। यह अध्ययन केन्द्र मूल संस्था द्वारा दो वर्ष से भी अधिक काल में आणविक खतरों के स्थायी कमिशन के रूप में विकसित किया गया है। इस कमिशन का सम्बन्ध पश्चिमी यूरोप के १८ राष्ट्रों की बीमा कम्पनियों से है।

यह अध्ययन-केन्द्र सर्वथा अनूठा है। इसका उक्त कम्पनियों से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं, अपितु राष्ट्रीय बीमा संघटनों, 'यूरेटम', विश्व स्वास्थ्य संघटन, विश्व के ऋतु संघटन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से इसका सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के परामर्शदाता तथा एक प्रमुख स्विस बीमा कम्पनी के निर्देशक डा० विलेलिन के अनुसार आणविक बीमे की अत्यधिक पेचीदा यूरोपीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का विश्लेषण करने तथा दस्तावेजों के रूप में सामग्री एकत्रित करने की दृष्टि से यहाँ अत्यधिक प्रगति की जा चुकी है। उक्त केन्द्र के प्रतिनिधि कनाडा और अमेरिका में भी हैं तथा इसका क्रियात्मक सम्पर्क न्यूयार्क की आणविक औद्योगिक गोष्ठी से है। सब कुछ मिला कर इसके सम्मुख आधुनिक काल की कुछ सब से अधिक कठिन बीमा संबन्धी समस्याएँ हैं।

स्वयं इस अध्ययन केन्द्र का अस्तित्व यूरोप की उन आशाओं का प्रमाण है जो अणु के कल्याणकारी प्रयोगों से की जा रही हैं—१९५५ की स्थिति से यह सर्वथा भिन्न बात है। पिछले कुछ दिनों से इस परिवर्तन में तेजी आ गई है। क्योंकि यह परिवर्तन स्विटजरलैण्ड में भी स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है और गत दिनों में अमेरिका की 'नौटिलस' तथा 'स्केट' नामक पनडुब्बियों ने उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में समुद्री यात्राएँ करके जो अद्भुत कारनामे किये हैं उनकी ओर संसार का ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस संस्थान की आणविक गोष्ठियों में भाग लेने के लिए यहाँ आये हुए सम्वाददाताओं का कथन है कि समुद्री यात्रा करने वाले लोगों ने शीघ्रता से यह अनुभव कर लिया है कि केवल ऐसे जहाजों द्वारा ही ऐसे कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं जिनका अणुशक्ति से संचालन होता हो और उनमें पुनः ईंधन डालने तथा आक्सीजन की व्यवस्था करने की आवश्यकता न हो। यहाँ प्राप्त होने वाले समाचारों के अनुसार अमेरिका अणुशक्ति चालित् जहाज 'सावैना' और रूस आणविक हिम-विखण्डक जहाज का निर्माण कर रहे हैं। इसके अलावा, जापान (जो समुद्र के नीचे चलने वाले तेजवाहक जहाज का निर्माण कर रहा है), पश्चिमी जर्मनी, नार्वे, फ्रांस, और ब्रिटेन बड़ी तेजी के साथ अणुशक्ति से चलने वाले जहाजों के विषय में पड़ताल कर रहे हैं।

यद्यपि काल्डर हाल जैसी भट्ठी (ब्रिटिश किस्म के बिजली घर जिनमें यूरेनियम रहित प्राकृतिक ईंधन प्रयोग में लाया जाता है) से काम नहीं चल सकता, फिर भी, जैसा अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस संस्थान की गोष्ठी में

एक ब्रिटिश वक्ता ने कहा था, अणुशक्ति से चलने वाले जहाजों के आर्थिक पहलुओं में असाधारण रूप से रुचि उत्पन्न हो गई है। इसीलिए ब्रिटेन ने उन भट्टों के सम्बन्ध में अध्ययन करना आरम्भ कर दिया है जिन्हें भारी पानी (हैवी वाटर) अथवा दबाव वाले पानी से ठण्डा किया जाता है। ये उन भट्टियों से अधिक मिलती जुलती हैं, जिन्हें अमेरिका में पसन्द किया जाता है। किन्तु भूतपूर्व गैर आणविक देशों में अणु के सम्बन्ध में जो रुचि उत्पन्न हुई है, उसका प्रमाण यहीं समाप्त नहीं हो जाता है।

स्वीडन और पश्चिमी जर्मनी ने कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। स्वीडन ने घरों में आणविक ताप की व्यवस्था का विचार प्रस्तुत किया है और पश्चिमी जर्मनी में विखण्डनीय (यू-२३५) यूरेनियम को अविखण्डनीय भाग (यू-२३८) से अलग करने की एक नई विधि खोजी गई है। इस विधि को जेनीवा-सम्मेलन में प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रावरण क्रिया और मनुष्य-कृत सूर्यशक्ति की ओर निस्सन्देह लोगों का सैद्धान्तिक दृष्टि से भारी ध्यान आकृष्ट होगा, किन्तु यदि यूरोपियनों के विचार किसी प्रकार के संकेत हैं तो १९५८ के जेनीवा-सम्मेलन के अवसर पर जिन चीजों की ओर लोगों का अधिक ध्यान जाने की सम्भावना है उनमें आणविक बिजली अणु-शक्ति चालित जहाज और आणविक सुरक्षा की व्यवस्था हैं।

अणुशक्ति के शान्ति कालीन प्रयोगों से सम्बन्धित जो कार्य हुआ है उसने एक दूसरे के कट्टर शत्रु राष्ट्रों को भी एक साथ मिल जुल कर कार्य करने को विवश कर दिया है इस पारस्परिक सहयोग के परिणाम स्वरूप संसार की विभिन्न शक्तियों के तनाव में शनैः शनैः कमी आ जावेगी और कटुता की भावना नष्ट हो कर सारे विश्व को एक बनाने की भावना को बल मिलेगा।

क्या आप जानते हैं ?

हथकरघे के कपड़े का निर्यात

* भारत के आर्थिक जीवन में हथकरघा उद्योग का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। देश के विकास के लिए हमें विदेशी मुद्रा की बहुत आवश्यकता है। हथकरघे का कपड़ा विदेशी मुद्रा कमाने का महत्वपूर्ण साधन है।

* पिछले दो साल से हथकरघे के कपड़े का निर्यात लगातार बढ़ रहा है। सन् १९५५-५६ में ८ करोड़ ४६ लाख रु० के मूल्य का हथकरघे का कपड़ा निर्यात किया गया, जब कि १९५४-५५ में कुल ८ करोड़ २२ लाख रु० की कीमत का कपड़ा निर्यात हुआ।

* श्री लंका, अदन, ईराक, सऊदी अरब, सूडान, ब्रिटिश प० अफ्रीका और मलाया हथकरघे के कपड़े के प्रमुख ग्राहक हैं। अमेरिका में भी इसकी खपत बढ़ाया जा सकती है।

* भारत सरकार ने हथकरघे के कपड़े के निर्यात को बढ़ावा देने की योजनाओं की समय-समय पर स्वीकृति दी है। नवम्बर १९५२ में अखिल भारतीय हथकरघा मण्डल की स्थापना की गयी। इसने विदेशी बाजारों में हथकरघे के कपड़े की खपत और माँग बढ़ाने की योजना चालू की है।

* इस योजना के अनुसार मध्यपूर्व और सुदूर-पूर्व के महत्वपूर्ण शहरों में चार अधिकारी नियुक्त किये गये हैं और अदन बैंकाक, चिटगांव, कोलम्बो, करांची, रंगून और सिंगापुर में बिक्री केन्द्र खोले गये हैं इनके अतिरिक्त विभिन्न देशों में भारत के व्यापार प्रतिनिधियों से कहा गया है कि अपने-अपने क्षेत्र में हथकरघे के कपड़े की खपत बढ़ाने के लिए विशेष उपाय करें।

* अखिल भारतीय हथकरघा मण्डल ने, हाल में, निर्यात किये जाने वाले कपड़े की परीक्षा करने और प्रतिमान निर्धारित करने की योजना चालू करने का निश्चय किया है। इस काम के लिए मद्रास में एक संगठन खोला जा रहा है।
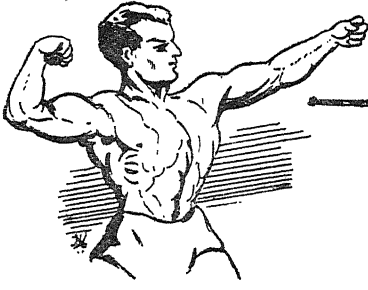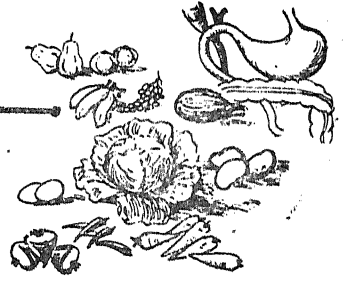
आँखों की रक्षा

डा० हंसराज

आप में से बहुतों ने यह शेर सुना होगा—'कदरे सेहत मरीज से पूछो, तन्दुरुस्ती हजार नेमत है।' सच है हम बहुत-सी नेमतों की कदर उनसे वंचित होकर ही अनुभव करते हैं। यह उक्ति विशेष कर आँखों पर घटती है। आपने बहुत बार यह दर्द भरी सदा सुनी होगी—'आँख वालो आँखें बड़ी न्यामत हैं।' यह आवाज सदा देने वाले के निजी कटु अनुभव का परिणाम है और सुनने वालों के लिए भी शिक्षाप्रद है कि आप इस परमात्मा की दी हुई बहुमूल्य रत्न की भली-भाँति रक्षा करें और आयु भर इसका सदुपयोग करें। इनसे संसार के विचित्र चमत्कार देखें और उनका हाल पढ़ें, वर्ना आप भी अपने सब सम्बन्धियों और मित्रों को फारसी के शायर की बात सुनाया करेंगे, जिसका अर्थ यूं है कि मैंने तो अपना कर्तव्य भली-भांति नहीं किया, परन्तु भगवान के लिए आप ऐसा न करें। नेत्र, ज्ञान इन्द्रियों में सर्वोत्तम है। संसार का वृत्तांत और हर व्यक्ति के इर्द-गिर्द की जानकारी सब से अधिक नेत्र ही द्वारा मनुष्य को मिलती है। इसलिए प्रकृति ने भी हड्डी के अंदर खाली स्थान बना कर उनके रहने के लिए सुरक्षित घर बनाया है जो कि सिर्फ सामने से ही खुला है और जिसको दोनों पलकें दरवाजे के किवाड़ों की तरह बंद हो कर और भी सुरक्षित कर देती हैं। इनको धोकर साफ रखने के लिए प्रकृति ने आँसू बनाये हैं जो कि गर्दो-गुबार और मैल को दूर कर के साफ रखते हैं। परन्तु इस प्रकृतिक सुरक्षा के अतिरिक्त भी नेत्र जैसे कोमल अंग की देख-भाल अति आवश्यक है, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार के खराब प्रभाव इन पर पड़ते हैं जैसे गंदे हाथों से बार-बार छूना, भिन्न-भिन्न रोगों के कीटाणुओं का वायु में से इनके ऊपर गिरना और रक्त द्वारा शरीर के अन्य अंगों के रोगों का इन पर प्रभाव इत्यादि। इन्हीं सब बुरे प्रभावों के द्वारा नेत्र प्रायः रोगों के शिकार हो सकते हैं।

नेत्र हीन

इन्हीं उपरोक्त कारणों द्वारा और नेत्रों की भली-भांति रक्षा न करने के कारण संसार में ५० लाख व्यक्ति बिल्कुल नेत्रहीन हैं और इससे कई गुणा व्यक्ति आँखों द्वारा इस प्रकार पीड़ित हैं कि वह भी लगभग नेत्र हीन ही हैं और न केवल समाज के लिए ही अनुपयोगी हैं किन्तु अपना भी कुछ कार्य नहीं साध सकते और यह डेढ़-दो करोड़ व्यक्ति संसार की एक समस्या हैं। हमारे देश में प्रतिशत अन्धों की संख्या संसार के बहुत से देशों की अपेक्षा कहीं अधिक है और भारत के कई प्रदेशों की अपेक्षा हमारे उत्तर-प्रदेश में प्रतिशत इनकी संख्या बहुत अधिक है जैसे भारत में प्रति लाख स्त्री-पुरुष में एक सौ सत्तर अन्धे हैं। बंगाल में तेहत्तर और हमारे प्रदेश में दो सौ एकानब्बे।

यह विचार है कि यह व्यवस्था क्यों है। इसलिए कि यहाँ की जनता दरिद्रताग्रस्त है। इसको दूध, मक्खन और फल और इनमें विद्यमान अतिआवश्यक विटामिन प्राप्त नहीं है और वह जल्द ही भोजन की कमी से होने वाली बीमारियों का शिकार हो जाती है। वह शिक्षा और प्रचार की कमी के कारण स्वास्थ्य रक्षा के

नियमों का ज्ञान नहीं रखती और अगर रखती है तो अपनी लापरवाही और प्राचीन अन्धविश्वासों के कारण उनका उपयोग नहीं करती। वह इलाज के लिए उचित डाक्टर के पास या अस्पताल में अपनी दरिद्रता और अज्ञान के कारण या ऐसे साधन उसके समीप न होने के कारण नहीं पहुँच सकती और न वह एक सुशिक्षित डाक्टर और नकली डाक्टरों या हकीमों में भेद जान सकती है। इसके अतिरिक्त उसका भाग्य पर विश्वास, जादू-टोने, तावीज, टोटकों का इलाज नेत्रहान करने में आग पर तेल का काम करते हैं।

प्रमुख रोग

चन्द एक रोग जिनसे लोग बचपन से या जवानी में अंधे हो जाते हैं, यह है—(१) रूहे, जिसको कुकरे, कुथरू भी कहते हैं। अक्सर मामूली आशोबेचश्म या उठी आँखों का मुनासिब इलाज न करने से भी रोहे पैदा हो जाते हैं। यह रोग गंदगी, घर में बेतरतीबी, बेकरीनगी, बिस्तर व कपड़े गंदे होने से, मक्खियों से, अंधेरे और गैरहवादार मकान में अधिक आदमी रहने से, दूसरों का अंगोछा तौलिया या सुरमें की सलाई प्रयोग करने से होता है, मुद्दतों चलता है और बहुत से व्यक्तियों को अंधा हो करके छोड़ता है। (२) चेचक जिसको अंधविश्वासी अब भी देवी जी या माता के नाम से पुकारते हैं। यह रोग अगर जिन्दा छोड़ जाता है तो अंधा या बदसूरत छोड़ जाता है। (३) सूखा रोग—जब बच्चा को काफी मात्रा में पौष्टिक भोजन जिसमें दूध, मक्खन, फल, साग, टमाटर जैसी तरकारियाँ नहीं मिलतीं तो बच्चे को सूखा रोग हो जाता है या एक या दो साल के बच्चे का जब माँ का दूध छूट जाता है, अगर दूध, मक्खन या फल नहीं मिलते और वह दाल,-भात, सस्ता बिस्कुट और लैया, रोटी पर ही गुजारा करता है तो सूखे रोग में ग्रस्त हो जाता है। पहले रतौंधी आने लगती है और फिर आँखें खुश्क होकर एक ही दो रोज में बह जाती हैं। इस रोग में ग्रस्त बच्चे हर रोज हर डाक्टर के देखने में आते हैं और अस्पतालों में बहुत तादाद में मिलते हैं, क्योंकि इनकी संख्या अधिक है। इन रोगों के अतिरिक्त नवजात शिशुओं की आँख उठना, तेज औषधियों का प्रयोग, गैर सनदयाफ्ता डाक्टरों या हकीमों जैसे सथिया और कोहाल से इलाज, बच्चों के खतरनाक खेल जैसे तीर कमान और आतिशबाजी इन सब बातों का भी अंधे आदमियों की संख्या बढ़ाने में काफी हाथ है और बुढ़ापे में मोतिया बिन्दु और जिसे देहाती सबजबायु या सम्बल बाई भी कहते हैं। हमारे देश में अंधेपन के सम्बन्ध में खेद जनक पहलू यह है कि अधिकतर अंधे इस अवस्था को बाल्यपन या युवावस्था में ही प्राप्त हो जाते हैं जब कि उनके लाभदायक जीवन का बड़ा अंश बाकी होता है और दूसरा खेद जनक पहलू यह है कि उनमें से अधिकतर व्यक्तियों को इस दशा तक पहुँचने से बहुत आसानी और कम खर्च से बचाया जा सकता है।

इसलिए यह अत्यावश्यक है कि नेत्र रक्षा अथवा दृष्टि रक्षा के लिए सर्व प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाये ताकि इस अनमोल शक्ति से हम वंचित न हो जायें और देश और समाज का बोझ न बन जायें। इन साधनों का प्रयोग (१) व्यक्तिगत कर सकते हैं, और (२) सामाजिक रूप से। व्यक्तिगत नेत्र रक्षा के लिए बुनियादी साधन एक ही है कि आँख को रोग की छूत से बचायें, क्योंकि रोग के इलाज की अपेक्षा उसकी रोकथाम अच्छी है।

गन्दे हाथ, मैले चेहरे, मैले कपड़े, गन्दे घर, गन्दी आदतें, इनसे ही आँखें गन्दी होती हैं और आँख का रोग और अन्धापन बढ़ता है। स्वच्छता की आदत डालने और उसका प्रचार करने से ही नेत्र रक्षा बहुत हद तक हो सकती है और इसके लिए निम्न दस नियमों का प्रयोग करना उचित है।

दस नियम

१—अपने हाथ, उंगलियाँ, चेहरे स्वच्छ रखिये और उनको कम से कम दो दफा दिन में साबुन से धोइये।

२—आँखों को गर्दोगुबार और मक्खियों से बचाइये और खतरनाक धन्धों में चश्मे का प्रयोग करें।

३—दूसरों का प्रयोग किया हुआ रूमाल, अंगोछा, सुरमें की सलाई आदि प्रयोग में न लाइए।

४—यदि किसी की आँखें लाल है या कीचड़ या मैल देती है तो उसे दूसरों से अलग रहना चाहिए जब तक वह ठीक न हो जायें। तथापि यदि किसी बच्चे की आँखें उठती हैं तो स्कूल न भेजिये और घर में और बच्चों से उसका रूमाल, तौलिया बिस्तर और स्थान अलग रखिये।

५ हर एक बच्चे को पैदा होने के तीन मास के अन्दर चेचक का टीका लगवाइए और फिर छठे तथा ग्यारहवें साल में।

६—जच्चाखाने के लिए सुशिक्षित डाक्टर या दाई को बुलाइए और नवजात बच्चे की आँख साफ करके उसमें दवा डालिए।

७—खतरनाक खेल जैसे आतिशबाजी, तीर कमान से न खेलिये।

८—काफी मात्रा में भोजन होना चाहिए जिसमें दूध फल और तरकारियों का होना बहुत आवश्यक है।

९—अच्छी रोशनी में पढ़िए या काम-काज कीजिए और रोशनी पुस्तक या काम पर पड़नी चाहिए आंखों पर नहीं। लगातार कई घन्टों या धुँधली रोशनी में पढ़ने से आंखों को हानि पहुँचती है।

१०—यदि आपकी दृष्टि क्षीण हो रही है या आपकी आंख में कोई कष्ट है तो तुरन्त किसी सुशिक्षित या नेत्र विशेषज्ञ डाक्टर की सम्मति लेनी चाहिए डा० के न मिलने तक आंख को स्वच्छ पानी से धोकर रिन्डी या तिल्ली का तेल डाल लें। परन्तु इलाज में जरा भी देर करने से बहुत हानि होने की सम्भावना है।

सामाजिक रूप में जन्म से वृद्धावस्था तक नेत्र रक्षा के लिए माता-पिता गुरु व अध्यापक, डाक्टर, स्कूलों के अधिकारीगण, सरकारी शिक्षा विभाग और स्वास्थ्य विभाग सब के सहयोग की आवश्यकता है ताकि स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का प्रचार और आन्दोलन करके इस हानिकर दशा के प्रति जागृति पैदा की जावे और हर किसान व मजदूर और अनपढ़ व्यक्ति पर भी स्पष्ट हो जावे कि आंख के साधारण रोग के लिए भी उसको लापरवाही करना और पड़ोसियों के बताये हुए घास फूस का इलाज करना उसके लिए अत्यन्त हानिकारक हो सकता है।

नेत्र रक्षा में मजदूर और किसान बहुत बड़ा सहयोग इस प्रकार दे सकता है कि वह अपनी पूरी शक्ति से अनाज और सामान पैदा करे और देश की पंचवर्षीय योजना के सफल होने में सहायता करे और देश की आर्थिक अवस्था सुधारने में पूरा परिश्रम करे जैसा कि हमारे प्रधान मंत्री नेहरू जी ने कहा है कि देश में जो सम्पत्ति है या भूमि है उसके बराबर बांट लेने से ही देश का या व्यक्तिगत कल्याण नहीं हो सकता, परन्तु अगर हर एक मजदूर और किसान अपनी पूर्ण शक्ति से अधिक से अधिक सामान और अधिक से अधिक अनाज प्रति बीघा पैदा करे तो सब पेट भर स्वच्छ और सब प्रकार का भोजन जो कि नेत्र रक्षा के लिए सर्व प्रथम आवश्यक है पा सकेंगे या खरीद सकेंगे, क्योंकि नेत्रहीनता का मूल कारण दरिद्रता और उससे पैदा हुआ अज्ञान इस परिश्रम से दूर हो जायगा।

नेत्र-रक्षा के कार्य का क्षेत्र बहुत बड़ा है। मजदूरों और किसानों की सेवा के लिए अब प्रायः हर जिले में अन्धत्व निरोधक समितिएं बन गयी हैं जो देहात में भी आपकी सहायता करने का प्रयत्न कर रही हैं। हर जिले में रेडक्रास सोसायटी की शाखाएं भी स्थापित हैं जो किसी हद तक नेत्र रक्षा के प्रचार के लिए साधन और पथदर्शन कर रही हैं। इनसे पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए हर व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता है ताकि मजदूरों और किसानों तक नेत्र स्वच्छता, और नेत्र रक्षा का सन्देश पहुँचाया जा सके।

"उत्तर प्रदेश पंचायती राज्य" के सौजन्य से

विज्ञान, नवम्बर १६५८
पृष्ठ ५३–५६

पेनिसिलिन का परिवार–प्रतिजीव

जवाहर लाल वखलू, एम० एस-सी०, तेज नारायण जुबिली कालेज, भागलपुर

विज्ञान का कोई भी सजग विद्यार्थी आपके इस आरोप से इनकार नहीं कर सकेगा कि आज विध्वंसात्मक शस्त्रों के अविष्कारों के लिये विशाल वैज्ञानिक अनुसंधान चल रहे हैं किन्तु साथ ही साथ यह सत्य मानना ही होगा कि मनुष्य की भलाई के लिये भी कुछ कम नहीं किया जा रहा है जीवाणु सम्बन्धी भयानक युद्ध चल रहे हैं तो साथ ही साथ मनुष्य को तङ्ग करने वाली असंख्य बीमारियों पर नियंत्रण पाने के लिये अनवरत अनुसन्धान भी चल रहे हैं इन अनुसंधानों ने हमें ऐसी रासायनिक दवाओं की ओर आकृष्ट किया है जो शरीर पर बिना किसी प्रकार का विषैला प्रभाव पैदा किये ही रोगाणुओं को नाश कर देती है यहाँ पर मैं विशेष रूप से प्रतिजीवों (Antibiotics) का ही उल्लेख एवम् वर्णन करूँगा।

"प्रतिजीव" या "रोगाणुनाशी" की परिभाषा इन शब्दों में दी जाती हैं :—यह किसी जीवाणु द्वारा उत्पन्न किया गया वह रासायनिक पदार्थ है जिसमें रोगाणुओं की वृद्धि को रोकने या उन्हें नष्ट करने वाली शक्ति होती है। इस शब्द की उत्पत्ति सन् १८६८ में तब हुई जब व्हिलेमिन नामक वैज्ञानिक ने अपनी धारणा को इस रूप में व्यक्त किया:—"एक जीव जो अपना जीवन बचाए रखने के लिये दूसरे का जीवन नष्ट करता है"—अथवा "एक दूसरे जीव के जीवन के विरोध में बाधाहीन रूप से जीवित जीव"

पेनिसलिन, स्ट्रेप्टोमायसिन प्रभृति रोगाणुनाशकों के इस युग में किसी भी जिज्ञासु के अन्दर यह कौतूहल उठना बहुत स्वाभाविक होगा कि कहीं 'रोगाणुनाशी' वर्ग की ओर भी विज्ञान का ध्यान आकस्मिक घटना के कारण ही तो नहीं गया। प्रायः सब ही महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार बिना बुलाये अतिथि की भांति अनपेक्षित रूप से हमारे जीवन में प्रवेश पाते रहे हैं। रोगाणुनाशी इस नियम के अन्तर्गत ही आता है सन् १६२८ में अङ्गरेज वैज्ञानिक फ्लेमिङ्ग (Fleming) ने अपने नियमित प्रयोगों के सम्बन्ध में ही देखा कि स्टैफायलोकोक्स (Staphylococci) बैक्टीरिया के प्लेट में फफूँदी (mold) लग गई थी इस फफूँदी ने आस-पास की बैक्टीरिया को गला दिया था। फ्लेमिङ्ग (Fleming) ने इस नवागन्तुक फफूँदी को अलग शुद्ध रूप में निर्माण किया। इसके बैक्टिरिया विरोधी गुणों की परीक्षा की। फिर इस विरोधी पदार्थ फफूँदी का नामकरण किया "पेनिसिलिन"। आगे के प्रयोगों द्वारा पता लगा कि पेनिसिलिन पशुओं के शरीर में रोगाणुओं को नष्ट करने में सफल रहता है और उसकी क्रिया से जानवरों के शरीर पर कोई विषैला प्रभाव नहीं पड़ता। फ्लेमिङ्ग (Fleming) ने सुझाव दिया कि रोगाणुनाशी (Antibiotic) चिकित्सा के लिये उपयोगी हो सकता है। बस, यहीं से प्रतिजीव (Antibiotics) की दिनानुदिन प्रगति का श्रीगणेश हुआ। चिकित्सा विज्ञान में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। पेनिसिलिन के आविष्कार ने अनुसंधान कर्ताओं का ध्यान नई एवम् प्रबल रासायनिक दवाओं की ओर आकृष्ट किया शीघ्र ही ऐसे पदार्थ निकाले गये और आज उनकी संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती है।

कवकानि (Fungi) और बैक्टीरिया (Bacteria) उद्भिदों की उस श्रेणी में आते हैं, जो अपना भोजन स्वयं तैयार नहीं कर सकते स्पष्टतः, इनमें प्रकाश संश्लेषण क्रिया (Photosynthesis) नहीं होती। प्रतिजीवों की उत्पत्ति इन्हीं में से कुछ के

द्वारा होती है। इनमें से पेनिसिलिया (Penicillia) एस्परजिलिया (Aspergilli)......एक्टिनोमायसिटेलिज (Actinomycetales) और कुछ दूसरे उच्च कवकानि (Fungi) इनके प्राप्त करने के सर्वोत्तम साधन है। बैसिट्रेसिन जैसे अधिक महत्व-पूर्ण प्रतिजीव बैक्टीरिया से प्राप्त किये जाते हैं।

कुछ महत्वपूर्ण प्रतिजीव ये हैं—

बैक्टिरिया से प्राप्त :—एयरोस्पोरिन (Aerosporin); बैसिलिन (Bacillin); बैसट्रेसिन (Bacitracin); यूमायसिन (Eumycin); कॉलिसिन, (Colicine), आयडीनिन (Iodinin); पालिमिक्सन (Polymixin); पायकोसियानन (Pycocyanin) आदि।

ऐक्टिनोमायसिटि से प्राप्त :—एक्टिडियोन (Actidione), स्ट्रेपटोमायसीन (Streptomycin), ऐक्टिनोमायसिटिन (Actinomycetin); एक्टिनोमायासिन (Actinomycin); स्ट्रेप्टिन (Streptin)

कवकानि से प्राप्त :—पेनिसिलिन (Penicillin); पेनिसिडिन (Penicidin); पेनिसिलनिक ऐसिड (Penicillinic acid); एस्परजलिन (Aspergillin), एसपरजिलिक एसिड (Aspergillic acid); ग्लायो टाक्सिन (Gliotoxin) और अस्टीन (Ustin);

कुछ हरे पौधों से भी बैक्टिरिया विरोधी पदार्थों की उत्पत्ति होती है। इनमें टमाटर, मिर्च के बीज और मूली के बीज उल्लेखनीय हैं। "प्रतिजीव" की ठीक-ठीक परिभाषा को व्यवहार करने पर हरे पौधों से प्राप्त इन बैक्टीरिया विरोधी गुणयुक्त पदार्थों को इस श्रेणी में नहीं रखा जा सकता इनके लिये दूसरे नाम दिये गए हैं। जैसे :—प्रतिजीव सदृश, उद्भिद-प्रतिजीव अथवा फायटानसाइड्स (Phytoncides).

प्रतिजीवों को उत्पन्न करने वाले जीवों का उद्गम-स्थान असीम है। हमारा अभिप्राय है—मिट्टी से। ये जीव प्रायः हर प्रकार की मिट्टी में मिलते हैं। एक्टिनोमायसिटेलज (Actinomycetales)-मरूस्थल में भी मिलती है। इन जीवों की वितरित जनसंख्या की माप कुछ स्थानों में की गई है। प्राप्त आँकड़े बहुत अस्थिर (Variable) हैं। लुइसियाना (अमेरिका) की ऊख की भूमि में दस लाख से चार करोड़ जीव प्रति ग्राम मिट्टी के बीच पाये गये हैं। ऐसी मिट्टी के लगभग दो औंस (एक छटाँक) में इन जीवों की संख्या सम्पूर्ण विश्व की मानव संख्या के बराबर होगी!

प्रत्येक प्रतिजीव सब रोगाणुओं को समान भाव से प्रभावित नहीं करता। एक प्रतिजीव यदि एक रोगाणु के ऊपर प्रभावशाली है। तो दूसरे के ऊपर भी उसका असर हो ही यह आवश्यक नहीं। उस दूसरे रोगाणु के लिये दूसरा प्रतिजीव हो सकता है। इस तरह हो सकता, है कि किसी प्रतिजीव द्वारा कोई रोगाणु पूरी तरह प्रभावित हो दूसरे रोगाणु कुछ ही सीमा तक अथवा और भी ऐसे रोगाणु हो सकते हैं जिन पर उसका कोई प्रभाव न हो। इस प्रकार प्रत्येक प्रतिजीव अपने विशिष्ट "सूक्ष्म-जीव विरोधी-वर्णपट" (Antimicrobial spectrum) से पहचाना जाता है।

प्रतिजीवों की संख्या नियमित रूप से दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है। आज तक सैकड़ों की खोज हो चुकी है। और उनके गुण अत्यन्त सावधानी के साथ जाँचे जा रहे हैं। साधारण लोगों के लिये एक बात आश्चर्यजनक हो सकती है कि परिचित प्रतिजीवों की संख्या बड़ी है पर चिकित्सा में प्रयुक्त प्रतिजीव फिर भी थोड़े ही हैं। कारण यह है कि मानव शरीर में प्रवेश कराये जाने के पूर्व प्रतिजीव के बहुत सारी स्थितियों के लिये उपयुक्त होने के प्रमाण देख ही लेने चाहिये अन्यथा शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो सकती है। किसी उपयोगी प्रतिजीव के लिये यह आवश्यक है कि वह रोगाणु पर मानव शरीर के अन्दर ही प्रभावकारी हो (In vivo) कुछ प्रतिजीव प्रायोगिक सम्बन्ध प्लेटों

(Experimental culture plates) पर ही प्रभावकारी होते हैं । (In vitro) ये दूसरी श्रेणी के प्रतिजीव मानव शरीर के अन्दर प्रभावकारी होते भी हैं तो कुछ ही सीमा तक ।

आदर्श प्रतिजीव के गुण ये हैं:—

१. शरीर में प्रवेश कराये जाने पर कोई अचाहित या विषैला प्रभाव पैदा न करे ।

२. जल अथवा लवणजल (brine) में घुलनशील हों ।

३. स्थायी हों ।

केवल कुछ ही प्रतिजीव इन आवश्यकताओं के अधिकतम भाग को पूरा करते हैं । उनमें से यह उल्लेखनीय हैं:—पेनिसिलिन (Penicill n) स्ट्रेपटोमायसीन (Strep omycin) बैसिट्रन (Bacitrin), एयरोमायसिन (Aeromycin), क्लोरोमायसिटिन (Chloromycetin) और टेरोमायसिन (Terromy cin) । अब तक ज्ञात प्रतिजीवों में कदाचित पेनिसिलिन ही अविषैला माना जाता है । क्योंकि इसे निरंतर पर्याप्त मात्रा में देने पर भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता । फिर भी, बहुत थोड़े ही सही, कुछ लोग ऐसे भी मिला करते हैं जिन पर पेनिसिलिन के व्यवहार से कुछ बुराइयां प्रकट हो जाती हैं, साधारणतः इन लोगों को दुर्जापत्ति खुजली जैसे रोग हो जाते हैं ।

कुछ प्रतिजीव व्यापारिक मात्रा में बनाये जाते हैं । रासायनिक रूप से शुद्ध पदार्थ पाने के लिये असाधारण रूप से सावधानी रखनी होती है । वास्तविक विधि में कई सीढ़ियां होती हैं । जीवाणु के शुद्ध सम्वर्द्ध (Culture) के लिये इसे दूसरे पदार्थ स पृथक (isola e) किया जाता है । यह बहुत सी भिन्न-भिन्न विधियों से किया जाता है । जीवाणु की किसी विशेष जाति का विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व उसकी एक जाँच होती है । इस जाँच का मुख्य उद्देश्य जीवाणु बैक्टीरिया या कवकानि (Fungi) विरोधी गुणों के सम्बन्ध में ज्ञान की प्राप्ति है । इसके लिये व्यवहार में लाये जाने वाले तरीके को ऑक्सफोर्ड सिलिण्डर प्लेट अथवा अगर-कप-प्लेट (Oxford cylinder plate or agar cup plate test परीक्षा कहते हैं । जिस प्रतिजीव उत्पादक (Antibi te) की विध्वंसात्मक-शक्ति की परीक्षा करनी होती है । उसे उस रोगाणु विशेष के साथ मिलाया जाता है । और प्राप्त फलों की जाँच की जाती है ।

जीवाणुओं को उत्पादन करने के हेतु इनके खाद्य पदार्थ को प्लेटों (culture plates) में तैयार किया जाता है । जीवाणु की जाति के अनुसार खाद्य पदार्थ की रचना निर्धारित की जाती है जिससे उस जीवाणु को बढ़ने के लिये अधिक से अधिक अनुकूल वातावरण मिले । जीवाणुओं के सम्वर्धन की तीन विधियाँ हैं । पर विशाल पैमाने पर सम्वर्द्ध करण culturing) के लिये जिस एक विधि का उपयोग होता है । उसे गहन-आप्लावित-सम्वर्द्ध (deep submerged culture) कहते हैं ।

इस विधि में कम समय में ही अधिक जीवाणु पैदा होते हैं । अब इन जीवाणुओं से प्रतिजीव निकाला जाता है । इसके लिये जीवाणु के साथ उचित विलेय मिलाये जाते हैं । पेनिसिलिन निकालने के लिये विलेयक के तौर पर एमाइल एसिटेट (amyl acetate) और क्लोरोफार्म (chloroform) का उपयोग किया जाता है विलेय में अशुद्ध रूप में प्रतिजीव उपस्थित हो जाता है । इसे शुद्ध किया जाता है । विलेय हटा दिया जाता है । प्राप्त शुद्ध पदार्थ को सुरक्षित अवस्थाओं में संग्रहीत किया जाता है । विभिन्न प्रतिजीवों में इस विधि का विस्तृत रूप विभिन्न होता है ।

प्रतिजीवों (रोगाणुनाशकों) की प्रगति से चिकित्सा विज्ञान की सम्भावनायें असीम होती जा रही हैं पेनिसिलिन की भांति शक्तिशाली प्रतिजीव रोगाणुओं को नाश करने में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं । पेनिसिलिन से भी अच्छे और भी अधिक प्रभावकारी प्रतिजीवों की खोज चल रही है । अभी ऐसा विश्वास करना कठिन है कि सर्वोत्तम प्रतिजीव का आविष्कार हो चुका है । भविष्य में हम चमत्कारिक आविष्कारों की आशा रख सकते हैं ।

पिछले कुछ वर्ष चिकित्सकों के अन्दर प्रतिजीवों को विना भय के व्यवहार करने की प्रवृति देखी जा रही है। इस तरह का प्रयोग केवल रोगी के ही लिये बुरा हो ऐसी बात नहीं। इससे दूसरी बड़ी हानि यह हो सकती है कि रोगाणु इन दवाओं के प्रति प्रतिरोध शक्ति प्राप्त करलें। उदाहरण के लिये ट्यूबर्कल बैसिलि tuber cle bacilli) को लें। इसके विरोध में स्ट्रेप्टोमायसिन (Streptomycin) का उपयोग किया जाता है। जब रोगी के शरीर के अन्दर स्ट्रेप्टोमायसिन दिया जाता है तो प्रारम्भ में तो यह बहुत प्रभावी होता है। पर निरंतर दिये जाने पर यह रोगाणु इस प्रतिजीव के लिये प्रतिरोध शक्ति उत्पन्न कर लेता है। और प्रतिजीव के प्रभाव से नष्ट नहीं होता। पेनिसिलिन के आविष्कारक फ्लेमिङ्ग (Fleing) ने अपनी मृत्यु (१९५४) के कुछ दिन पहले कहा था:—'विश्व के प्रत्येक देश में प्रतिजीवों का उपयोग बहुत ही बड़े पैमाने पर किया जा रहा है इसके अत्यधिक व्यवहार के कारण इसकी प्रभावात्मकता कम होती जा रही है। कुछ रोगी इस दवा के प्रति असम्वेदनशील हो गये हैं। उस महान वैज्ञानिक का कथन चिकित्सकों के लिये चेतावनी होनी चाहिये।

चिकित्सा-विज्ञान में प्रतिजीवों के उपयोग की स्पष्ट प्रगति से कवकजनित एवम् बैक्टिरिया द्वारा होने वाली वनस्पति रोगों में इनकी उपादेयता के ऊपर अनुसन्धान को बढ़ावा मिला है।

अखरोट एवम् नाशपाती के बैक्टीरिया-जनित अङ्गमारी रोग (Bacterial blight) को प्रयोग शाला के वातावरण में पेनिसिलिन का उपयोग दूर कर सका है। सेब के काल-लवन्छन रोग (Scab) तथा टमाटर की अङ्गमारी (blight) के ऊपर एक्टिमायसिन प्रभावशाली सिद्ध हुआ है, यदि निकट भविष्य में ही वनस्पति रोगों के नियन्त्रण के लिये प्रतिजीवों का सफलता पूर्वक उपयोग होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं!

भारत में प्रथम 'प्रतिजीवनिर्माण शाला का कार्यारम्भ सन् १९५५ ई० में हुआ अभी यहाँ केवल पेनिसिलिन ही बनता है। पर निकट भविष्य में ही यहाँ स्ट्रेप्टोमायसिन क्लोरोमायसिटन प्रभृति दूसरे प्रतिजीवों के तैयार किये जाने की योजना है। यह कारखाना जो भारत सरकार द्वारा व्यवस्थित है पूना से दस मील की दूरी पर पिम्परी नामक स्थान में अवस्थित है। यहाँ प्रति दिन एक खुराक पेनिसिलिन की डेढ़ लाख बोतलें बनती हैं।

भारत प्रत्येक वर्ष लगभग दो करोड़ रुपयों का पेनिसिलिन विदेशों से मंगाता है। इस कारखाने से सारी आवश्यकता पूरी हो जाने की आशा है।

कारखाने में 'अनुसंधान प्रयोगशाला' भी है। योजना है कि इस प्रयोगशाला को 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिजीव-अनुसन्धान केन्द्र' बना दिया जाये।

—:o:—

हमारी पृथ्वी की तरह ही अन्य पृथ्वियाँ

एक पृथ्वी तो वह है जिसे हम तुम देखते हैं। पर "सूर्य मंडल" में हमारी पृथ्वी की ही भाँति ग्रह हैं। नौ ये हैं प्लेटो, नैपच्यून, यूरेनस, सेटर्न, जुपिटर, मार्स हमारी पृथ्वी, वीनस और मर्करी। परन्तु अभी तक जीवित प्राणी इस पृथ्वी पर ही हैं। जिन्हें हम अपनी आंखों से देखते हैं। ज्योतिषियों ने अनुमान किया है कि मंगल ग्रह पर भी जीवित पदार्थ हैं। उनका कहना है कि वहां पर भी कुछ पौधे दिखाई देते हैं। जिन्हें आवश्यकतानुसार अनुकूल ऋतुएं भी प्राप्त हो जाती हैं।

कई ज्योतिषी ऐसा अनुमान करते हैं कि जिस तरह सूर्यमंडल अपने साथ ग्रहों का एक छोटा सा परिवार लिए रहता है, सम्भवतः अन्य सितारे भी अपने साथ ऐसे ही परिवार रखते होंगे क्योंकि सूर्य भी तो एक सितारा ही है। पर वे अभी इसे प्रमाणित नहीं कर सके हैं। संभवतः संसार में सबसे बड़ी दूरबीन भी उन सितारों को देखने में असमर्थ है।

* * * *

आसमान नीला क्यों दिखाई देता है ?

नीले रंग का प्रकाश ही इसका रहस्य है। यह नीला रंग कहां से आया ? वास्तव में यह रंग वर्णपट्टक्रम (spectrum) में से एक है। यदि हम इन सातों रंगों को एक साथ मिला दें तो ये मिलकर चमकते हुए सफेद रंग में बदल जाएंगे। सूर्य का प्रकाश भी वर्णपट्टक्रम के इन्हीं सात रंगों का प्रकाश है। ये सात रंग बैगनी, आसमानी नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल हैं। प्रकाश (Light) की प्रकृति तरंगों की भांति है, इसी कारण इनके प्रत्येक रंग का तरंग दैर्ध्य (wave length) अलग अलग होती है। इनमें से नीले रंग के प्रकाश का तरंग दैर्ध्य लाल, नारंगी इत्यादि रंगों की दूरी से कम है। जब सूर्य पृथ्वी के लिए वायुमंडल पर उदय होता है तब प्रतियोगियों की भांति ये रंग भागते हैं और इस दौड़ में बेचारा नीला रंग ही पीछे रह जाने के कारण वायुमंडल में धूल के छोटे छोटे टुकड़ों से टकरा कर वहीं छिटक कर फैल जाता है। और सभी रंग तो वह मैदान पार कर बाहर निकल आते हैं पर नीला रंग ऊपर ही रह जाने के कारण हमें दिखाई भी नहीं देता। यही कारण है कि आसमान हमें सदा नीला दिखाई देता है। इन्द्रधनुष में हमें वर्णपट्टक्रम के यही सात रंग दिखाई देते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त होते समय हमें आकाश कभी कभी रंग बिरंगा दिखाई देता है। ऐसा क्यों ? सुबह सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी के वायुमंडल में अधिक रास्ता तय करना पड़ता है। इस कारण रंगों में प्रतियोगिता के फलस्वरूप लाल, पीले, हल्के गुलाबी इत्यादि रंग दिखाई देते हैं। यही स्थिति शाम को भी रहती है। पर दिन में सूर्य की रंग बिरंगी किरणें एक साथ मिल कर सीधी पृथ्वी पर पड़ती हैं फिर वायुमंडल का रास्ता भी कम हो जाता है इसलिए दिन में सूर्य तेज होकर चमकने लगता है।

इन्द्र धनुष कैसे बनता है ?

हमेशा वर्षा के बाद भी जब आसमान में पानी की छोटी छोटी बूँदे रह जाती है तभी इन्द्र धनुष हमें दिखाई देता है। इसको देखने वाले का मुँह सूर्य की

विपरीत दिशा में होता है। जैसा कि हम जानते हैं सूर्य की सफेद रोशनी सात रंगों से मिल कर बनी होती है, और जब यही रोशनी पानी की छोटी छोटी बूंदों पर पड़ती हैं तब यह रंग विभिन्न अंशों पर आवर्तित होकर इस प्रकार झुक जाते हैं कि ये किरणें पानी की बूंदों के पीछे पहुँच कर शीशे की परछाईं की तरह हमारी आंखों को वापस आ जाती हैं। बूंदों से आगे पहुँचने पर ये किरणें इतना अधिक झुक जाती हैं कि बिलकुल अलग अलग दिखाई देने लगती हैं। इस प्रकार ये सातों रंग हमारे इन्द्र धनुष के आकार के बन जाते हैं।

यह ध्यान रहे कि वर्णपट्टक्रम के ये सात रंग वह रंग नहीं है जो एक चित्रकार अपने चित्र के लिये प्रयोग करता है।

* * *

समुद्र कितना गहरा है?

जिस प्रकार जमीन की ऊंचाई कहीं कुछ और कहीं कुछ होती है। इसी तरह समुद्र की गहराई भी हर जगह एक जैसी नहीं होती। समुद्रकी सतह धीरे धीरे ढालू होती जाती है और यह लगभग ६ मील से भी अधिक गहरी हो जाती है। यह तथ्य समुद्र के कई स्थानों पर अनेक वर्षों की खोज के नतीजे से पता चला। और इस प्रकार हिन्द महासागर, प्रशान्त और अन्ध महासागर से ली गई विभिन्न गहराइयों का एक नक्शा बनाया गया।

लोगों की समुद्र की गहराई नापने की रुचि तब और भी बढ़ गई जब यह पता लगा लिया गया कि पानी के अन्दर तारों द्वारा समाचार भेजा जा सकता है। और तब से अनेक दल गहराई को नापने के लिये निकल पड़े। १९०६ में अमेरिकन जहाज नीरो द्वारा नापी गई दूरी लेड्रोन्स में प्रशान्त सागर के उत्तर में गुआमा द्वीप के समीप अधिकतम गहराई ५,२६९ फैदम (६ मील से ६६ फुट कम) नापी गई थी। १९१२ तक यही सबसे अधिक गहराई थी परन्तु १९१२ में एक अमेरिकन जहाज ने फिलिपीन के दक्षिण द्वीपों में से मिन्डेनों द्वीप के ४० मील उत्तर पूर्व में सबसे अधिक गहराई लगभग ६ मील के नापी! १९२४ में एक जापानी जहाज 'मन्चू' ने जापान से ५० मील नीचे की ओर इससे अधिक गहराई का पता लगाया था—यह दूरी ३२,६४४ फीट थी जबकि तार नीचे की सतह को नहीं छू पाया था। १९५१ में एक अंग्रेजी जहाज एच. एम. एस. चैलेन्जर ने मैरिना में सब से अधिक गहराई ३५,६४० फीट नापी थी।

एटलान्टिक महासागर में सबसे अधिक गहराई वेस्टइन्डीज के उत्तर में नार्स में ४,५६२ फैदम नापी गई थी और हिन्द महासागर में सबसे अधिक गहराई ईस्टइन्डीज के दक्षिण में व्हार्टन नाम के स्थान पर ३,८२८ फैदम नापी गई है। आमतौर से समुद्र की गहराई १००००से १५,००० फीट हैं। सोवियत वैज्ञानिकों ने अभी हाल ही में प्रशान्त महासागर की गहराई को विभिन्न स्थानों पर नापा है। पता लगा है कि टोंगा डिप्रेशन में समुद्र की गहराई ५८८३ फैदम और मेरिआम डिप्रेशन की गहराई लगभग ५९५९ फैदम है। एक आश्चर्य जनक बात यह है कि समुद्र की सबसे अधिक गहराई लगभग पृथ्वी पर सबसे ऊँचे पहाड़ के बराबर है और सबसे ऊँचे पहाड़ से सबसे अधिक गहरे समुद्र तक के लिये हमको १२ मील का रास्ता तय करना पड़ेगा।

अब यह गहराई कैसे पता लगाई जाय? सबसे आसान तारीका तो यह है कि एक रस्से के एक सिरे पर कोई भारी चीज बाँध कर पानी में छोड़ दी जाय और जब वह नीचे की सतह को छूले तब हम निशान लगी हुई रस्सी से गहराई का पता लगा सकते हैं। परन्तु यह तरीका कम गहरे समुद्र में ही सफल हो सकता है। १९२० तक सबसे अच्छे और सही तरीके का रस्सी की भाँति ही एक लोहे के तार में भारी वस्तु बाँध कर प्रयोग किया जाता था। परन्तु यह दोनों ही तरीके बिलकुल सही नहीं हैं क्योंकि रस्सी या तार दोनों समुद्र की तेज धार में बजाय नीचे सीधे सतह की ओर जाने के इधर उधर चले जाते हैं और इस प्रकार गहराई का बिलकुल ठीक पता नहीं चल पाता।

गहराई नापने का सही तरीका जानने से पहले हमें यह जान लेना चाहिये कि यदि एक मोटरकार एक घंटे

में २५ मील जाती है और हमें निश्चित स्थान पर पहुंच कर वापस लौटने में चार घंटे लगते हैं, तो हम यह कह सकते हैं कि मोटर ने चार घंटे में १०० मील का रास्ता तय किया। और इस प्रकार हमारा निश्चित स्थान ५० मील लम्बा है।

ठीक इसी तरह हम समुद्र की गहराई भी नापते हैं। इसके लिए हम एक विद्युत यन्त्र पानी के अन्दर डालते हैं जो पानी की सतह को छूते ही वापस 'आवाज' ऊपर की ओर भेजता है। आवाज को जितना समय ऊपर आने में लगा उसे हम लिख लेते हैं। अब क्योंकि हमें यह मालूम रहता है कि एक मिनट में आवाज पानी के अन्दर कितनी दूर जाती है। हम यह पता लगा लेते हैं कि इतनी देर में इस आवाज ने कितना रास्ता तय किया-और इसका आधा ही समुद्र की गहराई होती है।

ज्वार भाटे का प्रयोग

बहुत दिनों से समुद्र से नित्य उठने वाले ज्वार भाटे का प्रयोग मनुष्य शक्ति संचय के लिये करने का प्रयत्न कर रहा है। यह ऐसी जगह ही संभव है जहाँ समुद्र की कम से कम और अधिक से अधिक गहराइयों के बीच बहुत अधिक अन्तर है। इग्लैंड के दक्षिण पश्चिम की ओर का समुद्र, फ्राँस का उत्तरी पश्चिमी किनारा, जर्मनी का उत्तरी किनारा और अमरीका के पूर्वी किनारे का समुद्र ऐसा ही है।

इंग्लैंड में सेवर्न नदी के मुहाने पर बसन्त काल के ज्वार भाटे में जब कि सूर्य और चन्द्र दोनों एक ही दिशा में भागते हैं तब समुद्र की लहरों के उतार चढ़ाव का अन्तर ४२ फीट रहता है और सबसे कम २१ फीट। इसी जगह सबसे पहले ज्वार भाटे को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया और सेवर्न नदी के मुहाने पर एक बड़ा भारी पानी रोकने का बाँध बनाया गया। इसमें जहाजों के आने जाने के लिये बड़े बड़े फाटकों सहित एक नहर छोड़ दी गई। यह फाटक पानी के बढ़ने पर पानी को अन्दर आने देंगे और पानी के घट जाने पर अपने आप बन्द हो जायेंगे ताकि पानी बाँध के ऊपर इकट्ठा होता रहे। अधिक शक्ति की जरूरत होने पर यह पानी पम्पों द्वारा और अधिक ऊँचाई पर भेज दिया जायेगा, जहाँ ये एक प्रकार की मशीन हवागाड़ियों (Turbines) को चला देंगे। जब तक हमें इस अतिरिक्त शक्ति की जरूरत होगी यह मशीन काम करती रहेगी उसके बाद यह पानी और हल्की मशीनों को चलाने के लिए छोड़ दिया जायगा। इस प्रकार शक्ति संचय की विकट समस्या बड़ी आसानी से कम खर्च में हो जायेगी। ऐसा अनुमान किया जाता है इस प्रकार सेवर्न नदी के मुहाने पर ज्वार भाटे को नियन्त्रित करने से लगभग तीन या चार करोड़ टन कोयला और इसी मात्रा में लकड़ी की बचत होगी।

रौकलैंड 'माइन' में ५,००० अश्वशक्ति (Horse power) के बिजली घर हैं जिनका प्रयोग ज्वार भाटे के पानी को हवा बन्द करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार यह हवा इंजन में भाप की जगह प्रयोग की जाती है। नोवास्कोशिया और न्यूब्रन्सविक के बीच फंडी की खाड़ी में यह ज्वार भाटा ४० फीट की ऊँचाई तक उठता है। इन्जीनियरों का कहना है कि समुद्र के सकरे रास्ते में तीन मील लम्बी दीवाल बनाने पर नाइजेरिया से सौगुनी अधिक विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है।

विज्ञान वार्ता

विटर्न से पोटेशियम क्लोराइड

समुद्री पानी से नमक तैयार करते समय जो चिकना तरल पदार्थ रह जाता है उसे विटर्न कहते हैं। अब भावनगर की केन्द्रीय नमक अनुसंधानशाला ने इससे पोटेशियम क्लोराइड निकालने का सरल और सस्ता तरीका निकाला है।

देश में समुद्री जल से प्रतिवर्ष लगभग ३० लाख टन नमक तैयार किया जाता है। नमक बनाने के बाद जो विटर्न फेंक दिया जाता है, उससे लगभग ८०-८५ हजार टन पोटेशियम क्लोराइड तैयार किया जा सकता है। यह पोटेशियम क्लोराइड खेतों में खाद के काम आता है।

विटर्न से पोटेशियम क्लोराइड तैयार करने का ढंग मोटे तौर पर यह है। विटर्न को निश्चित तापमान पर धूप में सुखाया जाता है और उसमें चूना सानकर मिला दिया जाता है ताकि उसमें से मेगनेशियम सल्फेट निकाला जा सके। इसके बाद उसमें पोटेशियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड और कैल्सियम क्लोराइड शेष रह जाते हैं। इसे और सुखाया जाता है, जिससे सोडियम क्लोराइड और कैल्सियम क्लोराइड के रवे बन जाते हैं। इसके बाद पोटेशियम क्लोराइड को उन कणों से अलग कर दिया जाता है।

औजार पैक करने के लिए प्लास्टिपील

छोटे औजार, मशीन के पुर्जे और अन्य यन्त्र रखने वालों तथा पैक करने और भेजने वालों के सामने एक कठिनाई यह रही है कि औजारों, पुर्जों आदि को किस तरह रखा जाय जिससे वे आपस की रगड़, जंग आदि से बचे रहें।

दिल्ली के श्रीराम इन्स्टीट्यूट फार इंडस्ट्रियल रिसर्च ने उनकी यह कठिनाई दूर करने का तरीका निकाल लिया है। उसने देशी सामान से ही एक पदार्थ प्लास्टिपील तैयार किया है, जिसकी परत चढ़ाने के बाद औजारों, पुर्जों आदि पर जंग नहीं लगता और अधिक नमी का भी असर नहीं पड़ता। प्लास्टिपील छोटे और नाजुक औजारों, यंत्रों आदि को पैक करने और भेजने में सहायक सिद्ध होगा। यह चीनी मिट्टी और कांच के बर्तन पैक करने में भी काम आ सकता है।

विदेशों में औजारों आदि को पैक करने, भेजने तथा रखने के लिये अनेक प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं। देश में इनका निर्माण बहुत कम होता है और यह विदेशों से ही मंगाया जाता है। श्रीराम अनुसंधानशाला की इस खोज से अब यह देश में ही बनने लगेगा।

मिलावटी घी की पहचान

गृहिणी अब इसका आसानी से पता लगा सकती है कि उसके घर में जो घी जाता है, वह शुद्ध है या उसमें वनस्पति आदि मिला हुआ है।

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य शिल्प-विज्ञान अनुसंधानशाला एक छोटी सी डिबिया देती है जिसकी मदद से यह पता लगाया जा सकता है। यह डिबिया बहुत सस्ती है और पता लगाने का ढंग भी बहुत सरल है।

इस डिबिया में ये उपकरण होते हैं। चिन्ह लगा हुआ एक टेस्ट ट्यूब, सील किया हुआ एक कैपसूल जिसमें थोड़ा सा तेजाब होता है, कुछ रसायनों की सील लगी हुई एक शीशी और एक कटर। इन उपकरणों की मदद से बहुत आसानी से घी में मिलावट का पता लगाया जा सकता है।

डिबिया की एक विशेषता यह है कि इसका दाम केवल ८ नए पैसे है। दूसरी बार जांच करने के लिए केवल ३ नए पैसे का और सामान खरीदना पड़ता है।

हिसाब-किताब करने वाली क्रान्तिकारी विद्युदणु मशीन

मानव मस्तिष्क की उन्नत क्रियाओं को कुशल ढंग से सम्पन्न करने वाली विद्युदणु मशीन स्वचालित रूप से अनुवाद कर सकने वाली मशीन की पूर्ववर्त्ती कही जा सकती है। उक्त क्रान्तिकारी मशीन में आई बी-एम० ७०४ हिसाब किताब करने वाली मशीन प्रयुक्त की गई है। कृत्रिम भू-उपग्रह के पथ की भविष्यवाणी करने में भी यही यन्त्र इस्तेमाल किया जाता है। इस यन्त्र को "पर्सेप्ट्रोन नाम दिया गया है। बिना किसी प्रकार के प्रशिक्षण या नियन्त्रण के यह समीपवर्ती स्थिति को अनुभव करने, समझने और उसे पहचानने की क्षमता रखती है। इस दिशा में किया गया यह प्रथम प्रयास है।

बताया गया है कि विशेष रूप से मानसिक क्रियाओं को व्यक्त करने वाली मशीन को तैयार करने में अभी एक वर्ष लगेगा। अमेरिका की सुप्रसिद्ध कम्पनी आई० बी-एम० ने हिसाब-किताब जोड़ने वाली जो मशीन तैयार की है, उस से "दिखाई गई" वस्तु को "समझने" की स्फूर्ति इस नई मशीन को प्राप्त होने के अतिरिक्त ऐसी वस्तु को "स्वयं पहचानने" तथा बाद में उसके सम्बन्ध में बताने की प्रेरणा भी इस मशीन को प्राप्त हुई है, जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा हो।

डा० रोजेनब्लैट द्वारा विकसित की गई "पर्सेप्ट्रोन" मशीन तीन पद्धतयों के अन्तर्गत काम करता है। (१) देखने का काम करने वाली व्यवस्था, जो मानवीय आँखों के समान कार्य करती है। (२) सम्पर्क व्यवस्था, जो देखी हुई वस्तुओं को समझने और उनकी व्याख्या करने का कार्य करती है। (३) नियन्त्रण और प्रदर्शन व्यवस्था, जो सीखने के ढंग का प्रदर्शन करती है।

देखने का काम करने वाली व्यवस्था टैलिविजन कैमरे से मिलते-जुलते यन्त्र द्वारा वस्तु का चित्र प्राप्त करती है। आंख का मूर्तिपट जिस प्रकार कार्य करता है, उसी प्रकार का कार्य चित्र उतारने वाले "सैलों" से लिया जाता है। ये सैल प्रकाश को विद्युत् संकेतों में परिवर्त्तित कर देते हैं। तार द्वारा ये संकेत सम्पर्क व्यवस्था तक पहुँचाए जाते हैं।

मनुष्य के समान ही इस यन्त्र के अधिक उम्र होने तथा अनुभव प्राप्त कर लेने पर अधिक बुद्धिमान होने की आशा की जाती है।

नौसेना की ओर से यह बताया गया है। "छपे और लिखे हुए अक्षरों को पढ़ लेना तथा साथ ही मौलिक आज्ञाओं के अनुसार कार्य कर लेना इस यन्त्र की क्षमताओं में सम्मिलित है। लोहे का यह आदमी अन्ततोगत्वा हवाई जहाजों के भूमि पर उतारने तथा पुस्तकों में छिपे वैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार के आंकड़े खोजने के लिए उपयोग में लाया जावेगा।

नौसेना का इस से बढ़ कर यह भी दावा है कि इस यान्त्रिक मनुष्य से अनुवादक का कार्य भी लिया जा सकता है। एक भाषा में कही गई बात को यह दूसरी भाषा में लिखित या मौखिक रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

इनके अतिरिक्त इससे जो अन्य कार्य लिए जा सकते हैं, उन में मनुष्यों के चेहरों और बोलियों की पहचान जैसी पेचीदा बातें भी सम्मिलित हैं।

इससे पूर्व बनाई गई हिसाब-किताब जोड़ने वाली मशीनों के समान इस में याद रखने की भी शक्ति है। किन्तु इस कार्य के लिए कार्डों की व्यवस्था नहीं की जाती। यह अधिकांश रूप में मानवीय मस्तिष्क के समान कार्य करता है तथा अपने स्नायुमण्डल द्वारा किसी भी बात अथवा वस्तु पर प्रत्यक्ष दृष्टि डालता है। यह अन्य हिसाब-किताब लगाने वाली मशीनों के समान पहले से प्राप्त की गई संकेत-विधि पर निर्भर नहीं करता।

—:०:—

वैज्ञानिक साहित्य

सम्पादकीय

हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य का सूत्रपात लगभग १०० वर्ष पूर्व हुआ। इसके पूर्व भी कुछ गिनी चुनी पुस्तकें विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर उपलब्ध थी। प्रारम्भ में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण में ईसाइयों का विशेष सहयोग मिला। फिर कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से इस क्षेत्र में उतरे। इनमें पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र और लाला सीताराम प्रमुख हैं।

हिन्दी माध्यम से वैज्ञानिक शिक्षा का प्रारम्भ गुरुकुल कांगड़ी में हुआ। यहाँ रसायन, भौतिक शास्त्र आदि की पुस्तकें तैयार कराई गई। किन्तु इस दिशा में ठोस काम सन् १९१३ से विज्ञान परिषद् द्वारा प्रारम्भ किया गया। विज्ञान परिषद् इस क्षेत्र में सदैव अग्रणी रही है। परिषद् ने केवल उन्हीं पुस्तकों को प्रकाशित किया जिन्हें अन्य प्रकाशक छापने में असमर्थ थे। परिषद् ने १९१५ से एक मासिक पत्र विज्ञान का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। परिषद् के अतिरिक्त अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें प्रारम्भ में या तो विज्ञान के लेखकों द्वारा या विज्ञान में प्रकाशित लेखों की सामग्री के आधार पर लिखा गई।

देश की अन्य साहित्यिक संस्थाओं से नागरी प्रचारिणी सभा काशी, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति इंदौर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, पंजाब आयुर्वेदिक फारमेसी अमृतसर, आदि ने भी हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में योगदान दिया। फलस्वरूप उच्च स्तर की वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का मार्ग खुल गया।

इस सौ वर्ष की अवधि में वैज्ञानिक साहित्य की दृष्टि से हिन्दी बड़ी समृद्ध हो गई है। भारत सरकार द्वारा वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण से अब हिन्दी में लिखने में और भी सुविधा हो गई है। हिन्दी में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की पुस्तकों और सहायक पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त भेषज्य, उद्योग, यन्त्र विज्ञान, जंगल, खेती, मत्स्यपालन, जल विद्युत, रेलवे, पुल आदि विषयों पर कोई भी अच्छी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। वैज्ञानिक विश्वकोष और अनुसंधान पत्रिकाओं का भी अभाव है। इस प्रकार के साहित्य की कमी का कारण स्पष्ट है। ये पुस्तकें लाभ की दृष्टि से प्रकाशित नहीं की जा सकतीं। इस प्रकार का प्रकाशन या तो विज्ञान परिषद् जैसी संस्थायें जो निस्वार्थ भाव से कार्य करती है ले सकती है और या फिर सरकार ही। विज्ञान परिषद के उत्साही कार्यकर्ताओं के सहयोग से परिषद् प्रति वर्ष कुछ मौलिक कार्य कर वैज्ञानिक साहित्य के भंडार की वृद्धि करती रही है। हिन्दी में भारत को पहली अनुसंधान पत्रिका प्रकाशित करने का श्रेय भी विज्ञान परिषद् को है। इस पत्रिका में हिन्दी में मौलिक अनुसंधान लेख और अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में इन लेखों के सारांश प्रकाशित होते हैं। पत्रिका अभी त्रैमासिक है।

भारत सरकार और प्रांतीय सरकार ने भी नवीन पुस्तकों के प्रकाशन तथा अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित करने की व्यवस्था की है। परिषद् के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता सरकार की सहायता कर रहे हैं। इस राष्ट्र कार्य में देश की सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी प्रेमी उत्साह पूर्वक सहयोग की भावना से कार्य करें और उच्चकोटि के वैज्ञानिक साहित्य का सृजन कर के उन थोड़े से लोगों का भी मुँह बन्द कर दें जो समझते हैं कि अंगरेजी को छोड़ कर हिन्दी माध्यम से भारत में वैज्ञानिक प्रगति सम्भव नहीं है।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग
विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन
म्योर कालेज, थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड सं० ए

नवम्बर १९५८

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक— डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद ।

मुद्रक- श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रस, ६३ चक, इलाहाबाद—३ ।

भाग८८ संख्या ३

दिसम्बर १९५८, धनु २०१५ वि० मार्ग शीर्ष १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [इस अङ्क का मूल्य ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

कृषि एवं तत्सम्बन्धी अन्य साधनों का विकास

उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार ने जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के हर सम्भव उपाय किये हैं, और कर रही है। कृषि की उन्नति के लिये किये जा रहे प्रयासों का विशेष महत्व है। प्रथम योजनावधि में ६ लाख ८३ हजार टन अतिरिक्त खाद्यान्न का उत्पादन करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। सन् १६५४-५५ में ही वार्षिक उत्पादन १ करोड़ २४ लाख ५० हजार टन हो गया। यह लक्ष्य से ६ लाख ८० हजार टन अधिक था। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में २४ लाख टन अन्न प्रतिवर्ष अधिक पैदा किया जायगा। विभिन्न साधनों द्वारा यह निर्दिष्ट वृद्धि किस अंश तक पूरी की जायगी इसका अनुमान निम्नलिखित तालिकाओं से हो जाता है।

साधन	अन्नोत्पादन में वृद्धि
बड़ी सिंचाई योजनाएँ	२ लाख ४ हजार टन
छोटी सिंचाई योजनाएँ	३ लाख ८२ हजार टन
उन्नत बीज	५ लाख २६ हजार टन
उन्नत खाद एवं उर्वरक	७ लाख ५६ हजार टन
समुन्नत कृषि विधि	४ लाख ५५ हजार टन
भूमि उपार्जन एवं विकास	७७ हजार टन

सुनिश्चित लक्ष्य तक पहुँचने में सिंचन सुविधाओं के प्रसार तथा पशुधन विकास से भी सहायता मिलेगी। नीचे दिये जा रहे आँकड़ों से तत्सम्बन्धी कार्य-क्रमों एवं उन पर खर्च की जाने वाली धनराशि का ज्ञान हो जाता है।

सिंचाई कार्य-क्रम

	लागत (लाख रुपयों में)
१—प्रथम योजना के १८ कार्य जो द्वितीय योजना में भी चलेंगे।	३२०.००
(क) १५ कार्यक्रम प्रथम योजना के	३०४.३८
(ख) योजना के बाहर के ३ कार्यक्रम	१५.६२
२—१२ नये कार्यक्रम	२२,६०.००
योग	२,५८०.००

पशुपालन सम्बन्धी कार्यक्रम

	लागत (लाख रुपयों में)
१—पशुपालन अनुसंधान केन्द्र का विस्तार	८.८२
२—केन्द्र ग्राम योजना	१२६.५८
३—५० नये पशु चिकित्सालयों की स्थापना	२७.५०
४—राजकीय तथा निजी गोसदन की स्थापना	१६.७४
५—हर जिले में एक गो सदन की स्थापना	१५.००
६—भेड़ तथा ऊन विकास	२१.०८
७—मुर्गी तथा सुअर विकास	२६.६४
८—पशु अस्पतालों का प्रान्तीयकरण	१६.०८
६—पशु सुपरवाइजर प्रशिक्षण	६.८४
१०—राजकीय पशु कालेज मथुरा का विकास और विस्तार	२०.२०
११—दुग्ध शाला तथा दूध सप्लाई	१२१.६६
१२—अन्य योजनाएँ	१४६.३८
योग	५५०.५५

सूचना विभाग उत्तर प्रदेश

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवान्तविज्ञ नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८८	धनु २०१५ विक्र० मार्ग शीर्ष १८८० शाकाब्द; दिसम्बर १९५८	संख्या ३

मनुष्य द्वारा अन्य लोकों की खोज

आज संसार के सभी देशों के लोगों की रुचि उन परीक्षणों पर केन्द्रित है, जो कृत्रिम उपग्रहों के सम्बन्ध में किए जा रहे हैं। परीक्षण-केन्द्रों में कार्य-संलग्न वैज्ञानिकों के समान, आज संसार के प्रायः सभी लोग आश्चर्य-चकित होकर एक नये युग के आरम्भ को बड़ी उत्सुकता से देख रहे हैं। अब मनुष्य ऐसे ज्ञान पर निर्भर नहीं रहेगा, जो अनुमानों और अपुष्ट खोजों पर आधारित हो। अब प्रकृति स्वयं अपने ऐसे विविध गुप्त रहस्यों का उद्घाटन कर रही है, जिनकी अभी तक कोई व्यवस्था प्रस्तुत करनी संभव नहीं थी।

मानव युक्त कृत्रिम उपग्रह द्वारा अन्तरिक्ष की खोज

अनेक प्रकार की कठिनाइयों एवं विषमताओं के बावजूद अन्तरिक्ष की जांच पड़ताल की दिशा में बराबर प्रगति जारी है। स्वचालित एवं रेडियो-नियंत्रित यानों के बजाय अब ऐसे यानों की बात सोची जाने लगी है, जिन में बैठ कर मनुष्य अन्तरिक्ष में विहार कर सकेंगे। पार्थिव यन्त्र तथा ट्रांसमिटर आदि उपकरण अन्तरिक्ष एवं अन्य लोकों की खोज की दृष्टि से केवल साधन मात्र हैं। अन्ततः मनुष्य को यान में सवार होकर अन्तरिक्ष में जाना पड़ेगा। यद्यपि अन्तरिक्ष की जांच-पड़ताल के आरम्भिक कार्य में यन्त्रों ने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया हैं, फिर भी उनकी क्षमताओं का उतना विस्तार सम्भव नहीं जितना कि अन्तरिक्ष में उड़ने वाले मानवयुक्त यान से सम्भव है।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान सम्बन्धी एक प्रमुख विशेषज्ञ, डा० वाल्टर आर० डोर्नबर्गर, जिनका अन्तरिक्ष सम्बन्धी कार्य-क्रमों से निकट सम्पर्क रहा है और जिन्होंने लक्ष्यवेधी प्रक्षेपणास्त्रों के विकास में सफलता प्राप्त की है, कहते हैं:—'मैं एक मानवयुक्त कृत्रिम उपग्रह के अत्यधिक पक्ष में हूँ। मैं सोचता हूँ कि स्वचालित कृत्रिम उपग्रह का विचार उचित नहीं, क्योंकि आप इसे किसी पूर्व निश्चित स्थान पर उतार नहीं सकते। यदि आप इसमें किसी ऐसे मनुष्य को भेजते हैं, जो अपने विवेक से कार्य कर सकता और उन आंकड़ों से निष्कर्ष निकाल सकता है जो हम उसे भेजते हैं, तो वह वापस लौट सकता और पूर्व निश्चित अड्डे पर कृत्रिम उपग्रह को उतार सकता है। जटिल यन्त्रों से सज्जित स्वचालित कृत्रिम उपग्रह से अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। यन्त्र सोच नहीं सकते। यदि आप अन्तरिक्ष में यान चलाना चाहते हैं,

तो उसमें आपको ऐसा प्राणी भेजना होगा जो सोच सकता हो, कार्य कर सकता हो और निर्णय भी कर सकता हो।

क्या मनुष्य अन्तरिक्ष में जीवित रह सकता है ?

अब इससे एक अत्यावश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है। क्या मनुष्य अन्तरिक्ष में जीवित रह सकता है ?

मानव तथा अन्तरिक्ष का संयोग एक ही विरोधाभास है। जैसे गहरे समुद्र में रहने वाली मछली वायु में जीवित नहीं रह सकती, ठीक उसी प्रकार मानव अन्तरिक्ष में जीवित नहीं रह सकता। अन्तरिक्ष में सर्वत्र शून्यता विद्यमान है। उसमें किसी भी जीवित प्राणी के रह सकने की संभावना नहीं है। अन्तरिक्ष गामी यान में यात्रा करने वाले यात्रियों के लिए अन्तरिक्ष सम्बन्धी जीवन-विज्ञान का विकास किया जा रहा है, जिनमें यात्री जीवित रह सकेंगे।

अंतरिक्ष सम्बंधी जीवन में प्रगति

अन्तरिक्ष सम्बन्धी जीवन के क्षेत्र में अब तक कितनी प्रगति हो सकी है ?

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि हम एकाएक अन्तरिक्ष में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। पृथ्वी से १२ मील ऊपर का वायुमण्डल अन्तरिक्ष जैसा होना प्रारम्भ हो जाता है। १२० मील की ऊंचाई पर यह वायुमण्डल पूर्ण अन्तरिक्ष का रूप धारण कर लेता है। १२ मील के ऊपर जाकर वायुमण्डल संरक्षण प्रायः समाप्त हो जाता है। इस संरक्षण के अभाव में मनुष्य का शरीर तेजी से भाप्प बन कर उड़ जायेगा।

इस प्रकार की ऊंचाईयों पर मनुष्य को भीषण कष्टों का सामना करना पड़ेगा। ब्रह्माण्ड धूल में उड़ने वाले यान से टकरायेगी तब ल्यूकेमिया और कैन्सर जैसे रोग शुरू हो जायेंगे। ऊपर अन्तरिक्ष में दिन अथवा रात्रि नहीं होते। वहां का तापमान अत्यधिक तेजी से बढ़ता-घटता रहता है। मनुष्य अपना होश खो देता है। अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए भोजन, पेय पदार्थ तथा जीवन के लिए आवश्यक अन्य वस्तुएं उपलब्ध करने का प्रश्न भी है। इसके अलावा अजीब एवं भयानक एकान्तता के कारण अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याए भी खड़ी हो जायेगी।

इस समय तक मनुष्य अधिक से अधिक १ लाख २० हजार फुट अर्थात् २० मील की ऊंचाई तक उड़ने में सफल हुआ है। गत अगस्त में अमेरिकी वायुसेना के मेजर डेविड साइमन्स ने गुब्बारे में बैठकर अधिकतम ऊंचाई पर उड़ने का नया रिकार्ड स्थापित किया था। वह दूरी पृथ्वी के वायुमण्डल से लगभग ९९ प्रतिशत बाहर थी। इस प्रसंग में यह समझ लेना आवश्यक है कि वायुमण्डल और गुरुत्वाकर्षण शक्ति की सीमा में क्या अन्तर है। पृथ्वी के जिस वायुमण्डल में मानव जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सिजन तथा अन्य गैसें मौजूद हैं, यह समुद्र-तल से लगभग १२ मील ऊपर तक है। दूसरी ओर पृथ्वी गुरुत्वाकर्षण शक्ति की परिधि १० लाख मील से भी अधिक दूरी तक चली गई है। वायुमण्डल की सीमा के परे के क्षेत्र को 'अतिरिक्त वायुमण्डलीय' अन्तरिक्ष, 'निकट' अन्तरिक्ष, 'बाह्य' अन्तरिक्ष, 'दूर' अन्तरिक्ष तथा 'ब्रह्माण्ड क्षेत्र' आदि नामों से पुकारा जाता है। वास्तव में इसका कोई अर्थ नहीं है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की सीमा, अन्य नक्षत्रों की इसी प्रकार की शक्ति के समान, अनन्त दूरी तक फैली हुई है। अन्तरिक्ष के मानचित्रों में विभिन्न नक्षत्रों की सीमा-रेखाएँ निर्धारित की जा सकती हैं।

ब्रह्माण्ड किरणें और क्षति

पृथ्वी के वायुमण्डल से ९९ प्रतिशत बाहर मेजर डेविड ने बिना किसी प्रकार के संरक्षण के लगभग ३० घंटे तक अन्तरिक्ष जैसी ब्रह्माण्ड किरणों का सामना किया। अभी उनकी चिकित्सा सम्बन्धी जांच-पड़ताल की जा रही है। किन्तु इस समय तक क्षति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं पड़ा है। इस तथ्य के प्रकाश में अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ है कि ब्रह्माण्ड किरणों से मनुष्य के शरीर को क्या हानियां पहुँच सकती है। यह सुझाव दिया गया है कि बड़े ब्रह्माण्ड कणों से बचाव के लिए अलमोनियम की चादरें धारण करनी

चाहिए। किन्तु उन चादरों से टकराने वाले कणों से जो माध्यमिक ब्रह्माण्ड किरणें उत्पन्न होंगी, वे और भी अधिक होंगी। इस बात का अभी तक निश्चय नहीं हुआ है कि इन दोनों में से कौन सी किरणें अधिक खतरनाक सिद्ध होंगी। अन्तरिक्ष की यात्रा के इस पहलू के सम्बन्ध में किये जा रहे अनुसन्धानों में इतनी तेजी से प्रगति हो रही है कि इस विषय में उपलब्ध आँकड़ों को बिल्कुल ठीक कहना सम्भव नहीं है। हो सकता है कि कुछ समय बाद कोई नई बात पता लग जाये।

तापमान और भारहीनता की समस्याएं

अत्यधिक तापमान से संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से वैज्ञानिक लोग अन्तरिक्षगामी यान पर किसी ऐसे पार्थिव पदार्थ का लेप चढ़ाना चाहते हैं, जो अत्यधिक अर्थात् २६,००० फारेनहाइट तक तापमान सहन कर सके। वह पार्थिव पदार्थ छिद्र युक्त होता है। सूक्ष्म छिद्रों में प्रवाहित विशेष प्रकार का तरल पदार्थ यान को शीतल रखेगा। जिस समय तापमान गिर जायेगा, तब वायुयान को गरम करने के लिए सूर्य की शक्ति के द्वारा कृत्रिम उष्णता पैदा करने की बात सोची गई है। यह शक्ति अत्यधिक तापमान की अवधि में संचित कर ली जायेगी।

जैसा पहले कहा जा चुका है, अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले व्यक्तियों की एक प्रमुख समस्या अन्तरिक्ष की शून्यता द्वारा उत्पन्न भारहीनता की होगी। यद्यपि नक्षत्रों की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का क्षेत्र लाखों मीलों तक फैला हुआ है, फिर भी प्रबल गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र का महत्व अन्तरिक्ष उड्डयन-विशेषज्ञों की दृष्टि से अत्यधिक है। १२० मील से ऊपर गुरुत्वाकर्षण की शक्ति इतनी कम हो जाती है कि मनुष्य तथा यन्त्र वस्तुतः भारहीन हो जाते हैं। जब पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाले किसी कृत्रिम उपग्रह की केन्द्र से हटाने वाली शक्ति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का संतुलन कर देती है, उस समय भी भारहीनता की स्थिति हो जाती है।

भारहीनता के प्रभाव की जांच

इस भारहीनता की प्रतिक्रिया मनुष्य पर क्या होगी? जीवशास्त्री लोग यह पता लगाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि इसका रक्त-प्रवाह, पाचन-क्रिया, मानसिक क्रियाओं आदि पर क्या प्रभाव पड़ेगा। परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि भारहीनता से मनुष्य शारीरिक क्रियाओं को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुंचती है। अमेरिकी वायुसेना के रैण्डल्फ फील्ड, सेन एन्टोनिओ (टैक्सास) स्थित 'स्कूल ऑफ एविएशन मैडिसन' में इस सम्बन्ध में अध्ययन किया गया है। वहां एफ-६४ जैट फाइटर जैसे अत्यधिक तेज गति से उड़ने वाले जैट वायुयानों को उड़ा कर २००० से अधिक व्यक्तियों को भारहीन किया जा चुका है। 'पैराबोलिक आर्क' के सबसे ऊपरी तथा सबसे निचले सिरे पर लगभग ३० अथवा ४० सैकिण्डों में लिए भारहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पाया गया। ४० सैकिण्ड तक भारहीन रहने वाले एक वायु-यान-चालक ने बताया कि 'व्यक्तिगत रूप से मैं उस अनुभूति को पसन्द करता हूँ।' कुछ वैज्ञानिकों का यह भी विश्वास है कि भारहीनता को समाप्त करना भी सम्भव है। यदि अन्तरिक्ष में वायुयान चक्कर लगायेगा तो केन्द्र से विमुख करने वाली शक्ति यात्री को भार प्रदान कर देगी। ऐसी स्थिति में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक अथवा चिकित्सा की दृष्टि से भारहीनता की समस्या लुप्त हो जायेगी। इसके अलावा दूसरे वैज्ञानिकों का ख्याल है कि भारहीनता का इन्जिनियरिंग विषयक हल अनावश्यक है, क्योंकि अनुसन्धान द्वारा अन्तरिक्षगामी वायुयान के चालकों को हिलने-जुलने तथा जानकारी आदि की बिल्कुल नई विधियां मालूम हो जायेंगी। वायुयान में यात्रियों के बैठने के स्थान के साथ लगे हुए चुम्बकों से भी चालक को अपनी इच्छानुसार अपनी स्थिति बनाये रखने में सहायता मिल सकेगी।

अन्तरिक्ष में खान पान की समस्याएं

इसके बाद अन्तरिक्ष में विहार करने वाले व्यक्ति के सामने भोजन, पेय तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करने की समस्या आती है। भली प्रकार से बन्द किये अन्तरिक्षगामी विमान के भीतर उसका

अपना ही वातावरण होगा और उस में सभी वस्तुओं के फिर से नये होने की व्यवस्था रखी जायेगी। अन्तरिक्ष में उड़ने वाले यान में जो वायु रहेगी उसमें औक्सिजन और हीलियम होगी, नाइट्रोजन नहीं होगी। जीवन-विशेषज्ञ ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि उसे जो वस्तुएं उपलब्ध की जायें उन्हीं से उनका पुनर्जीवन होता रहे। उपयोग में लाई गई वायु को पुनः शुद्ध करके उपयोग में लाया जाता रहेगा। सामान्य तालाब में उगने वाली काई जैसी ५ पौण्ड एल्गा वनस्पति को मैले की जगह पर उगा कर एक यात्री के लिए पर्याप्त औक्सिजन उपलब्ध की जा सकती है। इस वनस्पति को साफ करने तथा सुखाने के बाद उससे पर्याप्त मात्रा में आहार की गोलियां भी बनाई जा सकती हैं। मूत्र को साफ करके तथा वायु में विद्यमान नमी से जल की व्यवस्था कायम रखी जायेगी। वैज्ञानिकों का कथन है कि अन्तरिक्ष-यात्रा को रास्ता बनाने की दृष्टि से शरीर से निकलने वाले मल-मूत्र आदि वस्तुओं को बार बार साफ करके उनको फिर उपयोग में लाना अपरिहार्य होगा।

अन्तरिक्ष यात्रा का परीक्षण

गत फरवरी में वैज्ञानिकों ने रैण्डल्फ फील्ड प्रयोगशाला में अन्तरिक्ष-यात्रा के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परीक्षण किया था। यह परीक्षण पृथ्वी से चन्द्रमा तक तथा चन्द्रमा से पृथ्वी तक की एक कल्पित उड़ान का था। लोहे के एक बड़े सन्दूक में हवाबाज डोनल्ड जी० फैरेल को बन्द कर दिया गया था। वह सन्दूक टैलिफोन करने की कोठरी के आकर का था और उसे फर्श पर जहां रखा गया था, वहां से एक इंच भी नहीं हिली। किन्तु 'अन्तरिक्ष की यात्रा' के निर्देशक डा० जार्ज स्टाइनकैम्प ने बताया कि परीक्षण के नियमों के अन्तर्गत फैरैल चन्द्रमा को जाने वाले वायुयान पर सवार था। वह हवाबाज पूरे सप्ताह अर्थात् १६८ घन्टे तक उस सन्दूक में बन्द रहा। उसमें वे परिस्थितियां उत्पन्न कर दी गई थीं जिनका अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले एक वास्तविक यात्री को सामना करना पड़ेगा। उसकी नाड़ी, हृदय तथा अन्य अंगों की गतिविधियों का निरन्तर अध्ययन किया गया। उसे संसार से पूर्णतः पृथक कर दिया गया था, किन्तु टैलिविजन पर उसकी सभी बातों को सावधानी के साथ देखा जाता था। तीन फुट चौड़ी और चार फुट लम्बी कोठरी में उसके लिए एक कड़ा दैनिक कार्यक्रम तैयार किया गया था। शयन के चार घन्टे, कार्य के चार घन्टे और खाने, आराम करने और मनोरंजन के लिए ६ घन्टे रखे गए थे। २४ घन्टों के बजाय १४ घन्टे का कार्यक्रम रखा गया था। पृथकता के इस लम्बे समय की उस पर जो मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया हुई उसे सावधानी के साथ देखा गया। परीक्षण की समाप्ति पर वह 'अन्तरिक्ष-यात्री' उस 'अन्तरिक्षगामी यान' से सही-सलामत बाहर निकल आया। वह उस कार्यक्रम के अनुसार बिलकुल पूरा उतरा था। इस पड़ताल से वैज्ञानिकों को अपने भावी अनुसन्धानों के लिए महत्त्वपूर्ण आंकड़े उपलब्ध हुए हैं।

होलोमैन स्थित एरोमैडिकल फील्ड लेबोरेटरी के अध्यक्ष कर्नल जौन स्टाप का कथन है कि 'मूल अनुसन्धान के सम्बन्ध में बहुत कुछ किया जा चुका है...अब इस पर अमल किये जाने का समय आ गया है।'

केले से मानसिक रोगों का उपचार किये जाने की संभावना

भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० जगदीशचन्द्र वसु ने वनस्पतियों में जीवन सिद्ध किया था, जिसके आधार पर अब अमेरिका के वनस्पतिशास्त्री और आगे अनुसन्धान-कार्य कर रहे हैं। केले में 'मानसिक' क्रियाओं के चिन्ह भी देखे गये हैं और इस भारतीय पौधे का उपयोग मानसिक रोगों के उपचार में किये जाने की संभावना बहुत बढ़ गई है।

प्रचीन काल से भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाला केला मानसिक रोगों के उपचार के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अमेरिका में अनुसन्धानकर्ता लोग मानसिक रोगों की औषधियों की जांच करने तथा उनके सम्बन्ध में अनुसंन्धान करने के कार्य में केले का अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं। इससे मनुष्य के मस्तिष्क की जटिल क्रियाओं का पता लगाने में जीवाणु-विशेषज्ञों की सहायता मिल रही है।

एक महान् भारतीय वैज्ञानिक ने ४० वर्ष पूर्व वनस्पतियों के जीवन के सम्बन्ध में अनुसन्धान करके इतिहास में नाम पैदा किया था। डा० जगदीशचन्द्र वसु ने तब यह सिद्ध कर दिया था कि पेड़-पौधे भी मनुष्यों के समान जीवित प्राणी हैं। उन्होंने स्वयं बनाये हुए अपने यन्त्रों की सहायता से अपने सिद्धान्तों को सिद्ध करके संसार को आश्चर्यचकित कर दिया था।

उनके कार्य के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक अनुसन्धान-कर्ताओं ने प्रमाणित कर दिया है कि केले का वृक्ष प्राणवान् वनस्पतियों का उन्नत रूप है और मनुष्य के शरीर के समान उसमें भी स्नायुओं के नियन्त्रण की व्यवस्था रहती है और सम्भवतः उसमें किसी न किसी रूप में 'मानसिक' क्रिया भी होती है। इस प्रकार केले का वृक्ष अनुसन्धान सम्बन्धी परीक्षणों के लिए बहुत उपयुक्त है।

केले मस्त होकर नाच उठे !

क्या कभी आपने सुना है कि केले लय-तान के अनुसार, झूम रहे हों, अपनी छाल उतार फेंकें और कुछ ही घंटों में नंगे हो जायें ?' यह प्रभाव उस समय देखने में आया जब औषधियों के सम्बन्ध में पौधों की प्रतिक्रिया जानने का प्रयत्न करने वाले वैज्ञानिकों ने उन औषधियों को पौधे के भीतर दाखिल किया, जिनका मनुष्य के शरीर पर प्रभाव पड़ता है।

मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाली 'रेसेरपाइन' जैसी औषधि को केले के पौधे में दाखिल कर देने के बाद पौधों में वैसी ही प्रतिक्रिया देखने में आई, जैसी कि उन औषधियों की मनुष्यों के शरीर में देखने में आती है।

'रेसेरपाइन' जो मानव शरीर की नस-नाड़ियों के उस भाग को स्फूर्ति प्रदान करती है जो रक्त धमनियों को फुलाता है, आंख की पुतलियों को सिकोड़ता है, हृदय की गति को मन्द करता है और ग्रथियों, पाचन सम्बंधी अंगों

तथा अंय इद्रियों की गति को बढ़ाता है, उसका प्रभाव पौधे पर वैसा ही पड़ा जैसा कि मनुष्य के शरीर पर पड़ता है। उससे केले की छालियों असाधारण रूप से फूल गई और कइयों के छिलके तक फट गये।

कुछ शान्तिकारक औषधियों को पौधों में दाखिल करने के बाद उन पर प्राकृतिक परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ५० मील प्रति घंटा की गति से चलने वाली आँधी का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। 'रिसेर-पाइन' के बार-बार टीके लगाने से पौधे पर समय का भी प्रभाव नहीं पड़ा और फलियां बढ़ने में भी विलम्ब हो गया।

बिना हवा के ही पत्ते खड़खड़ाने लगे।

'लिसर्जिक एसिड डाइएथिलामाइड' नामक एक अन्य औषधि ने पौधे में उत्तेजना उत्पन्न कर दी और उसके पत्ते वायु आदि किसी अन्य बाह्य कारण के बिना ही खड़खड़ाने लगे। इस औषधि को केले में दाखिल करने के बाद जब यन्त्र के द्वारा उसकी धड़कनें मालूम की गई तब वे बिल्कुल ऐसे पशुओं की धड़कनों के समान प्रतीत हुई जिन्हें उसी औषधि के टीके लगाये गये थे। इस औषधि को भारी मात्रा में पौधे में डालने पर उसकी असाधारण प्रतिक्रिया देखने में आई। वह पौधा तेज अंधड़ का बराबर मुकाबला करता रहा और तूफान के आगे झुका नहीं।

अफीम की प्रतिक्रिया

अफीम के टीके लगाने से पौधे पर जो प्रभाव हुये उससे इस बात की पुष्टि हो गई कि केले के पौधे में ऐसा स्नायुमंडल होता है जो मनुष्य के स्नायुमंडल से भिन्न नहीं होता है। केले की कलियाँ अक्सर एक गुच्छे में एक दूसरे के निकट पैदा होती है, किंतु अफीम के टीके लगाने के पश्चात् केले के पौधे की प्रतिक्रिया विचित्र हुई और फलियाँ एक दूसरे से इतनी दूर फैल गई कि पे गुच्छे से नीचे गिर पड़ीं।

इन तथा अन्य जानकारियों से यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्राचीन पौधे में 'सेरोटीन' और 'नोरेपाइन-फ्राइन' नामक मूल रस भारी मात्रा में मौजूद हैं जो प्राणी के मस्तिष्क में स्वतः प्रेरित और मानसिक क्रियाओं का नियमन करते हैं।

यदि केले में से इन मूल रसों को पृथक् कर लिया गया तो उसे आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में संभवतः सबसे बड़ी सफलता समझा जायेगा।

मानसिक रोगों के उपचार का यत्न

यदि केले के पौधे में मनुष्यों के समान ज्ञानवाही तन्तु हैं तो इस पर टीके लगाये जाने से जो प्रभाव पड़ता है वैसा ही प्रभाव मनुष्यों पर भी पड़ेगा। इस मूल सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा सम्बंधी अनुसंधानकर्ता मानसिक तथा मनुष्य की ज्ञानवाहिनी नाड़ियों या चेता-संहति से सम्बंध रखने वाले अन्य रोगों के उपचार के लिए अनुकूल औषधियां तैयार करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

समस्त संसार में केले की १०० से भी अधिक किस्में उत्पन्न की जाती हैं। भारत के पेड़-पौधों में इसका विशिष्ट स्थान है। अत्यन्त प्राचीन काल से इसे सम्पन्नता का चिह्न समझा जाता रहा है। और समारोहों एवं त्योहार आदि के अवसरों पर इसे सजावट के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

भारत में उपयोग

भारतीय घरों की वाटिकाओं में केले के पौधे आम तौर पर दिखाई पड़ते हैं और इसके चौड़े तथा स्वच्छ पत्तों को लाखों व्यक्ति पत्तलों के रूप में प्रयोग में लाते हैं। इसके तने से तैयार होने वाले रेशों से भारत में बढ़िया साड़ियां एवं वस्त्र तैयार किये जाते हैं। इस उपयोगी पौधे का शायद ही कोई ऐसा भाग हो जिससे लोग लाभ न उठाते हों। इस सम्बंध में अनेक उदाहरण मौजूद हैं कि इसे औषधि के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता रहा है।

आधुनिक अमेरिकी वैज्ञानिकों ने यह मालूम किया है कि यह एक ऐसा पौधा है जिसमें अनेक प्रकार की संभावनाएं मौजूद है। चिकित्सा सम्बंधी अनुसंधानकर्ता स्वास्थ्य के लिए इसके अनेक उपयोग मालूम कर सकते हैं।

डा० सत्यनारायण प्रसाद

क्या जानवर स्वप्न देखते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले यह जानना आवश्यक है कि क्या जानवर सोते हैं। इस दूसरे प्रश्न का उत्तर आसान मालूम होता है, इसलिए कि हम प्रायः बिल्ली कुत्ते तथा अन्य घरेलू जानवरों को सोते देखते हैं। पर क्या मछली सोती है ? क्या घोड़ा खड़े-खड़े सो लेता है ? इन प्रश्नों का उत्तर आसान नहीं। वैज्ञानिक इन विषयों की खोज में लगे हैं, वे जानना चाहते हैं कि जब प्राणी सोता है तब क्या हो जाता है। वह कैसे सोता है, यह अब भी एक पहेली है।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि जानवरों का सोना झपकियों (तन्द्रा) में होता है। वे मानव की भांति गहरी नींद नहीं सोते। बिल्ली कुत्ते मेढक आदि की निद्रा उनके अनुसार तन्द्रा ही है। मछली उस तरह नहीं सोती जिस तरह स्तनपायी जीव सोते हैं। इनमें केवल क्रिया-परिवर्तन ही निद्रा हो जाती है।

इस विषय में लोग अब एकमत हैं कि निद्रा की आवश्यकता जन्तु-जगत में उतनी ही होती है जितनी मानव-जगत में। जब निद्रा आती है, तब चेतना की तमाम क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। आधुनिक व्यवहारवादी मनोविज्ञान की कल्पना के अनुसार निद्रावस्था में मस्तिष्क के स्नायु अपना काम करना बन्द कर देते हैं, या शरीर के दूसरे भाग अपना कार्य करते रहते हैं। इस क्रिया का नियंत्रण मस्तिष्क द्वारा नहीं होता, बल्कि स्वतंत्र नाड़ी-मंडल द्वारा। निद्रावस्था या सुषुप्तावस्था में जन्तु को वाह्य संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जाग्रतावस्था में अनेक क्रियाओं के फलस्वरूप जो शक्ति जन्तु खो देता है, निद्रावस्था में किसी हद तक उसकी पूर्ति हो जाती है। इसी अवस्था में क्षतिग्रस्त स्नायु का भी सुधार होता है।

जानवरों की निद्रावस्था का अध्ययन करने के लिए डा० जेम्स बैंडर ने कई प्रयोग किए हैं। उनके मतानुसार जन्तुओं में दो प्रकार की निद्रावस्थाएं पाई जाती हैं। प्रथम है लम्बी निद्रा अथवा एकांगी (मोनोफेजिक) तथा दूसरी है अल्प निद्रा अथवा बहु-अंगी (पौलीफेजिक)। लम्बी निद्रा वयस्क व्यक्ति में पाई जाती है और अल्प निद्रा, जो कई अंगों में विभाजित होती है, बच्चों में पाई जाती है। उदाहरणार्थ, सफेद चूहे २४ घंटे में १० बार थोड़ी-थोड़ी देर के लिए सोते हैं और खरगोश १६ से २१ बार।

जानवरों के सोने के तरीके

घड़ियाल, मगर और दरियाई घोड़ा पानी में तैरते-तैरते सो लेते हैं। इनको कुछ गरम पानी विश्राम के लिए बहुत पसन्द है। प्रायः ये अपना सिर एक-दूसरे की पीठ पर रख लेते हैं। घोड़े और हाथी खड़े-खड़े ही सो लेते हैं। डा० बैंडर ने ६०० फौजी घोड़ों की परीक्षा की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वे खड़े-खड़े ही गहरी झपकी लेने में सफल हो जाते थे। यदि उन्हें खाने की नाँद आदि पर सिर टेकने का अवसर मिल जाता तो वे निद्रा का पूरा लाभ उठा लेते थे। परन्तु यह भी देखा गया है कि सचमुच गहरी नींद सोने के लिए घोड़े भी लेटना पसन्द करते थे।

कुछ खोजियों ने सरकस के हाथियों की परीक्षा की है। उन्होंने देखा कि ३४ में से २६ पृथ्वी पर लेटकर

खर्राटे मार-मार कर सोए, बाकी खड़े-खड़े ही झपकियां लेते रहे। इनमें से ज्योंही दो या तीन खड़े हो जाते त्योंही खड़े हाथियों में से उतने ही पड़ जाते। यह परिवर्तन क्रमानुसार होता रहा। जंगलों में भी जानवर प्रायः ऐसा करते हैं।

गाय आवश्यकता से अधिक विश्राम करती है। खाना खाने के पश्चात् वह घंटों जुगाली करती रहती है। आंख को आलस्यवश बन्द करके प्रायः पैर फैला लेती है। खूंटे में बंधे रहने के कारण तथा अच्छा भोजन पाने के कारण उनका विश्राम तथा सोने का समय बढ़ जाता है। देहात की गाएं दिनभर भोजन की खोज में फिरती हैं और सायंकाल अपने थान पर ही आकर सोती हैं। खुर वाले जानवरों की यह विशेषता होती है कि वे बैठे ही बैठे सो लेते हैं कभी एक ओर पीठ टेककर दूसरी ओर पैर फैला लेते हैं। गाड़ी खींचने वाले बैल भी प्रायः रात को धीरे चलने लगते हैं और कभी कभी चलते चलते रुक जाते हैं! उनका धीरे-धीरे चलना ही विश्राम कर लेना है। कुछ लोगों के उल्लेखों से पता चलता है कि फौज के सिपाही भी इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर कूच करते करते सो लेते हैं।

स्तनपायी जानवरों में कुछ ऐसे हैं जो बराबर अपनी पीठ पर लेटकर सोते हैं। उड़ने वाली गिलहरी गरमी के दिनों में इसी भाँति सोती है। श्री जे० जी० मिले ने सील नामक समुद्री स्तनपायी प्राणी की निद्रा का अध्ययन किया है। वह सोने के लिये चट्टान पर जाता है, जिससे उसका शरीर जल से बाहर रहे। ज्यों-ज्यों उसका शरीर सूखता जाता है, वह निद्रा ग्रस्त होता जाता है, और ज्योंही ऊपर चढ़ती हुई पानी की लहरें उसे भिगो देती हैं; त्योंही उसकी नींद टूट जाती है। बन्दर पेड़ों की डालियों पर सोते हैं। मादा बन्दर अपने बच्चों को पेट पर लेकर सोती है। कभी कभी दो बन्दर एक दूसरे की तरफ मुँह करके सोते हैं और बच्चों को अपने बीच में रखते हैं। मनुष्य की भांति कुछ बड़े बन्दर अपने लिए बिस्तर बनाते हैं। नर गोरिला अपना बिस्तर पृथ्वी पर ही बनाता है। औरांग नामक बड़ा बन्दर बिस्तर पर पत्तियों की चादर भी बिछाता है। हिमालय का कस्तूरीवाला हरिण अपने विश्राम के लिए एक विशेष स्थान निश्चित कर लेता है और वहीं सोने के लिए आता है।

सरीसृप की निद्रा तथा विश्राम का वर्णन गैडो ने किया है। उनका कहना है कि यह जानवर भी प्रायः नियत स्थान पर ही सोने के लिए जाता है। छिपकलियों पर यह बात सबसे अधिक लागू होती है। कछुए जाड़े के दिनों में धूप खाना बहुत पसन्द करते हैं। वे प्रायः ऐसे सुरक्षित स्थान को चुन लेते हैं, जहां धूप मिल सके और वहीं अवकाश के समय पहुँच जाते हैं। सर्प आदि जीव सोते समय अजीब आकृति बना लेते हैं ताकि ऐसा प्रतीत हो कि वे चलते-चलते सो गए हैं।

जानवरों के सपने देखने के प्रमाण

अब प्रश्न उठता है कि यदि जानवर सोते हैं तो क्या स्वप्न भी देखते हैं। स्वप्न किसी हद तक अव्यवस्थित मानसिक क्रिया को कहते हैं, जो सुषुप्तावस्था में होती है; और क्योंकि बहुत-से जानवर सोते हैं, इसलिए उन्हें स्वप्न आना भी सम्भव है। वैसे तो प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में इस विषय में कुछ भी कहना आसान नहीं, किन्तु डा० बैंडर का कथन है कि बहुत-से अति विकसित स्तनपायी प्राणी निद्रा में स्वप्न देखने का प्रमाण अपनी क्रियाओं द्वारा देते हैं। उदाहरण के लिए हाथी को लीजिए। वह सोते समय बड़े जोर से चिंघाड़ता है, मानों शेर उसका पीछा कर रहा हो। कदाचित् वह ऐसा ही स्वप्न देखता होगा। आसाम के जंगलों में महावत सोते हुए हाथियों के पैर रस्सियों से बांध देते हैं, जिससे वे निद्रावस्था में भी महसूस कर सकें कि वे बन्दी हैं, जंगलों में स्वतंत्र नहीं।

ऐसे और भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। बहुत-से ऐसे जानवर हैं, जो सुषुप्तावस्था में गुर्राते हैं, चिल्लाते हैं, और उठ-उठकर भागते हैं। बिल्ली सोते समय बार-बार गुर्राने लगती है। कुत्ता सोते-सोते कभी गुर्राता है, कभी भोंकता है, कभी दुम हिलाता है तो कभी इतनी तेजी से उछल-कूद मचाता है कि मालूम होने लगता है कि वह शिकार खेल रहा है। घोड़ा भी सोते-सोते हिनहिनाता है और बार-बार पृथ्वी पर अपने खुर पटकता है। ये सब

ऐसी क्रियाएँ हैं, जो सोते समय स्वप्न के कारण ही उत्पन्न हो सकती हैं। इसीलिए इनको देखकर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कुछ जानवर स्वप्न भी देखते हैं। स्वप्न शारीरिक अथवा मानसिक उत्तेजना के कारण आते हैं। शारीरिक उत्तेजनाएं दो प्रकार की होती हैं-शरीर में स्थित विकारों से होने वाली और दूसरी बाहरी पदार्थों से होनेवाली। कभी-कभी दरवाजे पर जोर से खटखटाने की आवाज के कारण निद्रामग्न व्यक्ति स्वप्न देखने लगता है कि वह शिकार पर बन्दूक लेकर जा रहा है, वहां उसने शिकार पर गोली चलाई और इस प्रकार उसकी गोली की आवाज किवाड़ की अन्तिम 'खट' से मिल जाती है। बाहरी उत्तेजना के कारण ऐसे स्वप्न आते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने जानवरों को इसी तरह सोते समय उत्तेजित करने के प्रयत्न किए। उनमें से कुछ तो असफल रहे, परन्तु कुत्ते के साथ किया गया एक प्रयोग काफी सफल उतरा। एक लकड़ी जिसका धुआं राल के जलने की-सी गंध पैदा करता है, गहरी नींद में सोए हुए कुत्ते के सामने जलाई गई। इसके धुएं की गंध ने कुत्ते को उत्तेजित किया और वह निद्रावस्था में ही उछल-कूद मचाने लगा, मानो कोई स्वप्न देख रहा हो। धुआं नथुनों के पास से हटा देने के पश्चात् वह ठीक हो गया। फिर कुत्ते को धुआं सामने रखकर जगा दिया गया। तब वह वहां से बाहर चला गया और उछल-कूद या गुर्राहट आदि कुछ नहीं की। यह सिद्ध करता है कि धुएं से उत्तेजित होकर कुत्ता स्वप्नावस्था में प्रवेश कर गया था।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धिमान् स्तनपायी प्राणी सच्ची सुषुप्तावस्था में रहते समय स्वप्न भी देखते हैं। प्रो० हैम्पलमन साहब का कथन है कि कम-से-कम सुषुप्तावस्था में तो हम जन्तुओं के निकट आ जाते हैं, जागृत अवस्था में भले ही हम उनसे आगे हों।

कोचीन तट का समुद्र से बचाव

कोचीन के दक्षिण समुद्रतट की जो पट्टी है वह बहुत ही उपजाऊ है तथा वहाँ की आबादी बहुत घनी है। किंतु समुद्र की लहरें उसे निरंतर काटती जा रही हैं। पिछले ५० वर्षों में समुद्रतट की १ फर्लांग चौड़ी और १० मील लम्बी पट्टी कट चुकी है। इस तट के पीछे ही बन्द खाड़ी है। इस कारण खतरा और भी बढ़ गया है। १९३५ में समुद्रतट के कटाव को रोकने के लिये दीवार बनायी गयी थी किन्तु इससे कोई फायदा नहीं हुआ क्योंकि जब तक इन दीवारों के आगे मजबूत पुश्ते न बनाये जायें इनसे समुद्र की लहरें नहीं रोकी जा सकतीं हैं और इन्हें ठीक स्थिति में रखने में खर्च भी बहुत बैठता है।

जुलाई १९५३ में भारत सरकार ने पूना के केंद्रीय जल तथा विद्युत अनुसंधान केंद्र से कोचीन के दक्षिण के समुद्रतट के कटाव को रोकने के लिये कोई उपयुक्त तरीका बताने के लिये कहा इस केंद्र ने उस तट का निरीक्षण करने के बाद यह सुझाव दिया कि आजमाइशी तौर पर पानी रोकने के लिये १ मील लम्बी पत्थर की दीवार बनायी जाय और जहाँ समुद्रतट बहुत कट गया है वहाँ पत्थर की दीवार के आगे मजबूत पुश्ता बनाया जाय। साथ ही पूना में बाकी १० मील लम्बे तट के लिये मजबूत दीवार और पुश्ता बनाने के सम्बन्ध में परीक्षण आदि करने का सुझाव दिया गया।

१९३५-४८ के बीच पत्थर की दीवार बनायी गयी वह बहुत जगह से टूट गयी है और जहाँ बची है वहाँ उसके संभाल सुधार पर काफी खर्च बैठता है। १९५६ के पूर्वार्द्ध में १ मील लम्बी दीवार और पुश्ता बनकर तैयार हो गयी थी और यह दीवार पिछली बरसात को सन्तोषजनक रूप से बर्दाश्त कर गयी।

इस तरह साढ़े पांच मील लम्बे तट का बचाव किया जायेगा। केरल सरकार को यह सुझाव दिया गया है कि दीवार का जो हिस्सा समुद्र की तरफ है उस पर तारकोल आदि पोत कर इस बात का प्रयोग करें कि उससे दीवार की मजबूती में कोई फर्क पड़ता है कि नहीं। यह प्रयोग दीवार के एक फर्लाङ्ग हिस्से पर किया जायेगा।

———

टैलिवीजन के विकास से व्यापक एवं उत्तम शिक्षा की संभावनाएं

हाल ही में अमेरिका में दो ऐसी घटनाएं हुई, जिनसे चिकित्सा तथा शिक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण की व्यापक संभावनाएं उत्पन्न हो गई हैं। पहली घटना न्यूयार्क नगर में हुई, जहां आम जनता के लिए साहित्य विषय में एक पाठ्यक्रम प्रथम बार टैलीवीजन पर प्रस्तुत किया गया। अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर इस पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले व्यक्तियों को उपाधि भी प्राप्त कर लेना संभव है। दूसरी घटना ५०० मील दूर वाशिंगटन में घटी जहां एक छोटे से दल के लिए पेट की चीरफाड़ का कार्यक्रम टेलीवीजन द्वारा प्रसारित किया गया।

समय और स्थान की रुकावट समाप्त

दोनों घटनाओं के निरीक्षक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे 'समय और स्थान की रुकावट अब शेष नहीं रही। कुशल अध्यापक अब इने-गिने कुछ छात्रों के सम्मुख उपस्थित होने के बदले हजारों छात्रों के सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं। क्योंकि टैलिवीजन कार्यक्रम के अन्तर्गत पाठ्यक्रम प्रातः ६–३० बजे सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है, इसलिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी व्यापक रात्रि-कार्यक्रम प्रस्तुत करने का मार्ग मुक्त हो गया है। व्यापारिक टैलिवीजन कार्यक्रम में इससे किसी प्रकार की बाधा पड़ने की संभावना नहीं, क्योंकि ये कार्यक्रम इस समय प्रसारित नहीं किए जाते।'

न्यूयार्क में किया गया परीक्षण

१९५६ की पतझड़ ऋतु में जब प्रातःकालीन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था के संबंध में कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग और न्यूयार्क विश्वविद्यालय के अधिकारी विचार कर रहे थे, तब इन सब संभावनाओं की बात उनके मस्तिष्क में नहीं थी। उन्हें यदि किसी बात की चिन्ता थी तो वह यह कि टैलिवीजन द्वारा प्रदान की गई शिक्षा कहीं परोक्ष तथा पारस्परिक सम्बन्ध और आकर्षण से विहीन न सिद्ध हो। क्या पाठ्यक्रम इतना मनोरजंक और आकर्षक बनाया जा सकता है, जिससे विद्यार्थी इस प्रकार के पाठ्यक्रम के प्रति आकर्षित हो सकें? या विद्यार्थी कक्षा में बैठकर पढ़ने की प्रचलित रीति को ही पसन्द करेंगे?

न्यूयार्क विश्वविद्यालय ने परीक्षण के लिए अपने ३५ वर्षीय प्रोफेसर फ्लौयड जूली को चुना। कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग ने टैलिवीजन कार्यक्रम का खर्च उठाना स्वीकार कर लिया। दोनों ही संस्थाओं का यह विश्वास था कि प्रातः ६–३० बजे इस कार्यक्रम को प्रस्तुत करना अत्यधिक कठिनाइयों से पूर्ण है। बहुत संभव है कि कोई भी छात्र इस कार्यक्रम के लिए अपना नाम रजिस्टर्ड नहीं कराए। यह भी संभावना थी कि इस विशुद्ध शैक्षणिक कार्यक्रम को सुनने के लिए आम जनता सुबह प्रातःकाल इतना शीघ्र उठना ही पसन्द न करे। संक्षेप में समझा यह गया था कि प्रातःकाल की साहित्य-चर्चा साहित्य के अनुरागियों को तो आकर्षित कर सकती है, किन्तु प्रश्न यह था कि क्या यह न्यूयार्क की उस जनता को आकर्षित कर सकेगी, जिसके सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी करना संभव नहीं है?

आशातीत सफलता

२३ सितम्बर १९५७ को उक्त पाठ्यक्रम के प्रारम्भ करने से पूर्व ही, इस प्रश्न का उत्तर शिक्षाशास्त्रियों और टैलिवीजन अधिकारियों को मिल चुका था। उन्हें स्वप्न में भी जितनी आशा नहीं थी, उससे भी कहीं अधिक पाठ्यक्रम की सफलता की संभावना उत्पन्न हो गई। ग्रीष्म ऋतु में जब इस पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में घोषणा की गई, तब पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में १०,००० व्यक्तियों ने प्रार्थनापत्र मंगाए। इन में से ७५० प्रार्थनापत्रों के साथ ७५ डालर की रजिस्ट्रेशन फीस इस कार्यक्रय के प्रारम्भ होने से पूर्व विश्वविद्यालय को पहुँच गई। इसके फलस्वरूप उक्त पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले ये छात्र अन्तिम परीक्षा में सम्मिलित हो सकते थे।

डा० जूली ने १९ वीं शताब्दी की महान रचना स्टेनडाल लिखित 'दि रेड एण्ड दि ब्लैक' के सम्बन्ध में जब अपना प्रथम भाषण दिया, तब ब्राडकास्टिंग कम्पनी को इस कार्यक्रम की सफलता का पता चला। ब्राडकास्ट के कुछ ही घण्टों बाद नगर के समस्त पुस्तक विक्रेताओं के पास इस पुस्तक की कोई प्रति शेष नहीं बची। बाद में इस सम्बन्ध में जो सही-सही अनुमान तैयार किया गया, उससे पता चला कि लगभग ७४,००० व्यक्तियों ने डा० जूली के इन भाषणों को प्रतिदिन सुना। वे इन भाषणों को सुनने के लिए बिस्तर छोड़ कर उठ बैठे।

शिक्षा सम्बन्धी टैलिविजन की आर्थिक सफलता की दृष्टि से यह बात भी महत्त्वपूर्ण हुई कि बार्नेज और नोबेल नामक बड़ी प्रकाशन संस्था ने उक्त पाठ्यक्रम के साथ अपने प्रकाशनों के विज्ञापन के लिए भी कुछ समय सुरक्षित करा लिया। इसके लिए उसने पर्याप्त धन भी दिया। 'तुलनात्मक साहित्य' नामक यह कार्यक्रम इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि इसे बसंतकालीन पाठ्यक्रम में फिर परीक्षण के रूप में दुहराया जा रहा है।

वाशिंगटन में किया गया परीक्षण

न्यूयार्क के श्रोताओं को प्रातः साहित्य का अध्ययन करने के लिये आकर्षित करने के कुछ सप्ताह बाद ही वाशिंगटन के वाल्टर रीड चिकित्सा केन्द्र में किया गया एक अन्य परीक्षण भी एक अन्य महत्त्वपूर्ण दल के लिये मनोरंजन का कारण सिद्ध हुआ। इस दल में भूमि, जल और वायु सेना के शल्य-चिकित्सक तथा पत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। रंगीन टैलिविजन पर चिकित्सा सम्बन्धी प्रशिक्षण की सफलता का अनुमान करने की दृष्टि से इन लोगों को आमन्त्रित किया गया था। टैलिविजन के चालू होते ही इन लोगों ने पेट की चीरफाड़ की क्रिया को पूर्ण स्पष्टता और प्राकृतिक रंगों में होते हुये देखा। यह चीरफाड़ इस स्थान से कुछ दूर चीरफाड़ के कमरे में की जा रही थी।

समस्त उपस्थित दर्शकों के लिये यह बात स्पष्ट थी कि अब वे दिन नहीं रहे, जब चीरफाड़ की क्रिया को देखने के लिये छात्रों को चीरफाड़ के कमरे में 'पिछली सीटों पर बैठना आवश्यक हो ऐसे स्थान पर बैठना, जहाँ से न तो साफ-साफ चीरफाड़ की क्रिया दिखाई देती हो और न बात चीत ही स्पष्ट सुनाई देती हो। दर्शकों को चीरफाड़ की प्रत्येक क्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी तथा हर बात स्पष्ट समझ में आ रही थी। चीरफाड़ के कमरे की छत पर बढ़िया कैमरे लगे हुये थे। इन की सहायता से दर्शक सब कुछ देख सकते थे। एक दर्शक ने तो यह बात तक कही कि चीरफाड़ में सहायता करने वाले व्यक्तियों और चिकित्सकों की अपेक्षा भी वह चीर फाड़ की क्रिया को अधिक अच्छी प्रकार देखने में समर्थ थे।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये १९५६ के अन्त में अमेरिका के रेडियो कारपोरेशन ने वाल्टर रीड चिकित्सा केन्द्र के चीरफाड़ के कमरे में कैमरों की सुन्दर व्यवस्था की थी। चीरफाड़ करने वाले शल्य-चिकित्सा की बात चीत को रिकार्ड करने के लिये गुप्त रीति से माइक्रोफोन भी स्थान स्थान पर लगा दिये गये थे।

इन परीक्षणों का वास्तविक महत्व

उक्त दोनों टैलिविजन-हलचलों का वास्तविक महत्व क्या है? अनेक दर्शकों का कथन है कि इस से नये शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्र का संकेत मिलता है। कुछ दिन पूर्व तक टैलिविजन का अमेरिका में उपयोग मनोरंजन के क्षेत्र तक ही सीमित था। अब इस से लोगों को शिक्षित किया जाएगा। उन्हें अधिक उत्तम और विशिष्ट शिक्षा प्रदान की जाएगी। जिन शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख विद्यार्थियों की बड़ी संख्या उपस्थित है तथा उन के लिये पर्याप्त स्थान एवं अध्यापकों की कमी को वे अनुभव कर रहे हैं, उन के लिये कुछ ही वर्षों में टैलिविजन इन सब बातों की व्यवस्था कर देगा। अमेरिका के सर्वोत्तम शिक्षकों की सेवायें रात दिन विद्यार्थियों को प्रस्तुत करने की अपनी क्षमता के कारण टेलिविजन की संभावनायें महान् हैं।

कृषि में परमाणु-शक्ति का व्यवहार

लेखक-डा० एम० एस० स्वामीनाथन, इंडियन एग्रीकल्चर रिसर्च इन्स्टीच्यूट, नई दिल्ली।

(अनुवादक-डा० शिव गोपाल मिश्र, प्राध्यापक, कृषि रसायन, प्रयाग विश्वविद्यालय।)

जेनेवा में होने वाली द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय बैठक में परमाणु-शक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोगों पर जो विचार विमर्श हुए उनसे यह भलीभांति ज्ञात हो चुका है कि परमाणु शक्ति का प्रयोग न केवल वाष्प और विद्युद्शक्ति के उत्पन्न करने के लिए हुआ है वरन् विशुद्ध एवं प्राविधिक विज्ञान की प्रत्येक शाखा में उसका प्रभाव सिद्ध हो चुका है। कृषि विज्ञान भी इससे अछूता नहीं रहा। आजकल तो आयनीकारक-विकिरणों के कृषि अनुसन्धान में उपयोग की सम्भाव्यता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। एक ओर जहां नाभिकीय-शक्ति के द्वारा कृषि तथा उसके सम्बन्धित अन्य उद्योगों के विकास की निकट भविष्य में आशा की जाती है वहीं परमाणु शक्ति से उत्पन्न सहजातों-विकिरण तथा रेडियो-समस्थानिकों-से कृषि तथा अन्नोत्पादन में होने वाले लाभों की जानकारी प्राप्त करना भी महत्व का विषय है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों में समस्थानिकों का प्रयोग नया नहीं है। १९१३ ई० में स्वीडेन के जार्ज द हेवेसी तथा आस्ट्रिया के फ्रिटज पैनेथ ने सीसा के लवणों की विलेयता ज्ञात करने के लिए रैडियम-डी को सूचक के रूप में प्रयुक्त किया। वर्तमान युग की सबसे नूतन विशेषता यह है कि विभिन्न देशों में अनेक नाभिकीय प्रतिकारियों (रिएक्टरों) के निर्माण के कारण रेडियम धर्मी-समस्थानिकों का वृहत्मात्रा में निर्माण होने लगा है जिससे वे अल्पमूल्य पर उपलब्ध होने के कारण बड़े पैमाने से विविध कार्यों में प्रयुक्त होने लगे हैं। भारतवर्ष में पहले ही 'अप्सरा' नामक प्रतिकारी (रिएक्टर) से समस्थानिकों का उत्पादन होने लगा है और ट्राम्बे में (बम्बई के पास) शीघ्र ही दो नवीन प्रतिकारियों (रिएक्टरों) के कार्य प्रारम्भ करने की आशा की जाती है।

एक समय ऐसा विश्वास था कि रेडियमधर्मी उर्वरकों के प्रयोग से फसलों की वृद्धि को प्रोत्साहित किया जा सकेगा किन्तु 'भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय, दिल्ली' तथा यूरप-अमेरिका आदि अन्य देशों में किए गए प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि रेडियो-समस्थानिकों के प्रयोग से ऐसी सम्भावनाएं नहीं रह गई। कृषि में इन पदार्थों के सर्वाधिक प्रयोग का कारण उनका विशिष्ट गुणधर्म- रेडियो-सक्रियता-है जो उनकी उपस्थिति तथा उनकी गति को पौदों की टीशुओं (Tissues) तथा मिट्टियों में उपयुक्त यन्त्रों द्वारा बताने में समर्थ है। दूसरे यह कि उनके द्वारा उत्सर्जित आयनीकरित विकिरण पौदों में वंश-परिवर्तन (म्यूटेशन) ला सकते हैं अतः कृषकों के लिये वे अपेक्षाकर सस्ते तथा सरलता से उपलब्ध साधन हैं जिनसे वे नाना प्रकार के परिवर्तन प्राप्त कर सकते हैं। जैविक पदार्थों में वन्ध्यीकरण लाने के गुण के कारण रेडियम धर्मी पदार्थ खाद्य-संरक्षण-उद्योग तथा हानिकर कीटाणुओं की रोकथाम में बड़े महत्व के हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस दिशा में 'भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय; दिल्ली' में कार्य हो रहा है। अभी तक के प्राप्त परिणामों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

पौदों के प्रजनन में विकिरण के प्रयोग

विकिरण का पौदों की विकसित किस्मों के उत्पादन में प्रयोग का मूल सिद्धान्त मूल वंशीय पदार्थों में ऐसे वंशानुगत परिवर्तन (म्यूटेशन) लाने की सामर्थ्य है। ये मूलवंशीय पदार्थ—जीन और पित्र्य सूत्र (क्रोमोजोम) ही किसी जीवित पदार्थ को विशिष्टताओं को निर्धारित करते हैं जिनसे पौदों के उत्पादक सम्बन्धित हैं।-पिछले कुछ वर्षों से भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्या

लय के आनुवंशिक तत्व–विशारद (Geneticists) 'एटामिक एनर्जी एस्टैब्लिशमेंट' ट्राम्बे से प्राप्त होने वाले न्यूट्रान विकिरण-स्त्रोतों का प्रयोग विकिरण-प्रेरित म्यूटेशन्स के अध्ययन करने में लगे हुये हैं। गेहूँ, कपास, तम्बाकू, आलू, टमाटर तथा बेलों के बीजों, नये अंकुरों तथा फूलों को रेडियो समस्थानिकों, एक्स–रे तथा न्यूट्रान से प्रतिकृत करके म्युटेशन की उपस्थित के लिये उनकी परीक्षा की गई हैं। चूंकि म्युटेशन की पहचान और परीक्षा के लिये विकिरण के बाद वर्षों लगते हैं, अतः उक्त योजना से सम्बन्धित परिणाम अभी भी प्रारम्भिक अवस्था में हैं किन्तु उनसे कुछ उत्साहवर्धक ही संकेत मिले हैं। इस प्रकार से पूसा की गेरुई प्रतिरोधी गेहूँ की किस्में एम० पी० ७६७, ७६८, ७६६ तथा ८०६ के पूर्ण-विकसित-जटासहित परिवर्तित पृथक किये जा चुके हैं। किसानों में यह विश्वास प्रचलित है कि इस प्रकार की जटाओं की उपस्थित के कारण पक्षियों द्वारा अन्न की हानि कम होती है अतः 'भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय' में गेरुई–प्रतिरोधी गेहूंओं में जटायें उगाने की योजना कार्यान्वित हो रही है। प्रचलित प्रजनन-विधियों से इस प्रकार के परिवर्तन लाने में वर्षों लग जाते, किन्तु रेडियो-समस्थानिकों के प्रयोग से यह शीघ्र ही सम्पादित हो गया है। एन० पी० ८०६ किस्म में पूर्ण विकसित जटाओं के अतिरिक्त छोटा तथा सुदृढ़ तिनका (डंठल) भी उत्पन्न होता है। यह परिवर्तित, उत्पादन–परीक्षा में सर्व प्रथम रहा। दिन–प्रति दिन कृषकों द्वारा उर्वरकों के प्रयोग के कारण पौदों का नर्म तिनका होने के कारण उनका भूमि में गिर पड़ना एक सामान्य समस्या हो गई हैं, ऐसी स्थिति में इस प्रकार के सुदृढ़ तिनका वाले परिवर्तित की विशेष महत्ता है। कपास के किस्मों में विकिरण द्वारा पराग–बन्ध्यता प्रेरित की गई है जिससे प्रसंकर (Hybrid) बीजों का उत्पादन सुगम हो जायगा, जो सामान्य किस्मों से अधिक उत्पादन करेंगी। टमाटर तथा सजावट के पुष्पों में विकिरण द्वारा ऐसे प्रभाव प्रेरित किये गये हैं जिनसे अधिक आकर्षक पुष्पों की उत्पत्ति सम्भव हो गई है कुछ कवकों तथा दूसरे जीवाणुओं पर म्यूटेशन के कृत्रिम प्रेरण की सम्भावनाओं पर अनुसन्धान हो रहे हैं क्योंकि यूरप तथा अमेरिका में फफूंद की कुछ किस्मों से कुछ प्रतिविषों, जैसे पेनिसिलिन तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन, की अधिकाधिक प्राप्ति की जा रही है। म्यूटेशन–अनुसंधान योजना के वृहत्तर बनाने के लिये कृषि अनुसंधान शाला के क्षेत्र में एक पृथक खंड में २०० क्यूरी कोबाल्ट, ६०, स्रोत की प्रतिस्थापना की जायेगी। इस 'गामा-उद्यान' में विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अनेक फसलों के पौधों तथा फल–वृक्षों को विकिरण द्वारा प्रभावित किया जायेगा और इस प्रकार से पौधों के प्रजनन में परमाणवीय विकिरणों द्वारा प्रदत्त क्षमताओं का उपयोग किया जावेगा।

संकेतकों के रूप में रेडियो-समस्थानिक

जैविक-समस्याओं के विषय में अधिकाधिक गवेषणा के द्वार खोलने में रेडियो-समस्थानिक बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इनका उद्देश्य परिवर्तन (म्यूटेशन) प्रेरण की भांति किसी विशिष्ट वांछित फल की प्राप्ति न होकर कृषि के विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति अथवा व्यवहारशीलता से सम्बद्ध उन जटिल भौतिक, रासायनिक तथा जैविक प्रक्रमों की जानकारी प्राप्त करना होता है जिससे उन प्रक्रमों को अधिक सतर्कता के साथ नियन्त्रित किया जा सके। रासायनिक दृष्टि से, किसी तत्व का रेडियम-समस्थानिक, अरेडियम-समस्थानिक की ही भांति व्यवहार करता है किन्तु उसके विघटन के समय विशिष्ट प्रकार के विकिरण उत्सर्जित होते हैं, जिसके द्वारा उसको पहचाना जा सकता है। इस प्रकार किसी प्रणाली में रेडियो-समस्थानिक को प्रविष्ट कराकर उसकी गति, व्यवहार तथा अन्तिम दशा को आदि से लेकर अन्त तक अनुसरण किया जा सकता है। कभी कभी तो बिना सामान्य रासायनिक या भौतिक विधियों का प्रश्रय लिए (जिनमें जीवित टीशुओं को विनष्ट करना पड़ता है) ही यह कार्य सम्पादित किया जा सकता है। अतः जीवित प्राणियों का पोषिकी तथा रसायन और मिट्टी, पौधों, पशु तथा मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को बताने वाली गतिशील प्रणा-

लियों के अध्ययन में रेडियो-समस्थानिक अपरिमित महत्व के होते हैं।

भारतीय कृषि अनुसन्धान महाविद्यालय में एक सुसज्जित रेडियो संकेतिक—प्रयोगशाला है जहां अंकित उर्वरकों की सहायता से भूमि उर्वरता तथा शस्य भोज्यों के अध्ययन हो रहे हैं। धान द्वारा फासफेट उवर्रक के प्रयोग किये जाने के अध्ययन से यह देखा गया है कि जब उवर्रक को मिट्टी की सतह पर डाला जाता है तो सर्वाधिक फासफोरस ग्रहीत होता है। एक दूसरे प्रयोग में यह देखा गया हैं कि मिट्टियों में फासफोरस का संगठन बहुत कम होता है। यह परिधि $\frac{1}{8}$ इंच से २ इंच तक सीमित है। प्रयोग उवर्रको के डाले जाने की विधियों के पुनर्निरीक्षण के लिए हमें बाध्य करते हैं। मिट्टियों में उपलब्ध फासफोरस की मात्रा ज्ञात करने की विधि को भी प्रतिमानित किया जा चुका है। रेडियो समस्थानिकों की सहायता से कीट विज्ञान की अनेक समस्यायें, यथा कीटों के शरीर के भीतर कीट विनाशकों का वितरण;तथा वनस्पति–रोग की समस्यायें, यथा कवकनाशकों तथा प्रतिविषों के प्रभाव का कोष अन्तर्वेश पर प्रभाव; सुलझाई जा रही है।

विकिरणों का बन्ध्योकारक प्रभाव

भोज्य-पदार्थो की सुरक्षा में आयनीकारक-विकिरणों का प्रयोग इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि वे उन सूक्ष्मजीवाणुओं तथा कीटों को विनष्ट कर देते हैं जो भोज्य-पदार्थों का नाश करते हैं। विकिरणों के प्रयोग का सबसे बड़ा गुण यह है कि उपचार के समय भोज्य-पदार्थों का ताप नहीं बढ़ता। इस प्रकार से विकिरण के उपयोग से शीघ्र ही विनष्ट हो जाने वाले भोज्य पदार्थों को ताजी अवस्था में ही दूर-दूर तक वितरित किया जा सकेगा। किन्तु इसके साथ ही विकिरण द्वारा भोज्यपदार्थों में अनेक जैवरासायनिक परिवर्तन होने की सम्भावनाएं है–यथा रंग, पारदर्शिता, गंध तथा स्वाद में अवांछित परिवर्तन-जिनको उनके वृहतरूप में प्रयोग के पूर्व हल करना होगा। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सेना शीघ्र ही कैलीफोर्निया में एक प्रयोगशाला खोलने जा रही है जहां कोबैल्ट, ६०, की २० लाख क्यूरियों को संगठित करके प्रतिघन्टे ३००० पौंड भोज्यपदार्थ को गामा-किरणों द्वारा प्रभावित किया जावेगा। इस प्रयोगशाला से प्राप्त परिणामों के आधार पर भोज्य-पदार्थ-संरक्षण-उद्योग का भविष्य निर्भर करेगा।

क्षेत्रीय अवस्थाओं में हानिकारक कीटों के नियन्त्रण के लिए विकिरण के वन्ध्यीकारक-प्रभावों का अच्छा उपयोग किया जा सकता है। कुराकावो नामक पश्चिमी भारतीय द्वीप समूह में 'स्कू-वर्म' का अन्त एक अत्यन्त विचित्र विधि से किया गया है। प्रयोगशाला में गामा-किरणों द्वारा नर मक्खियों को निरबीजित करके उन्हें इतनी अधिक संख्या में खेतों में छोड़ दिया गया कि वे सामान्य मक्खियों की जनसंख्या से अधिक हो जाएं। इस प्रकार मादा मक्खियों को निरबीजित मक्खियों से प्रसंग के अवसर वीर्यवान मक्खियों की अपेक्षा अधिक मिलेंगे और अन्ततः वे उर्वर-अंडे न दे पावेंगी। यह विधि अब दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी प्रचलित है जहां 'स्क्रूवर्म' के कारण प्रतिवर्ष २०० लाख डालर की क्षति होती है। इस विधि को मक्के में छेद करने वाले कीटाणु तथा अन्य हानिकारक कीटाणुओं के नियन्त्रण में प्रयुक्त किए जाने की संभावनाओं पर 'भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय' में शोध हो रहा है।

———

'रेडियम-धर्मिता'

शिव गोपाल अवस्थी बी-एससी, (प्रथम वर्ष)

प्रयाग विश्वविद्यालय

पृथ्वी ने आरम्भ से ही मानव को अपनी रहस्यमयी परस्थितियों के बीच जन्म देकर स्वभावतः उसके हृदय में प्रकृति के गुप्त रहस्यों को जानने की जिज्ञास उत्पन्न कर दी है। प्रकृति अपने कार्य कलापों द्वारा मानव को मन्त्र-मुग्ध करती रही और कर्मशील मानव, प्रकृति चर्या का अव-लोकन कर उसके गुप्त एवं गहन रहस्यों को जानने में कभी भी पीछे न रहा। प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य अपनी सभ्यता के प्रथम उत्थान काल से ही प्रकृति के अत्यधिक गुप्त रहस्य 'तत्व' के सम्बन्ध में जानने का इच्छुक रहा है। आज से शताब्दियों पूर्व मनुष्य ने 'तत्व सम्बन्धी पर्याप्त जान-कारी प्राप्त कर ली थी। आर्य देश भारत में भी इस सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण अन्वेषण हुये हैं। भगवान बुद्ध से ८०० वर्ष पूर्व प्रसिद्ध भारतीय रसायनज्ञ कणाद परमाणु की व्याख्या कर चुके थे। उन्होंने तत्व के सम्बन्ध में अनेक अन्वेषण भी किए थे। परन्तु निष्ठुर परिवर्तन के प्रहारों से ये अधिक दिनों तक पनपने न पाए। उसके बाद अन्य वैज्ञानिकों ने तत्व एवं परमाणुओं के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पनायें प्रस्तुत की जो आज सर्व साधारण को विदित हैं, परन्तु आधुनिक युग में ये परिकल्पनायें नवीनता नहीं रखतीं। आधुनिक युग को आश्चर्यचकित करने वाले तत्व का कोई दूसरा ही गुप्त रहस्य है, वह है कुछ विशेष तत्वों की रेडियम धर्मिता।

पार्थिव प्रकृति की गोद में बसे ९२ ज्ञात तत्वों में कुछ ऐसे भी तत्व हैं जो निरन्तर अपने अन्दर से विशेष प्रकार की विद्युत् रश्मियाँ निकाला करते हैं। ऐसे तत्वों को रेडियम धर्मी तत्व कहते हैं। और उनके इस विशेष गुण को रेडियम धर्मिता (Radioactivity) कहते हैं। इन्हीं रेडियम-धर्मी तत्वों के अन्वेषण ने मानव जाति को एक विशाल शक्ति से परिचय कराया है। इस विशाल शक्ति को हम 'परमाणु शक्ति' की संज्ञा देते हैं। रेडियम धर्मी तत्वों में यह गुण है कि वे, बाहर की किसी वस्तु से शक्ति न प्राप्त होने पर भी, निरन्तर एक सम रूप गति से शक्ति बाहर निकालते रहते हैं। प्रश्न उठता है—'शक्ति का यह अविरल स्त्रोत कहाँ से आता है' तो आइए आज हम रेडियम धर्मी तत्वों पर थोड़ा विचार करें—

घटनाएं ही अन्वेषण की जन्म दात्री हैं। रेडियम धर्मी तत्वों का अन्वेषण भी इस नियम को न तोड़ सका। प्रयोगशाला में कार्य करते हुए फ्रान्स के एक वैज्ञानिक बैकरल ने देखा कि एक धातु यूरेनियम के पास काले कागज में लिपटी हुई फोटो प्लेट रखने से कुछ समय बाद उस पर रासायनिक क्रिया हो जाती है। बैकरल आश्चर्य में पड़ गए और उन्होंने इस पर अन्वेषण कार्य आरम्भ कर दिया। अन्त में उन्हें ज्ञात हुआ कि धातु से कुछ विशेष प्रकार की अदृश्य किरणें निकलती हैं जो फोटो प्लेट पर अपना प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार उन्होंने रेडियम धर्मी तत्व की व्याख्या दी और रेडियम धर्मिता के प्रथम आविष्कार का श्रेय भी प्राप्त किया।

बैकरल के बाद दो अन्य फ्रान्सीसी वैज्ञानिकों पियरी और मैडम क्यूरी ने रेडियम में भी यूरेनियम की भाँति गुण पाये। उन्होंने आस्ट्रिया (Austria) में एक विशेष स्थान पर पाए जाने वाले कोलतार पिचब्लेंड (Pitch Blende) में भी रेडियम धर्मिता पाई। इस कोलतार से उन्होंने एक रेडियम धर्मी तत्व को पृथक भी किया और उसका नाम रेडियम रक्खा। इसके पूर्व यह तत्व किसी को भी ज्ञात न था। यूरेनियम से यह ४० लाख गुना अधिक रेडियम धर्मी है। रेडियम के अन्वेषण

के पश्चात और भी कई रेडियम धर्मी तत्व ज्ञात किए गए। प्रकृति में मिलने वाले ज्ञात रेडियम धर्मी तत्वों की संख्या लगभग ४० है।

इन अन्वेषणों के पश्चात् मानव हृदय संदेह से भर गया कि क्या रेडियम-धर्मी तत्वों से निकलने वाली सभी किरणें समान गुणों से युक्त हैं। किन्तु १६०२ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक रदरफोर्ड ने अपने सफल प्रयोगों से इस संदेह का निवारण कर दिया। उन्होंने दो भिन्न आवेश युक्त प्लेटों के बीच रेडियम धर्मी तत्व से निकलने वाली किरणों का प्रवेश कराया। फिर उन्होंने ज्ञात किया कि ये किरणें अपने मार्ग से थोड़ा भिन्न-भिन्न दिशाओं में विचलित हो जाती हैं। परन्तु एक किरण सदैव अविचलित ही रहती है। इस किरण का नाम उन्होंने 'गामा किरण' रक्खा। और धनात्मक तथा ऋणात्मक प्लेटों की तरफ मुड़ने वाली किरणों को क्रमशः बीटा एवं एलफा किरण का नाम दिया। इन किरणों के ज्ञात होने के पश्चात् इनके गुणों का भी विश्लेषण किया गया।

एलफा किरण—वास्तव में ये किरण नहीं है वरन् छोटे-छोटे कणों से बनी धारायें हैं। यह कण धनात्मक आवेश युक्त होते हैं और इनको एलफा कण कहते हैं। यह कण हाइड्रोजन परमाणु से चार गुना भारी है तथा इनमें आवेश की मात्रा दो हैं। हम जानते हैं हीलियम का परमाणु भार ४ है। तथा इसके वाह्य कक्ष में केवल दो इलेक्ट्रान हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि हीलियम (Helium) नाभियां ही एलफा कण है। रदरफोर्ड ने वर्णवट (Seeing) विधि से स्पष्ट कर दिया था कि एलफा कणों को हीलियम में परिवर्तित किया जासकता है।

ये कण अत्यन्त तीव्र गति से रेडियम धर्मी तत्वों से निकलते हैं। इसकी गति लगभग प्रकाश की गति के दसवें हिस्से के बराबर होती है। इन कणों में नाइट्रोजन व आक्सीजन के परमाणुओं से इलेक्ट्रान निकालने कीभी क्षमता है। ये ठोस पदार्थों में सुगमता से पार हो सकते हैं।

बीटा किरण:—यह वास्तव में किरणें हैं। जो अत्यन्त तीव्र गति से निकलती हैं। इनकी गति, प्रकाश की गति के ६।१० भाग से भी बढ़ जाती है। यह ऋण विद्युत युक्त अति क्षीण भार वाले इलेक्ट्रान हैं। यह ठोस पदार्थों में से एलफा कणों की अपेक्षा १०० गुणा अधिक दूरी पार कर जाते हैं तथा जिस गैस में से गुजरते हैं उसको विद्युत चालक बना देते हैं।

गामा किरण:—यह विद्युत विहीन एक्स (X) रश्मियों की भांति हैं। इनकी गति भी एक्स रश्मियों जितनी ही होती है और यह फोटोग्राफिक प्लेट पर अधिक प्रभाव नहीं डालती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रेडियम-धर्मी वस्तु में से ऊष्मा और वैकरल किरणें लगातार निकलती रहती हैं, परन्तु रेडियम धर्मी तत्व धीरे-धीरे विकीर्ण होता रहता है, और दूसरे नए तत्व में परिवर्तित हो जाता है। रेडियम धर्मी तत्व के विकरण से उत्पन्न नया तत्व भी रेडियम धर्मी गुणों से युक्त होता है। कुछ समय पश्चात् यह भी एक दूसरे तत्व में परिणित हो जाता है। इस प्रकार तत्वों के परिवर्तन की एक शृखंला प्राप्त होती है इस शृखंला को रेडियम-धर्मी शृखंला कहते हैं। इस शृखंला का अन्तिम पदार्थ रेडियम-धर्मी पदार्थ गुणों से युक्त होता है। इस प्रकार एक रेडियम धर्मी पदार्थ कुछ समय के पश्चात् स्वतः अपना अस्तित्व खो देता है। और एक रेडियम धर्मिता विहीन उसका स्थान ले लेता है। परन्तु प्रत्येक रेडियम धर्मी तत्व के समाप्त होने का समय एक सा नहीं होता। इनके पूर्ण समाप्त होने के समय को अर्ध जीवन काल कहते हैं।

किसी भी रेडियम धर्मी तत्व का विकरण उसके वाह्य तापमान, दबाव आदि पर निर्भर नहीं करता वह पूर्व स्वतन्त्रता से विकीर्ण होता है। परिमाणानुपाती क्रिया के नियम से यह बात पूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाती है कि किसी रेडियम-धर्मी तत्व में किसी समय विशेष पर, परमाणुओं की संख्या 'क' हो और 'स' समयान्तर में यदि 'य' परमाणु परिवर्तित हो जाते हैं तो बचे हुए परमाणुओं की संख्या (क-य) होगी। अब यदि थोड़े समय 'तस' में 'तय' परमाणु विकीर्ण होते हैं। परिमाणानुपाती क्रिया के नियम से

$$\frac{तय}{तस} = स्थ\ (क\text{-}य)$$

अथवा
$$\frac{\text{तय}}{(\text{क-य})} = \text{स्थ} \times \text{त स}$$

जहाँ 'स्थ' परिवर्तन गुणांक कहलाता है। समीकरण २ को चलन कलन (Calculas) एवं लघु विधि (og Methed) से हल करने पर हम पाते हैं।

$$\text{स्थ} = \frac{२.३०३}{\text{स}} \text{लघु} \frac{\text{क}}{\text{क-य}}$$

अब यदि $\frac{\text{क}}{\text{य}}$=२ हो जाये तथा ऐसा होने में यदि स' समय लगे तो—

$$\text{स्थ} = \frac{२.३०३}{\text{स}'} \text{लघु } २ = \frac{०.६९३}{\text{स}'} \text{ अथवा}$$

$$\text{स}' = \frac{०.६९३}{\text{स्थ}}$$

समीकरण (४) से स्पष्ट है कि समय स' अर्ध जीवन काल (Half life eriod) केवल स्थ पर ही निर्भर करता है।

१९१९ में लार्ड रदरफोर्ड ने परमाणुओं को कृत्रिम रूप से तोड़ने पर विचार किया। यह कार्य इतना जटिल था कि सफलता प्राप्ति में वर्षों लग गए। परमाणु को तोड़ने के लिए ऐसी गोली की आवश्यकता थी जो नाभि से छोटी परन्तु भारी हो। इस कार्य के लिए एलफाकण उपयुक्त सिद्ध हुआ। लार्ड रदर फोर्ड ने सबसे पहले नाइ-ट्रोजन के केन्द्रक नाभिक को तोड़ने में सफलता प्रात की उसके बाद १९३२ में लारेन्स ने एक परमाणु मशीनगन का आविष्कार किया। जो इस कार्य के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई।

१९३३ में चैडविक ने कोरीलियम के परमाणु को विभाजित कर एक नए कण का आविष्कार किया जिसे न्यू-ट्रान कहते हैं। सन् १९३९ में जर्मन वैज्ञानिक ओटोहान ने इसी न्यूट्रान से रेडियम धर्मी तत्व यूरेनियम के नाभिक को तोड़ने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने देखा जब यूरे-नियम २३५ को विभाजित किया जाता है तो वह दो भागों में विभाजित हो जाता है जब न्यूट्रान यूरेनियम के नाभिक से टकराता है तो उसको अस्थायी बना देता है। जिससे वह दो भागों में बंट जाता है। जैसे कि एन्टिमनी व कोलम्बियम। कभी २ नाभिक के टूटने से बेरियम और क्रिप्टन उत्पन्न होते हैं।

नाभिक के टूटने पर उसमें से तीन न्यूट्रान स्वतंत्र हो जाते हैं। जो पास के दूसरे परमाणुओं को तोड़ते हैं। इस प्रकार परमाणु तोड़ने की क्रिया बराबर जारी रहती है। इसे शृंखल प्रतिक्रिया कहते हैं। किन्तु इस प्रकार नाभिक को तोड़ने से अत्यधिक शक्ति निकलती है। यूरेनियम के विभाजन ने ही परमाणु बम को जन्म दिया।

आज रेडियम धर्मी तत्वों का मानव जीवन में अधिक महत्व है। यह मनुष्य की अनेक कठिनाइयों को दूर करने में भी सफल हुए हैं। कृषि, उद्योग और चिकित्सा में रेडियम धर्मी तत्वों ने मानव की बड़ी सहायता की है। यदि आज मानव को परमाणु शक्ति के नियंत्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाये तो उसका प्रयोग कोयले और पेट्रोल के स्थान पर किया जा सकता है। तब हमारी इंधन सम्बन्धी सम्पूर्ण कठिनाइयों पर विजय प्रात हो सकेगी और तब मानव जीवन में एक नया मोड़ आ जायगा। आज एक तरफ हमें परमाणु-बम का भीषण एवं भयावह गर्जन सुनाई पड़ता है, जो सम्भवतः भगवान शंकर के प्रलयंङ्कारी नृत्य की सूचना है और दूसरी ओर परमाणु शक्ति के शान्ति मय प्रयोगों द्वारा स्वप्न लोक पहुँचने का मार्ग भी दृष्टि गोचर होता है। मानव किधर जायेगा यही विचारणीय है।

——×——

भूगर्भी जल भंडार

पानी—मीठा पानी—अत्यन्त मूल्यवान है। आज संसार के लगभग सभी देशों में पानी की कमी अनुभव की जा रही है। ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें मौसम के अनुसार अथवा सदा ही पानी की तंगी बनी रहती है। अपने देश के विभिन्न भागों में गर्मी के दिनों में कुयें और जल सोते सूख जाते हैं, जिससे मनुष्यों को बहुत कष्ट भोगना पड़ता है और हजारों पशु मर जाते हैं।

आर्थिक विकास की आरम्भिक अवस्थाओं में सिंचाई के लिए जो पानी उपयोग में लाया जाता है, उसकी मात्रा अन्य काम में आने वाले जल से अधिक होती है। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, इसमें वृद्धि नहीं होती। उद्योगों की विभिन्न क्रियाओं में पानी की जो मात्रा इस्तेमाल की जाती है, वह औद्योगीकरण की प्रगति के साथ-साथ तेजी से बढ़ती है और अंत में सिंचाई के लिये इस्तेमाल की जाने वाली मात्रा से भी अधिक हो जाती है। हिसाब लगाया गया है कि आज संसार में प्रत्येक मनुष्य के पीछे ६०० घन मीटर पानी प्रति वर्ष अथवा १,८०० लिटर पानी प्रति दिन इस्तेमाल किया जाना चाहिये। पर संयुक्त राज्य अमरीका ही अकेला देश है, जहां पानी का वास्तविक उपयोग इस मात्रा से अधिक हो रहा है। पानी के पुराने स्रोत मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं, इसलिये संसार के सभी देशों में पानी के नये स्रोत खोज निकालने के लिए बहुत प्रयत्न किया जा रहा है।

पिछले दिनों झरनों, नदियों और झीलों के पानी को इस्तेमाल करने और धरती के भीतर के स्रोतों से पानी निकालने के अतिरिक्त ऐसे उपाय निकाले गये हैं, जिनके द्वारा समुद्र से मीठा पानी तैयार किया जा सकता है और बादलों से ५-१५ प्रतिशत अधिक वर्षा प्राप्त की जा सकती है। पर इन दोनों उपायों की सीमायें हैं। समुद्र से मीठा पानी तैयार करने का काम इतना मंहगा है कि उसे इस्तेमाल में नहीं लाया जा सकता; और बादलों को 'दुहने' से अतिरिक्त वर्षा ऐसे क्षेत्रों पर हो सकती है, जहां अधिक पानी की आवश्यकता न हो।

नया ज्ञान और नया शिल्प

अभी हाल तक पानी के संचय और इस्तेमाल करने के संबंध में यही सम्भव समझा जाता था कि नदी घाटियों का विकास किया जाए। इसका अर्थ यह होता था कि जिन सूखे रेगिस्तानी क्षेत्रों में नदियां नहीं हैं उनका कभी विकास नहीं हो सकता और उनका भविष्य सदा अंधकारमय रहेगा। पर मनुष्य की प्रतिभा और उसकी शिल्पिक प्रगति शांत बैठने वाली नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में, धीरे-धीरे, धरती में छेद करने तथा दूसरी भूगर्भिक क्रियाओं से भूतल के नीचे के पानी के बारे में जानकारी और सूचनाएं इकट्ठी होती रही हैं।

यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया और इटली की सीमाओं के कार्स्ट क्षेत्र में, जहां नदियां पृथ्वी के भीतर समा जाती हैं, धरातल के नीचे अनेक गुफाओं का पता चला है। इन गुफाओं में भूगर्भीय जल का निरीक्षण किया जा सका है।

विशेष जल भंडार

पृथ्वी के गर्भ में जल के ऐसे भंडारों का पता चला हैं, जो समझा जाता है कि पृथ्वी के इतिहास के हिमयुग के अंतिम कालों में, आज से २०-१०० हजार वर्ष पहले, बने थे। पृथ्वी के धरातल के ऊपर इस प्रकार के पुरातन फासिल जल के अवशेष उत्तरी अमरीका की झीलें हैं। यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी के नीचे पानी के ये भंडार पृथ्वी के ऊपर के पानी के भंडार से ५-१० गुने बड़े हैं।

भूगर्भीय जल के भंडार, ऊपर की नदियों और मीठे पानी के भंडारों को मिला कर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है। प्रतिवर्ष जो पानी आता-जाता है उसके कारण उनके तल में बहुत थोड़ा परिवर्तन होता है। यदि

कई वर्ष लगातार सूखा पड़ता रहता है तो नदियों का पानी बहुत अधिक घट जाता है। पर भूगर्भी जल भंडार, माध्यम आकार के भी, जल्दी जलहीन नहीं होते। सूखे के दिनों में भूगर्भी पानी अपनी मात्रा की अति विशालता और गति की मंदता के कारण नदियों के जल का मुख्य स्रोत होता है। वास्तव में नदियों में जो जल बहता है, उसका एक-तिहाई से अधिक भूगर्भी जल स्रोतों से आता है।

धरती के भीतर का पानी बहुत सी चट्टानी बनावटों में होकर छनता है। इसलिये वह अपेक्षाकृत शुद्ध होता है। इसके इस्तेमाल से जलवाहित बीमारियों के फैलने का खतरा नहीं होता। उसमें जो खनिज पदार्थ घुले होते हैं, अधिकांश दशाओं में वे मनुष्य, पशु, पौधों और धरती के लिये लाभकारी होते हैं। जिस धरती की सिचांई भूगर्भी जल से की जाती है, उसे नदी सिंचित धरती की अपेक्षा कम खाद की आवश्यकता होती है। उल्लेखनीय है कि ऐसे ही पानी के इस्तेमाल से मनुष्य को यह पता चला कि फ्लोरीन मनुष्य के दांतों के लिए लाभकारी है और उनकी रक्षा करती है। इस ज्ञान का उपयोग अब बहुत से देशों में किया जा रहा है। वहां पीने के पानी में फ्लोरीन अलग से मिलाई जाती है।

पृथ्वी के नीचे भूगर्भी जल भंडार केवल ध्रुव के निकट के अतिरिक्त और कहीं नहीं जमता। गर्म देशों में वह गर्म नहीं होता। इस कारण सर्दियों में निकाले गये पानी को गर्म करने की आवश्यकता नहीं होती और गर्मियों में निकाला गया पानी ठंडा करने के काम में लाया जा सकता है। भूगर्भी जल भन्डार वायु मण्डल के सम्पर्क में नहीं आते। परमाणु युग में यह महत्वपूर्ण बात है। यह पानी वायुमंडल में उपस्थित परमाणु कणों से बचा रहता है और परमाणु शक्ति उत्पादक उपकरणों को शीतल करने के काम में लाया जा सकता है। इन भंडारों पर हवाई हमलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इनका पानी उड़ने के कारण छीजता नहीं। यदि पानी का स्तर ऊंचा उठ जाता है तो पम्प से पानी निकालकर उसे इच्छानुसार नीचा किया जा सकता है।

यदि इन भूगर्भी जल भंडारों में पानी कम हो जाता है तो उन्हें धरातली पानी से भरा जा सकता है। सूखे रेगिस्तानी क्षेत्रों में बाढ़ के पानी को धरती के भीतर इस प्रकार भर कर उसे भावी उपयोग के लिये रखा जा सकता है। आर्थिक और इंजीनियरिंग दृष्टि से भी जल के भूगर्भी संचय में लाभ है। धरातल-जल उपयोग की बहुत सी योजनायें, विशेषतया बाँध, उस समय तक लाभकारी नहीं हो सकतीं, जब तक कि वे बिल्कुल पूरी नहीं हो जातीं। और जब वे पूरी हो जाती हैं, तो अचानक बहुत सा पानी प्राप्त हो जाता हैं, जिसके पूर्ण उपयोग में काफी समय लगता है। भूगर्भी जल का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है।

जल के ये भूगर्भी भंडार पृथ्वी पर से दिखायी नहीं देते। इसलिये उन्हें खोजना होता है। इस काम के लिये मनुष्य ने वृक्ष की टहनी से लेकर इलैक्ट्रोनिक पेंडुलम तक अनेक उपकरण बनाये हैं, और यह उनका उपयोग करता है। पानी के खोजने का काम बहुत सी बातों में पेट्रोलियम के खोजने के काम के समान है। दोनों की खोज में जो भौमिकी और भौतिक सिद्धान्त काम में आते हैं, वे एक ही हैं। तेल की खोज में उसकी गहरी स्थिति (३,०००-७,००० मीटर) के कारण धरातल-कम्पन और धराकर्षण विधियां इस्तेमाल की जाती हैं, जबकि पानी (५००-१,५०० मीटर) की खोज में भूविद्युतीय रीतियाँ काम में लायी जाती हैं। ये रीतियां अनेक तरह से इस्तेमाल की जा सकती हैं तथा सस्ती और सरल हैं। भूगर्भी जल भंडार का काफी पूर्ण चित्र भौमिकी तिथि निश्चयन, भूरसायन, सूक्ष्मदर्शन, विद्युतीय लागिङ्ग और दूसरी तरकीबों के साथ धरातली छानबीन और भूभौतिकी खोज से मिली जानकारी को मिलाकर तैयार किया जाता है।

बीरशेवा में कुवें

पिछली दो पीढ़ियों में नल धंसाने और पानी निकालने के पम्प लगाने के उल्लेखनीय शिल्पों में प्रगति हुई हैं। यरूशलम के दक्षिण बीरशेवा के क्षेत्र में ६०० मीटर गहरे नल कुवें बनाये गये हैं और २००-२५० मीटर गहरे

जलस्तर से १००-५०० घन मीटर पानी प्रति घंटे निकालने का प्रबंध किया गया है। धरती के ऊपर आकर इस पानी की जो लागत पड़ती है, वह इतनी कम है कि इस पानी को शहरी और औद्योगिक कामों के अलावा, सिंचाई के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यदि मनुष्य को भूगर्भी पानी काफी मात्रा में प्राप्त हो जाये, तो पृथ्वी के वे अधसूखे क्षेत्र, जहाँ कृषि की लगभग आदर्श परिस्थितियां उपस्थित हैं, खाद्य और औद्योगिक फसलों से लहलहा सकते हैं। आजकल मनुष्य की जल-आवश्यकताओं का ६० प्रतिशत भाग धरातली जल साधनों से पूरा किया जा रहा है। ये साधन पृथ्वी पर प्राप्य मीठे पानी के सम्पूर्ण साधनों के अधिक से अधिक लगभग २० प्रतिशत हैं।

जल की उपस्थिति के विषय में विभिन्न क्षेत्रों की चट्टानों की बनावटों और स्थितियों से अनुमान लगाया जाता है। नदी-तलछट से बनी घाटियों (जैसे गंगा का मैदान) और टरशरी तथा जूरा-क्रिटेशस रेतिया-पत्थर के क्षेत्रों (जैसे सौराष्ट्र और राजस्थान) में नलकुवें बनाने से लिये काफी पानी मिल सकता है। दक्षिण के समुद्री किनारे पर और हिमालय की तलहटी में भी ऐसा भूगर्भी पानी होने की संभावना है, जो कुँवों द्वारा निकाला जा सकता है।

भूगर्भी पानी का उपयोग, सर्वेक्षण और खोजबीन के बाद ही किया जा सकता है। देश की बढ़ती हुई पानी की मांग को पूरा करने के लिये यह स्वाभाविक ही है कि सरकार और विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं द्वारा मिलजुल कर सभी प्रकार के वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रयत्न किये जाएँ।

स्पुत्निक अपने कक्ष पर क्यों घूमता है ?

ऐसा कोणीय भारवेश की शक्ति स्थिति के नियम के अनुसार होता है। स्पुत्निक जब वायुमण्डल के ऊपरी स्तरों में छोड़े गये थे, तब उन्हें ८,००० मीटर प्रति सेकेण्ड की गति प्रदान की गई थी। ऐसे स्पुत्निक की सारी शक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को विफल कर देती है।

स्पुत्निक अपने कक्ष पर लट्टू की तरह तब तक घूमता रहेगा, जब तक उसकी गति समाप्त न हो जाए। अगर स्पुत्निक को किसी ऐसे कक्ष में पहुँचा दिया जाए जो विषुवत् रेखा के किसी विशेष कोण पर हो, जैसा कि सोवियत स्पुत्निक को पहुँचाया गया था, तो स्पुत्निक हमारी पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के ऊपर उड़ेगा, क्योंकि पृथ्वी भी घूमती है।

यह विदित है कि पृथ्वी की दूरी के साथ-साथ पृथ्वी के इर्दगिर्द उपग्रह के घूमने की अवधि बढ़ती है। यदि १७०० किलोमीटर की उंचाई पर उड़ने वाला उपग्रह ९६ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है, तो चन्द्रमा को जो ४,००,००० किलोमीटर की दूरी पर पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है, परिक्रमा पूरी करने में प्रायः ४ सप्ताह लगेंगे। इसलिए यह स्पष्ट है कि पृथ्वी से किसी खास दूरी पर स्पुत्निक पृथ्वी की परिक्रमा ठीक २४ घण्टे में कर लेगा।

यह अनुमान लगाया गया है कि ऐसा करने के लिए स्पुत्निक को, पृथ्वी के ऊपर विषुवत् रेखा की सतह से प्रायः ३५,८०० किलोमीटर की दूरी पर घूमना होगा। इस दशा में स्पुत्निक की कोणीय गति पृथ्वी की कोणीय गति के सामान होगी। और इसका परिणाम यह होगा कि स्पुत्निक पृथ्वी के एक विंदु पर मडराता जान पड़ेगा। यथार्थ बात यह होगी कि पृथ्वी के कक्ष के साथ स्पुत्निक के कक्ष का 'सन्निपात 'होगा।

जहां तक इस प्रश्न का सम्बंध है कि सूर्य के इर्दगिर्द पृथ्वी की परिक्रमा में स्पुत्निक पृथ्वी का अनुगमन क्यों करता है, इसका कारण है हमारी पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति। इसमें शक नहीं चन्द्रमा भी जो प्रवृत उपग्रह है, अपने समान कक्ष में सूर्य के इर्दगिर्द पृथ्वी का अनुगमन करता है।

अन्तरिक्ष युग में प्लास्टिक का उपयोग

अन्तरिक्षगामी मनुष्य-चालित यान जब पहली बार सफलतापूर्वक वापस लौट आएगा तब सम्भवतः यह मनुष्य की सबसे बड़ी विजय समझी जाएगी। इस बात की भी सम्भावना है कि इंजिनियरिंग की दृष्टि से प्लास्टिक उद्योग के लिए भी यह एक बड़ी सफलता होगी, क्योंकि अन्तरिक्ष गामी सर्वप्रथम यान के अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग सम्भवतः प्लास्टिक से बने होंगे।

आज के नये राकेट युग की पहले से ही यह मांग है कि ताप-निरोधक समस्या को हल करने के लिए नई सम्भावनाओं की खोज की जाए। इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए नये-नये पदार्थों और नई नई परीक्षणात्मक विधियों का विकास किया जा रहा है। ताप-निरोधक पदार्थों के विकास से सम्बन्धित अनुसन्धान में प्लास्टिक का सबसे पहला नम्बर है। उच्चतम ताप का प्रभावशाली ढंग से सामना करने में प्लास्टिक ने अन्य सभी पदार्थों को अल्पकाल में पीछे छोड़ दिया है।

ताप सहारने की समस्या

दूरमारक अस्त्रों एवं अन्तरिक्षगामी यानों का विकास करने में सबसे बड़ी बाधा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण परिधि में विना जले पुनः प्रवेश की है। इसे कुछ हद तक प्लास्टिक द्वारा हल कर लिया गया है। पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश के समय इतना अधिक ताप उत्पन्न होता है जिसका मनुष्य को कभी पहले सामना नहीं करना पड़ा है। १५ हजार मील प्रति घंटे की गति से जब कोई वस्तु पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रविष्ट होती है तो वायुमण्डल के तीव्र घर्षण के फलस्वरूप सूर्य के ताप से भी तीन गुना अधिक, अर्थात् २०,००० से ३०,००० डिग्री फारेनहाइट तक, ताप उत्पन्न हो जाता है।

उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली बड़ी भट्ठी में केवल २६०० डिग्री फारेनहाइट तक का ताप होता है और सबसे अधिक तापमान उत्पन्न करने की क्षमता औक्सीऐसेटीलीन टौर्च में होती है, फिर भी यह ६००० से ८००० डिग्री फारेनहाइट से अधिक नहीं पहुँच पाती।

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण परिधि में पुनः प्रवेश करते समय केवल ताप की ही समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है अपितु शरीर को उसी प्रकार का धक्का सहन करना पड़ता है, जैसा धक्का ६० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से भागने वाली मोटरकार के ईंटों की बनी ठोस दिवार से टकराने पर लगता है। अन्तरिक्ष से कृत्रिम उपग्रह को पृथ्वी पर वापस लाने के लिए उक्त दोनों समस्याओं को हल करना जरूरी है। कृत्रिम उपग्रह को छोड़ने के समय उक्त दो समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता हैं, क्योंकि ऊपर जाते समय राकेट की गति इतनी तेज नहीं होती है।

राकेट की नाक और 'ब्लास्ट ट्यूब' में ताप सहारने की सबसे अधिक क्षमता होनी चाहिये क्योंकि वापस लौटते समय इन्हीं हिस्सों को ५,००० से ८,००० डिग्री फारेनहाइट ताप-मान का कई मिनट तक सामना करना पड़ता है।

ताप-निरोधक कोन, ब्लास्ट ट्यूब तथा राकेट के अन्य हिस्सों को आजकल फिनोलिक नामी रासायनिक पदार्थ से तैयार किया जाता है।

आजकल अमेरिका में राकेट और दूरमारक अस्त्रों में प्रयुक्त होने वाले तापनिरोधक पदार्थों से बने विभिन्न पुर्जों का मूल्य ५ डालर प्रति पौन्ड से लेकर २५ डालर प्रति पौन्ड तक है।

ताप निरोधक प्लास्टिक से विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक वस्तुयें तैयार करने वाली अमेरिका की दो प्रमुख प्लास्टिक निर्माता कम्पनियों के नाम हैं—विलमिंगटन (डेलावेयर) हेविग इण्डस्ट्रीज, इनकौरपोरेटेड तथा सिनसिनाटी (ओहायो) की सिनसिनाटी टैस्टिंग एन्ड रिसर्च लेबोरेटरी। चूंकि हेविग कम्पनी में विभिन्न आकार-प्रकार की ताप-निरोधक प्लास्टिक वस्तुयें तैयार की जाती हैं। इस कम्पनी ने विभिन्न प्रकार के साँचों पर ४२,००० पौंड वजन एवं १२ फुट व्यास तक की वस्तुयें तैयार की हैं। हेविग कम्पनी ने विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों

को प्रयुक्त कर के उच्चतापमान सहन करने की क्षमता रखने वाले अनेक पदार्थ तैयार किए हैं और इनका नामकरण नक्षत्रों के नाम पर किया है।

सान्ता मोनिका (कैलिफोर्निया) की डगलस एयरक्राफ्ट कम्पनी ने सम्पूर्ण प्लास्टिक निर्मित दूरमारक अस्त्र तैयार करने के बारे में प्रारम्भिक कार्य किया है। कंपनी के अधिकारियों ने बताया है कि प्लास्टिक से दूरमारक अस्त्र तैयार करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि 'फिनोलिक तथा इपोक्सी के मिश्रण में लचक की कमी है।'

सिनसिनाटी टैस्टिंग तथा रिसर्च संस्था ने फिनोलिक नाम के प्लास्टिक पदार्थ से राकेट का ४०० पौंड वजनी कोन तैयार कर राकेट-विज्ञान की प्रगति में नाटकीय योग प्रदान किया है।

इस राकेट के अग्रभाग को १६ हिस्सों में, खास प्रकार के सांचों में तैयार किया गया है। इन सभी भागों को इपोक्सी के मजबूत प्लास्टर द्वारा एक दूसरे के साथ जोड़ा गया है। यद्यपि यह प्लास्टर बहुत मजबूत नहीं होता परन्तु पृथ्वी के वायुमन्डल में पुनः प्रवेश करते समय धक्का लगने और तापमान बढ़ने पर फिनोलिक पदार्थ मजबूती के साथ चिपक जाता है और इस प्रकार जोड़ों पर ये जोड़ बहुत मजबूत सिद्ध होते हैं।

ऐरियो जैट कम्पनी के प्लास्टिक ढांचों की निर्माण शाखा के श्री जौर्ज ऐप्सटीन ने यह बताया है कि फिनोलिक को उच्चतम तापमान के प्रयोगों में इसलिये विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि प्लास्टिक उद्योग में यह बहुत समय से इस्तेमाल किया जा रहा है।

उक्त फर्मों के अतिरिक्त कई और फर्मों ने इस क्षेत्र में काम किया है। इन कम्पनियों ने ताप सम्बन्धी रसायन शास्त्र की विशिष्ट जानकारी को प्रयुक्त करके ताप-निरोधक क्षेत्र के बारे में उल्लेखनीय सफलतायें प्राप्त की है। अब तक इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों को बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है।

कुछ वर्ष पहले जब संसार में दूरमारक अस्त्रों के युग का उदय हुआ था, तब वैज्ञानिकों को उच्च ताप के बारे में लगभग कुछ भी मालूम नहीं था। परीक्षण की सही विधियों का पूर्ण अभाव था। तब नमूनों की जैट ब्लास्ट या 'औक्सीएसेटीलीन टार्च' द्वारा परीक्षा की जाती थी। ये परीक्षण बहुत कम सफल होते थे। अतः इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा किसी खास काम के लिये विशिष्ट पदार्थ तैयार कर पाना अत्यधिक कठिन था।

आज भी हमें उनके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। लेकिन अनुसन्धान सम्बन्धी विस्तृत कार्य क्रमों को शुरू किया गया है। जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी तथा 'एवको मैनुफैक्चरिंग कम्पनी' को ताप अनुसन्धान सम्बन्धी अलग-अलग ठेके दे दिये गये हैं। इन ठेकों द्वारा ताप-इंजिनियरिंग के विस्तृत अनुसन्धान कार्यक्रम को प्रोत्साहन मिलेगा। इस अनुसन्धान के फलस्वरूप अन्ततोगत्वा मनुष्य द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचने और वापस लौटने में सहायता मिलेगी।

आज प्रचण्ड ताप-सहारने की क्षमता रखने वाले प्लास्टिक के निर्माण पर जो सबसे अधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है, उसके फलस्वरूप निश्चय ही ऐसे पदार्थों और विधियों का विकास होगा जिन्हें उच्चतापमान और कम तापमान में भी प्रयुक्त किया जा सके।

'सिनसिनाटी टैस्टिंग एण्ड रिसर्च लेबोरेटरीज' आज कल इस तरह के जैट टरबाइन ब्लेडों (जेट इंजनों के पंखों) का निर्माण कर रही है जो ५०० डिग्री फारेनहाइट से भी अधिक तापमान का लगातार मुकाबला कर सके। फिनोलिक नामी रासायनिक पदार्थ से तैयार हुये पंखों का वजन इस्पात के पंखों के वजन का एक चौथाई होता है। चूँकि वजन में यह ब्लेड हलके होंगे, इसलिए बड़े पैमाने पर उन्हें तैयार करने पर कम खर्च बैठेगा।

प्लास्टिक के एक विशेषज्ञ का कहना है कि निकट भविष्य में इंजनों के पिस्टन तथा सिलिन्डर आदि भी प्लास्टिक से बनने लगेंगे।

विद्युदणु उद्योग के बहुत से क्षेत्रों में उच्च तापमान सहारने की क्षमता रखने वाले प्लास्टिक को प्रयुक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ 'कपैसीटर' नामी विद्युदणु उपकरण के निर्माण में उच्च तापमान सहन करने वाले प्लास्टिक पदार्थों को प्रयुक्त किया जा सकता है।

१९५१ में फिनोलिक पदार्थ के सम्बन्ध में किए गए अनुसंधान का एक मुख्य लक्ष्य ऐसा पदार्थ तैयार करना था जो आध घन्टे तक ५०० डिग्री फारेनहाइट का तापमान सहार सके और जिसकी शक्ति प्रति वर्ग इंच ३०,००० पौन्ड जितनी हो। लेकिन इन वर्षों में फिनोलिक से अनेक प्रकार के प्लास्टिक तैयार कर लिए गए हैं जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध सी टी एल्स ९१–एल डी है। २०० घन्टे तक ५०० डिग्री फारेनहाइट तापमान में रहने के बाद इस पदार्थ की शक्ति प्रति वर्ग इंच ६०,००० पौन्ड जितनी हो जाती है। सहज ही यह प्रश्न उठता है कि हमारा अगला लक्ष्य क्या है? उत्तर स्पष्ट है: चन्द्रमा पर पहुँच कर वापस लौटना।

—'मौडर्न प्लास्टिक्स' पत्रिका से उद्धृत

क्या आप जानते हैं?

१—आदर्श पशु ग्राम योजना में मवेशियों की नस्ल आदि सुधारने का काम होता है। प्रजनन के अयोग्य सांड़ों को बधियाना, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों में गायों में गर्भाधान कराना (प्रत्येक केन्द्र में ५,००० गायों में गर्भाधान कराने का लक्ष्य है), सरकारी सहायता से बछड़े पालना, चारा पैदा कराना और सहकारिता के आधार पर बछड़ों आदि को बेचना आदि काम इस योजना के अन्तर्गत होते हैं।

२—पहली आयोजना में ५५५ आदर्श पशु ग्राम योजनायें चलायी गयीं और १४६ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र खोले गये। दूसरी आयोजना में १,२५८ आदर्श पशु ग्राम योजना चलाने और २४५ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र तथा २५४ विस्तार केंद्र खोलने का लक्ष्य है! इस अवधि में अच्छी नस्ल के २२,००० सांड, ६,५०,००० बैल और १०,००,००० गाय पैदा कराने का कार्यक्रम है।

३—मवेशियों के कृत्रिम गर्भाधान का तरीका अधिकांश लोगों ने स्वीकार कर लिया है और इसे लागू करने के लिये राज्यों ने आवश्यक कानून भी बना दिए हैं।

४—गो सदन योजना का लक्ष्य अयोग्य मवेशियों को अलग करना है। दूसरी आयोजना में ३०,००० मवेशियों के लिये ६० गो सदन खोलने का विचार है। इसमें से २४ गो सदन, गौशाला पिंजरापोल आदि सार्वजनिक संस्थाओं के अंतर्गत रहेंगे।

५—शहरों को अच्छा दूध देने और अच्छी नस्ल के मवेशी पैदा कराने के लिये दूसरी आयोजना में चुनी हुई ३४६ गौशालाओं को बढ़ाने की योजना है। प्रत्येक गौशाला में अच्छी नस्ल की २० गाएं और १ सांड रहेगा। इनके अलावा गौशाली की इमारत, जमीन और अन्य सामान के लिये तथा गाय और साँड पर होने वाले खर्च के लिए आर्थिक सहायता दी जाएगी। साथ ही चुनी हुई गायों को पालने के लिए भी आर्थिक सहायता और सलाह दी जाएगी।

६—१९५८ में अखिल भारतीय पशु प्रदर्शनी समिति नियुक्त की गयी थी, जिसने अब तक अनेक प्रदर्शनियाँ की हैं और अच्छे मवेशी पालने वालों को नकद पुरस्कार, कप तथा ट्राफी दी हैं।'

७—१९५२ में केंद्रीय गोसंवर्धन परिषद् बनायी गयी थी, जो देश की पशु-सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये केंद्रीय तथा राज्य सरकारों को सलाह देती है और राज्य तथा क्षेत्रीय गौशाला सङ्घों को सुव्यवस्थित ढङ्ग से उन्नति करने में सहायता करती है।

विश्व के दस अकलमन्द जानवर

कुछ साल पहले न्यूयार्क के चिड़िया घर के संचालक डा० ब्लार ने ३२ वर्ष जानवरों का अध्ययन करने के बाद एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने क्रमशः दस ऐसे जानवरों के नाम दिये जिन्हें वे अत्यधिक बुद्धिमान समझते हैं। इन जानवरों को उन्होंने स्वाभाविक सोचने की शक्ति, उचित अनुचित समझने की शक्ति, नकल करने तथा सिखाये जाने योग्य होने के क्रम से रक्खा। ये दस जानवर इस प्रकार हैं—बनमानुष, औरेंग-उटांग (एक बड़ा बन्दर), हाथी, गोरिल्ला, पालतू कुत्ता, ऊद- बिलाव, पालतू घोड़ा, सी लायन, भालू और पालतू बिल्ली।

बनमानुष के विषय में इनका कहना है कि हजारों वर्षों से कुत्ते को मनुष्य समाज से जितनी घनिष्टता मिली। यदि इतना ही घनिष्ट सम्पर्क बनमानुष को मिल पाता तो हम निश्चय ही इस जानवर में एक मानसिक प्रगति देख सकते थे।

इसके कुछ करामात उन्होंने बताये, जिसमें सब से बड़ी करामात तो यह है कि वह बड़ी कुशलता से कपड़े सिल सकता है। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि—कोण से कई ऐसी मनोरंजक परीक्षायें हुईं जिनसे यह पता चलता है कि बनमानुष में उचित अनुचित सोचने तथा अनुमान लगाने की शक्ति बड़ी तीव्र होती है।

चिड़िया घर के रक्षकों ने पिंजड़े के ऊपर एक केला ऐसी जगह रख दिया जहाँ बनमानुष नहीं पहुँच सकता था। इसके साथ ही उन्होंने जमीन पर लोहे की दो छड़ें रख दी जो आपस में जोड़ी जा सकती थीं। पहले बनमानुष ने एक छड़ से उस केले को गिराना चाहा, पर छड़ छोटी होने के कारण केला उसे न मिल सका। एक मिनट तक वह चुपचाप खड़ा सोचता रहा और तब उसने तुरंत दूसरी छड़ उठा ली। दो चार मिनट तक वह दोनों छड़ों को घुमाता रहा और बाद में उसने उन्हें जोड़ ही तो लिया। अब केला उसे मिल गया।

इसी प्रकार एक बार फिर पिंजड़े के ऊपर केला रख दिया गया। इस बार लोहे की छड़ें नही रक्खी गईं। थोड़ी देर तक बनमानुष व्यर्थ चेष्टा करता रहा, बाद में चुपचाप खड़ा सोचने लगा और तब चारों ओर घूमने के बाद एकाएक पिंजड़े के एक कोने से एक बक्सा उठा लाया और उस पर चढ़ कर मजे से केला खाने लगा। ऐसे ही एक बार केला इतनी उंचाई पर रक्खा गया कि एक बक्से पर चढ़ने से वह नहीं मिल सकता था। इस बार मियां बनमानुष ने कई बक्से एक-दूसरे पर जमा लिया और सीढ़ी बनाकर चढ़ गये।

डाक्टरों का कहना है कि अपनी योजना के अनुसार उपस्थित साधनों को इस प्रकार संयोजित करना, जो वर्तमान परिस्थितियों के लिए उपयुक्त सिद्ध हो। बनमानुषों की ही विशेषता है। औरेंग-उटांग भी इन्हीं की जाति का होने के कारण ऐसी ही विशेषतायें रखता है। एक बार एक गज लम्बे एक लोहे के पाइप के बीच में एक केला रख कर इसके पिंजड़े में छोड़ दिया गया। जब वह बाहर से घूमकर आया तब उसे केले की महक मिली।

पाइप में उसने केला देख लिया, पर थोड़ी देर तक पंजों से निकालते रहने के बाद जब वह असफल रहा तब पाइप नीचे रख कर वह पिंजड़े के चारों ओर देखने लगा। एक कोने में न जाने उसे क्या दिखाई पड़ा। वह

गोरिला

जाकर उस जगह को खोदने लगा। थोड़ी देर तक खोदने के बाद उसे वह चीज मिल गई जिसे वह ढूंढ़ रहा था। वह थी कांटा लगी हुई एक छड़ी, जिसे रक्षकों ने पहले ही छिपा कर रख दिया था। अब क्या था, बड़े मजे से उटांग साहब ने पाइप के अंदर छड़ी डाल कर केला निकाल लिया और खाने लगे। यह सब कार्य उसने २० मिनट में कर डाला। बाद में उसने यह भी पता लगा लिया कि छड़ी में काँटे की कोई जरूरत नहीं है और तब से आधे मिनट के अंदर ही वह ऐसे कार्य कर लेता था।

डा० ब्लार का कहना है कि तीसरा नम्बर गोरिल्ला का होना चाहिए पर वह ऐसा खतरनाक जानवर है कि अधिक दिनों तक उसे कैद रख सकना बड़ा कठिन है इसलिए हाथी को उन्होंने तीसरा नम्बर दिया क्योंकि व पशु जगत का सबसे बड़ा दार्शनिक है।

अन्य जानवर न तो इतने बलवान ही हैं और न ही किसी को पकड़ने में इतनी कठिनाई होती है जितनी कि हाथी को। और न ही किसी ने इतनी जल्दी मनुष्य व चरम शक्ति का विरोध करने में अपनी असमर्थता प्रक कर उसी की छत्रछाया में, अपनी सर्वोच्च भलाई देख व आने का प्रयत्न किया जितना कि हाथी ने।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बर्मा के काष्ठवनों में दिखा पड़ता है। जहाँ बड़े से बड़े हाथियों को पकड़ कर ए महीने में सिखा कर इतना पक्का कर दिया जाता है कि वे विभिन्न प्रकार के १६ कार्य बड़ी कुशलता से क लेते हैं। बिल्ली की जाति के पशुओं में केवल कुत्ते और घोड़े ही अपवाद हैं जिन्हें किसी भी कार्य के लि अभ्यस्त किया जा सकता है। पर हाथी किसी भी शिक्ष के लिए कभी बूढ़ नहीं दिखाई पड़ता। वह पशु-जगत क चमकता हुआ एक सितारा है।

डा० ब्लार इसी कारण हाथियों की स्मरण शक्ति की प्रसंशा करने से अपने को न रोक सके। हाथी गलतियों को कभी नहीं भूलता। उसके उचित कार्य करने की शक्ति के सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक घटनायें इस प्रकार हैं—चिड़िया घर का एक हाथी सप्ताह के अन्त में आए हुए कुछ दर्शकों द्वारा दिए गए स्वादिष्ट भोजन को, उस समय के लिए जबकि दर्शकों की भीड़ कम हो जाएगी और उसे ऐसा भोजन कम परिमाण में मिलेगा, एक जगह इकट्ठा करता जाता था। इसके अतिरिक्त एक दूसरे चिड़िया घर में जाड़े के दिनों में रात को जब हाथियों को पिंजड़े में लेजाकर बन्द किया जाता था तब वे अपने रक्षकों द्वारा दरवाजा बन्द किये जाने से पहले स्वयं ही सूँड़ से दरवाजा बन्द कर लेते थे ताकि उन्हे ठंडक न लगे। गर्मी की रातों में इसी भांति पिंजड़े के दरवाजे पर अपनी सूँड़ से धक्का मार कर वे अपने रक्षकों को यह समझाते थे और

उनसे प्रार्थना करते थे कि वे दरवाजा खुला छोड़ दे ताकि उन्हें गर्मी न लगे।

इन जानवरों की मानसिक और स्वाभाविक प्रवृति की परीक्षा के लिए एक पेचिदा बक्स बनाया गया। इस बक्से में खाने का कुछ सामान रख दिया जाता है। और जो या तो स्प्रिंग के दबाने से या एक लीवर उठाने से खुलता है। इसको इन जानवरों के पास यह देखने के लिए रख दिया जाता है कि वे अन्य प्रयत्नों में व्यर्थ समय खोने के बजाय कितनी जल्दी उसे खोल लेते हैं।

बिल्ली और कुत्ते इस परीक्षा में फेल हो गए, वे व्यर्थ में अपना समय गँवाते रहे पर उसे न खोल सके। परंतु बंदरों ने उसे बड़ी तत्परता से खोल लिया मानो इसका सहज ज्ञान उन्हें पहले से ही था।

दूसरी परीक्षा के लिए एक भूलभुलैया बनाई गई। इसके बीच में भी खाने के लिए कुछ सामान रख दिया जाता है जहाँ पहुंचने के लिए एक सब से छोटा रास्ता होता है, पर एक तो कई अन्य रास्ते बना दिये जाते हैं, दूसरे वे अन्दर कई दिशाओं में घूम जाते हैं। इसके द्वारा वैज्ञानिक यह पता लगाते हैं कि कितनी जल्दी छोटे से छोटे रास्ते से होकर जानवर खाने तक पहुंच सकते हैं,

घोंघे, तिलचट्टे, चींटियें, मेंढक, कबूतर और गौरयों में भी स्मरण-शक्ति पाई गई है।

अब डा० ब्लार के ऊदबिलावों का नम्बर आया। इनमें भी सोचने और समझने की शक्ति का होना एक घटना से सिद्ध हो जाता है। न्यूयोर्क के चिड़िया घर से दो ऊदबिलावों ने भागने के लिए जमीन के अन्दर सात फिट गहरी एक नाली खोद ली थी, परन्तु अभाग्यवश वे फिर पकड़ लिए गए और उस नाली को कंकड़ियों से पटवा दिया गया। दो दिन बाद उस चिड़िया घर के समस्त ऊदबिलावों के समूह ने मिल कर, लकड़ी और कीचड़ इकट्ठा करके लोहे की पतली दीवाल से मिलाकर ५'-६" ऊँची एक दीवाल बना ली। यदि वे नाली से भागने का रास्ता नहीं बना पाये थे तो अब वे दीवाल फांद कर भाग जायेंगे। परन्तु रक्षकों ने इन बेचारों की इस छोटी सी चेष्टा को भी मटियामेट कर दिया। अब उनके पास और कोई उपाय न बच रहने पर, उन्होंने प्रयत्न करना ही छोड़ दिया।

ओरांग-उटान

अब घोड़ों की पारी आई। यदि आप किसी घोड़े के प्रेमी के पास जांय तो वह आपको इस जानवर की असंख्यों अपूर्व बहादुरी की कहानियाँ सुना डालेगा। परन्तु ऐसे घोड़ों ने तो वैज्ञानिकों को भी विस्मित कर दिया है, जो अपनी टापों से गणित के प्रश्नों का सही उत्तर दे डालते हैं। ऐसा ही एक घोड़ा 'हंस' था जिसकी परीक्षा लेने के लिए वैज्ञानिकों की एक समिति बनाई गई थी। उसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि वह सही उत्तर देते समय अपने मालिक की ओर देखता रहता था और बिना उसके बताये हुए न जाने कौन सी हरकत देखकर घोड़ा अपनी टापों का बजाना बन्द कर देता था और इस

प्रकार बजाये गए टापों की संख्या उस प्रश्न का सही उत्तर होती थी। अब क्योंकि उसका मालिक उस प्रश्न का सही उत्तर जानता रहता था, इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि वह घोड़ा उस विज्ञान को भी जानता था जिससे बिना किसी इन्द्रिय की सहायता से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मन के भावों को ठीक ठीक जान लेता है।

यह रहा डा० ब्लार के अकलमन्द जानवरों का विवरण।

विज्ञान चित्र पहेली १
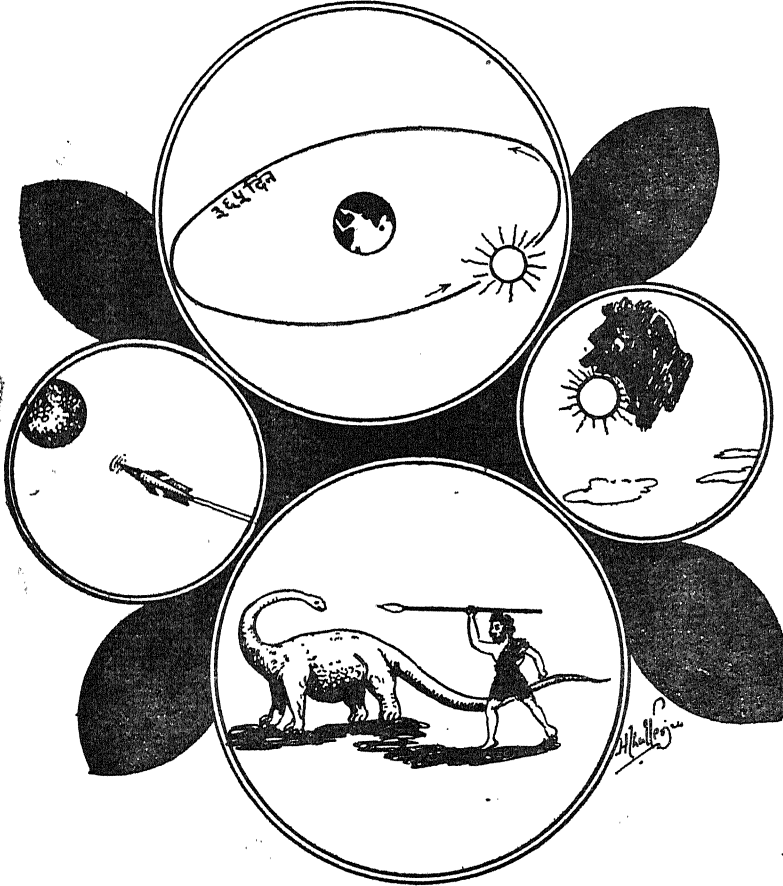
ऊपर दिये गये चित्रों में कुछ त्रुटियाँ हैं। चित्रों को ध्यान से देख कर इन त्रुटियां का पता लगाओ और लिख कर भेजो। सही त्रुटियां बताने वाले पाठकों के नाम आगामी अंक में प्रकाशित किये जायंगे।
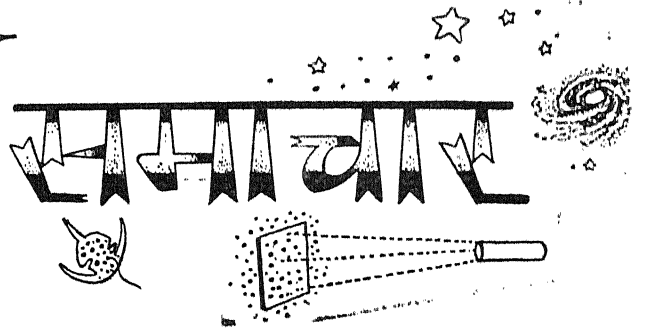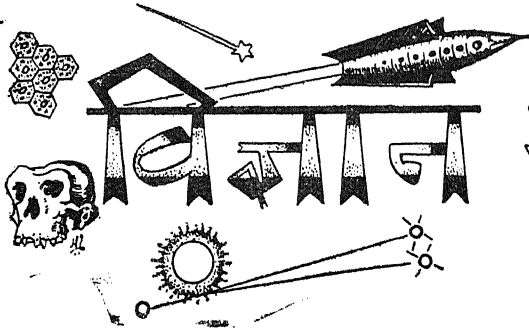
मानव शरीर के सूक्ष्म-कोष का भीमकाय नमूना

न्यूयार्क वासियों को हाल ही में मानव शरीर के सूक्ष्म कोष की 'भीतरी बनावट' को देखने का पहली बार अवसर मिला है। इस सूक्ष्म कोष के इस गुम्बदाकार नमूने के भीतर ४० व्यक्ति समा सकते हैं। प्रकाशित नलियों, गोलाकारों तथा अन्य विभिन्न आकार प्रकारों से इस नमूने का निर्माण हुआ है।

रक्त में विद्यमान लाल रंग के सूक्ष्म कोष का, १० लाख गुना बड़ा आकार उक्त त्रिविमा नमूने द्वारा प्रस्तुत किया गया है। न्यूयार्क नगर के स्वास्थ्य विभाग द्वारा संचालित स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रदर्शनी में उक्त नमूना प्रमुख रूप से प्रदर्शित किया गया है।

मिशिगन राज्य की एक प्रमुख औषधि निर्माता कम्पनी 'दि अपजान कम्पनी' के प्रमुख मानव शरीर रचना विशेषज्ञों की देखरेख में उक्त नमूना तैयार किया गया। इस नमूने की ऊंचाई १२ फ़ुट और व्यास २४ फ़ुट है। मानव शरीर के 'सूक्ष्म कोष' के बारे में हाल में जो नवीनतम खोजें हुई हैं, उन सब को भी इस नमूने में समाविष्ट किया गया है। इस माडल को देखने से कोष के भीतर की सब बनावटों के बारे में सही तौर पर ज्ञान हो जाता है। इसी 'सूक्ष्म कोष' को जीवन का मूल-आधार समझा जाता है।

इस विशाल नमूने के भीतर दर्शक, 'कोष' के हृदय प्रदेश को देख सकते हैं। इस में पित्रयसूत्र (क्रोमोसोम्स) रहते हैं। कोष के इस विशेष कक्ष में प्रोटीन का निर्माण होता है। 'सेण्ट्रोसोम' नामक भाग पोषक तत्वों को शक्ति में बदलने में महत्वपूर्ण योग देता है।

उक्त नमूने को तैयार करने में लगभग १ मील लम्बी प्लास्टिक की नलियां, १ मील लंबे बिजली के तार और कई आकारों की प्लास्टिक वस्तुओं को प्रयुक्त किया गया है। उक्त नमूने के भीतर अप्रत्यक्ष रूप से नीले प्रकाश की व्यवस्था की गई है। प्रकाश होने पर ऐसा लगता है जैसे कोष में जान पड़ गई है। इस नमूने को तैयार करने में एक वर्ष लग गया है।

'सूक्ष्म कोष' के इस नमूने को भीतर से देखने से अब 'जीवन के मौलिक तथ्यों' को समझना संभव हो गया है। इस नमूने के निर्माण का खास महत्व है कि यह 'कोष' जीवन का मूल स्रोत है। यह शरीर का वह हिस्सा है, जहां रोग आक्रमण करता है और जहां हमारी औषधियों का असर होता है। यह कोष इतने सूक्ष्म होते हैं कि लगभग १० खरब कोष मिल कर एक प्रौढ़ शरीर का निर्माण करते हैं। सभी प्रकार के प्राणियों एवं वनस्पति जीवन की शरीर रचना इन कोषों पर निर्भर करती है और हमें जितनी अधिक जानकारी इन 'कोषों' के बारे में होगी, रोगों तथा उनसे मुक्ति पाने के बारे में हमें उतनी ही अधिक मूल जानकारी प्राप्त होगी। इस नमूने से हमारी जानकारी में वृद्धि होगी।

केवल इस आकार के नमूने से ही कोष की सही बनावटों के बारे में पता चल सकता है। उक्त माडल के

तैयार हो जाने से वैज्ञानिकों एवं सामान्य व्यक्तियों को 'सूक्ष्म कोष' की पेचीदा बनावट को समझने का अवसर मिला है। लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई सूचक 'कोष' का नमूना इससे पहले तैयार नहीं हो सका है। यह नमूना विश्व में वैज्ञानिक जानकारी को बढ़ावा देने में सम्भवतः महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होगा।

रक्त वाहिनियों में नये तन्तुओं का विकास

'अमेरिकन हार्ट एसोसियेशन' नामी संस्था की हाल ही में हुई बैठक में बफैलो विश्वविद्यालय के डा० साइमन राडबोर्ड ने बताया कि विकृत रक्त वाहिनियों एवं कपाटों का प्लास्टिक क्रिया द्वारा सम्भवतः पुनर्निर्माण हो सकता है। रक्त वाहिनियों से जब रक्त प्रवाहित होता है, तो उसका दबाव वाहिनियों की दीवारों पर पड़ता है और इन यान्त्रिक शक्तियों को नियन्त्रित कर लेने से रक्त वाहिनियों में नये तन्तुओं का विकास किया जा सकता है।

डा० राडबोर्ड ने हाल ही में पशुओं की धमनियों में कोष समूह का विकास करने के लिए किए गए कई परीक्षणों का निरीक्षण किया। उक्त विधि सम्बन्धी पहले कदम के बारे में आपने यह बताया कि धमनियों में इस्पात की तार के लम्बे टुकड़ों को रख दिया जाता है तीन सप्ताह की अवधि में यह तार नये तन्तुओं की सूक्ष्म परत से ढक जाती है। इसके बाद वाहिनियों की दीवारों पर रक्त के दबाव के अनुपात से नये तन्तु समूह में निरन्तर वृद्धि होती है। हृदय की दिशा में जाने वाली रक्तवाहिनी में तन्तु समूह की परत ६ महीने की अवधि तक पतली रहती है और हृदय से रक्त वापस लाने वाली वाहिनी में निरन्तर वृद्धि होती है, यहां तक कि तीन महीने की अवधि में इसके आकार में इतनी वृद्धि हुई कि वह लगभग एक धमनी ही बन गई।

चिकित्सा के क्षेत्र में अणुशक्ति का नवीन उपयोग

अमेरिका के सेवा निवृत्त सैनिकों के प्रशासन द्वारा संचालित अस्पतालों में खून की कमी एवं आमाशय के रोगों के उपचार के लिए नई आणविक निदान विधि को प्रयुक्त किया जा रहा है। रेडियम धर्मी विटामिन बी-१२ की खुराकें रोग-निदान के लिए रोगी को दी जाती है। बाद में विशेष उपकरणों की सहायता से यह पता लगाया जाता है कि क्या रोगी के शरीर में विटामिन्स जज्ब हो गए हैं, इस विधि के अन्तर्गत घातक एवं अन्य प्रकार की रक्ताल्पता के बारे में ठीक जानकारी प्राप्त हो जाती है।

उक्त परीक्षण दो बार में किया जाता है। यदि शुरू में रोगी को दी जाने वाली रेडियम धर्मी बी–१२ की पहली खुराक उसके शरीर में जज्ब न हो जाए तो उसे दूसरी खुराक सामान्य मनुष्य के आमाशय के पाचकरस के साथ दी जाती है ताकि शरीर विटामिन को प्रयुक्त कर सके। यदि विटामिन की दूसरी खुराक शरीर में जज्ब हो जाय तो यह समझना चाहिए कि रोगी घातक रक्ताल्पता से ग्रस्त है। जिन रोगियों के आमाशय का कुछ भाग ऑपरेशन द्वारा हटा दिया गया हो, उनमें इस परीक्षण द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि आमाशय में इतना पोषक तत्व बनाने की क्षमता है या नहीं कि रोगी आगे चलकर खून की कमी का शिकार न हो।

चूंकि घातक रक्ताल्पता अति भयंकर होती है, इसलिए डाक्टर कभी कभी बिना विस्तृत निदानकारी छानबीन किए रोग का उपचार शुरू कर देते हैं। विटामिन बी–१२ या लीवर एक्सट्रैक्ट को प्रयुक्त करने के बाद इन रोगियों का रक्त आम तौर पर सामान्य हो जाता है और रक्त निदान की प्रचलित विधियां जब कारगर सिद्ध नहीं होंगी तब नये परीक्षण द्वारा यह पता चल सकेगा कि क्या नियमित रूप से दवा खिलाने पर उन्हें रक्ताल्पता से बचाया जा सकता है।

सम्पादकीय

भारत में पेट्रोल

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग ५० लाख टन पेट्रोल की खपत होती है। देश का तेल का दैनिक उत्पादन ६१०० बैरल प्रति दिन है जो कि आवश्यकता का केवल ६ प्रतिशत है। अनुमान लगाया जाता है कि खपत प्रति वर्ष १० प्रतिशत बढ़ेगी और यदि इस आवश्यकता की पूर्ति के हेतु समुचित प्रबन्ध न हो सका तो सन् १९७६ तक लगभग ५ अरब रुपये का तेल विदेशों से आयात करना पड़ेगा। विदेशी मुद्रा की कठिनाई देखते हुये आवश्यक मात्रा में तेल और प्राकृतिक गैस के नवीन स्रोतों की खोज और उपलब्ध स्रोतों के विकास द्वारा इस दिशा में आत्म निर्भरता प्राप्त करना अब अत्यावश्यक हो गया है।

तेल ऐसे स्थानों पर प्राप्त होता है जहां कभी समुद्र और कार्बनिक द्रव्य रहे हों। दबाव, गर्मी और कार्बनिक द्रव्यों पर विभिन्न पदार्थों की प्रक्रिया और जीवाणुओं के प्रभाव से कार्बन और उद्‌जन के विविधि योगिकों का जन्म होता है जिनमें पेट्रोल और प्राकृतिक गैसें प्रमुख हैं। द्रव्यों के इस प्रकार के सम्मिलन की दृष्टि से पंजाब, गंगा की घाटी, आसाम, पश्चिमी बंगाल, गुजरात, कच्छ, राजस्थान और पूर्वी तथा पश्चिमी किनारों पर १० लाख वर्ग किलोमीटर (४ लाख वर्ग मील) के क्षेत्र में तेल के पाये जाने की सम्भावना है।

लगभग ५० करोड़ रुपये की विदेशी पूंजी से समुद्र तट के समीप तीन कारखाने चालू किये गये हैं। विदेशों से निर्यात तेल के शोधन द्वारा ये प्रति दिन ७० हजार बैरल तेल देते हैं जिनसे हमारी इस समय की आवश्यकता का ७० प्रतिशत तेल प्राप्त हो जाता है। भारत सरकार ने दिसम्बर १९५५ में तेल और प्राकृतिक गैसों के लिये एक अलग विभाग की स्थापना की। बाद में १४ अगस्त १९५६ को तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन की स्थापना होने पर इस विभाग का विलय कमीशन में कर दिया गया। इस कमीशन में भूगर्भ शास्त्री, भूभौतिक विद और इंजीनियर हैं। प्रशिक्षण हेतु प्राविधिक कार्यकर्ताओं को विदेशों में भेजकर और विदेशों से विशेषज्ञों को सहायतार्थ देश में बुलाकर नये तेल स्रोतों की खोज और पुराने कारखानों के विकास के लिये प्रयत्न चल रहे हैं। सोवियत रूस, रूमानिया, फ्रांस इटली और स्विटजरलैण्ड से प्राविधिक प्रशिक्षण में विशेष सहायता मिली है। गुरुत्वाकर्षण की माप से तथा चुम्बकीय सर्वे द्वारा और भूगर्भ में कृत्रिम कम्पन उत्पन्न कर भूमि की निचली परतों की परीक्षा की जाती है। इन प्रयोगों से प्राप्त परिणामों के आधार पर ऐसे स्थान चुन लिये जाते हैं जहां तेल पाने की सम्भावना हो सकती है। फिर इन स्थानों पर कुंए खोद कर तेल का पता लगाया जाता है।

परीक्षणों के फलस्वरूप ज्वालामुखी में २५०० फुट की गहराई पर प्राकृतिक गैस, लुनेज में ५-६ हजार फुट की गहराई पर तेल का सोता मंडी के दक्षिण सुन्दर नगर और जम्मू के मुरादपुर में तेल मिश्रित बालू मिली है। यद्यपि विश्वास पूर्वक यह कह सकना कठिन है कि इन क्षेत्रों में तेल अवश्य निकाला जा सकेगा फिर भी यदि तेल स्रोतों को प्राप्त करना ही है तो धैर्य पूर्वक वैज्ञानिक परीक्षण और साधनों की खोज जारी रखनी ही पड़ेगी। आसाम और बिहार के तेलशोधन कारखानों के चालू हो जाने पर ५० हजार बैरल तेल प्रतिदिन साफ किया जा सकेगा और तेल के नवीन स्रोतों की खोज और पुराने स्रोतों के विकास द्वारा देश अपनी तेल और पेट्रोल की आवश्यकता पूर्ति में आत्म निर्भरता की ओर बढ़ सकेगा।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

वज्ञान　　　　रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

५८

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव तीर्थराज प्रेस, ९३ चक, लाहाबाद—३ ।

भाग ८८ संख्या ४

जनवरी १९५९, मकर २०१५ वि० पौष १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपये] [इस अङ्क का मूल्य ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा, प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवान्तविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८८	मकर २०१५ विक्र० पौष १८८० शाकाब्द; जनवरी १९५९	संख्या ४

परमाणुवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री, बी० एस-सी० साहित्यरत्न, साहित्य सुधाकर, काव्यतीर्थ

इस जगत का मूल कारण क्या है? दार्शनिकों के समक्ष अनादि काल से यह एक अत्यन्त जटिल प्रश्न रहा है। इस समस्या का समाधान अभी तक नहीं हो सका। ज्ञान पिपासा और उत्सुकता जनिक उत्साह किसी भी समस्या से पराजित नहीं होता। फलतः महान विचारकों ने समय समय पर मौलिक विचार धारायें प्रस्तुत की जिन्होंने अनेक दार्शनिक प्रणालियों को जन्म दिया। न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य आदि दर्शन इसी जिज्ञासा के फल स्वरूप प्रादुर्भूत हुये।

यों तो भारतीय वाङमय में वैज्ञानिक सिद्धान्तों की भरमार है। किन्तु परमाणुवाद की दृष्टि से विश्व के उभ्दव पर जिन भारतीय दर्शनों का सर्वाधिक प्रभाव रहा है वे हैं वैशेषिक और सांख्य दर्शन। अन्य भौतिक एवम् रासायनिक सिद्धान्तों की दृष्टि से भी इनका ऐतिहासिक महत्व है। आधुनिक विज्ञान की प्रगति में भी इन दर्शनों ने योगदान दिया है।

सांख्य दर्शन के जन्मदाता महर्षि कपिल और वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। इन महर्षियों द्वारा प्रसूत दार्शनिक विचार धाराओं के प्रादुर्भाव का विषय विवादास्पद है। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के मतानुसार सांख्य दर्शन का आविर्भाव बुद्ध धर्म से पूर्व हुआ। टामस महोदय ने अपना मत देते हुये लिखा है कि जैकोवी की हेतु और परिणाम की शृंखला सांख्य की उच्चकोटि की विचार धारा से व्युत्पादित हुई और बुद्ध धर्म पर सांख्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। श्री बल्देव उपाध्याय के मतानुसार वैशेषिक सूत्र न्याय सूत्रों से अधिक प्राचीन है और इनका रचनाकाल तृतीय शतक विक्रम पूर्व का है। श्री दास गुप्ता ने अपने दर्शन साहित्य के इतिहास में लिखा है कि 'इन सूत्रों की शैली और तर्क प्रस्तुत करने के ढंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सूत्र प्राचीनतम हैं और सम्भवतः बुद्ध धर्म के पूर्व प्रादुर्भूति हुये है। सम्भव है कि विकास के इस स्तर पर इसने बुद्ध और जैन धर्मों के हेतु कुछ सुझाव रखे हों।'

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भारत में इन दर्शनों का प्रादुर्भाव जैन एवम् बौद्ध धर्मों की उत्पत्ति के पूर्व हुआ और कणाद और कपिल भी बुद्ध एवम् महावीर के पूर्व ही हुये होंगे। स्पष्ट है कि सांख्य और वैशेषिक दर्शनों की विचार धारा मौलिक है और इन पर

बौद्धों या जैनों का प्रभाव नहीं है। बाद के विकास क्रम में कुछ अंशों, में दोनों विचार धाराओं में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद और सांख्य की कल्पनायें भारत में यूनान से आई। किन्तु यह विचार तथ्यों पर आधारित नहीं ज्ञात होता। जे० आर० पार्टिंग्टन न लिखा है कि 'भारत में परमाणुवाद का शिक्षण अति प्राचीन काल से दिया जाता रहा है। वह सिद्धान्त यूनान से ग्रहण किया गया था इसका भारत में ही मौलिक विकास हुआ यह प्रश्न विवादास्पद है। इस सिद्धान्त का सम्बन्ध कणाद से माना जाता है और बाद के जैन और बौद्धग्रन्थों में उसका उल्लेख है। सम्भव है कि भारतीय उपनिषद, सांख्य शास्त्र और बौद्ध धर्म की विचार धाराओं से प्रेरित होकर यूनानी दर्शन का परिष्कार हुआ हो। मैक्स मूलर ने लिखा है कि परमाणु अकेले या दो दो की संख्या में भी देखे नहीं जा सकते जहाँ तक मुझे स्मरण है इपीक्यूरियन युग के लेखकों ने इस प्रकार के विचार प्रकट नहीं किये हैं। इससे मुझे कणाद की पारमाणविक प्रकृति की व्याख्या की मौलिकता का ही आभास होता है।' श्री बल्देव प्रसाद उपाध्याय के अनुसार वैशेषिकों की परमाणु कल्पना स्वप्रतिभोत्पादत है और यूनानी दार्शनिक डिमाक्रिटिस के परमाणुवाद से सर्वथा भिन्न है। अनेकों पश्चिमी विद्वानों का मत है कि भारतीय महर्षि यूनान के ज्ञानदाता और गुरू थे। ग्रीकों पर भारत की छाप के उदाहरण स्पष्ट मिलते हैं।

संक्षेप में, साँख्य एवं वैशेषिक दर्शन अपने आप में मौलिक हैं। इन पर न तो ग्रीकों का प्रभाव है, न ही बौद्धों का और न जैनों का। ये प्राचीनतम दार्शनिक प्रणालियां हैं।

परमाणुवाद का आधुनिक स्वरूप मनीषि डॉल्टन का दिया हुआ है। इनके आविर्भाव एवं कार्यकाल के संबंध में तो कोई समस्या ही नहीं है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि आज के परमाणुवाद का जो भी भौतिकवादी, गणितात्मक एवं परिसंख्यनात्मक स्वरूप है उसमें डॉल्टन की मौलिकता है, साधना है एवं प्रयोगों के पश्चात् ठोस विषयों पर आने की प्रवृत्ति है।

सांख्य एवं वैशेषिक दर्शन के अतिरिक्त परमाणुवाद का विवेचन भारतीय वाङ्मय के अन्य कई स्थलों पर प्राप्त होता है यथा वायुपुराण, पाराशर स्मृति, 'वेदान्त दर्शन आदि में। लेकिन इन सब का अधिक मौलिक महत्व नहीं है, क्योंकि इन पर स्पष्ट रूप से या तो 'सांख्य या वैशेषिक दर्शन की विचारधाराओं की छाप दीखती है। थोड़े बहुत परिवर्तित स्वरूप में ही विभिन्न आचार्यों ने अपने अपने मत प्रस्तुत किये हैं।

इन दर्शनों में यदि हम आज जैसी वैज्ञानिक प्रवृत्ति ढूँढ़ने जायेंगे तो हमारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे। इन दोनों दार्शनिक विचारधाराओं का सृजन मानव जीवन की उपादेयता के लिये हुआ था। "विज्ञान, विज्ञान के लिये" यह भावना नहीं थी। साथ ही वैज्ञानिक अन्वेषण की वृत्ति इन महर्षियों में न थी। अत्यधिक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक होते हुये भी इन मनीषी द्वय ने विज्ञान के क्षेत्र में बहुत बड़ा योग दान दिया है। सांख्य दर्शन तो वैचारिकता एवं अनुभूति सूक्ष्मता की मानो पराकाष्ठा ही है।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विचारों की पृष्ठ भूमि पर ही समस्त आगामी समीक्षा एवं विवेचन आदि आधारित हैं। आइये सर्व प्रथम हम महर्षि कणाद के परमाणुवाद का सिंहावलोकन करें।

कणाद का परमाणुवाद

अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि विश्व के समस्त चाक्षुष प्रत्यक्ष वाले पदार्थ सावयव होते हैं। उदाहरणार्थ, एक घड़ा मिट्टी के टुकड़ों से बनता है। मिट्टी के टुकड़े उससे भी छोटे अवयवों से बनते हैं। इन अवयवों के अवयवों की भी कल्पना की जा सकती है। और यह कल्पना धारा अनन्त अवयवों तक चलाई जा सकती है। लेकिन यदि इसी धारा का हम अनुगमन करते रहे, तब तो राई के एक दाने के भी असंख्य अवयव होंगे और हिमालय पर्वत के भी, एवं अवयवासंख्यत्वा के आधार पर दोनों एक ही आकार के ठहरेंगे जो कि असंभव है। उक्त दोष के परिहारार्थ इस धारा को हमें किसी एक अत्यंत सूक्ष्म अवयव विशेष पर विराम देना ही होगा जिस अवयव पर विराम होगा, वही पर-

परमाणु है। "तर्क भाषा" में यह प्रसंग उत्तमता से समझाया गया है। "कारण गुणान हिं कार्य गुणान आरभन्त इति न्यायात्!..." तदपि स्वल्प परिणाम समवायिकारणायं कार्य द्रव्यत्वाद् घटवत्। यस्तु द्व्यणुकारम्भकः स एवं परमाणुः। स चानारब्ध एवेति।...अनंत कार्य परम्परा दोष प्रसंगात्...मेरू सर्षपयोरपि तुल्य परिमाण प्रसंगः।

परमाणु की कल्पना

"जाल सूर्य मरीचिस्थं सूक्ष्मं यद्दृष्यते रजः।
तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते॥"
(न्या. सि. मुक्तावलि)

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ यह है कि छत के किसी छेद से प्रविष्ट होती हुई सूर्य किरणों के मार्ग में जो रजः कण चमकते हैं उनमें से सूक्ष्मतम कण का छठा भाग (कुछ लोग साठवां भाग भी मानते हैं) परमाणु कहा जाता है।

यह स्वयं सिद्ध है कि किसी भी यौगिक अणु की रचना के लिए न्यूनतम दो परमाणुओं की आवश्यकता होती है। इन दो संयुक्त परमाणुओं से निर्मित अणु को द्वयणुक कहा जाता है। तीन द्वयणुकों के संयोग से एक त्रसरेणु की रचना होती है, जो कि हमें रजः कण के रूप में दिखाई देता है।' कोलब्रुक ने परमाणु और रजः कण के सम्बन्ध की सतर्क व्याख्या सुष्ठु प्रकार से की है। मूल प्रकरण में भी द्वयणुकादि का रचना क्रम अत्यंत स्पष्ट शब्दों में है।

"तत्र......कार्य द्रव्याणाम् उत्पत्ति विनाश क्रमः कथ्यते। द्वयोः परमाण्वोः क्रियया संयोगे सति द्व्यणुकम् उत्पद्यते। तस्य परमाणु समवायि कारणम्। तत्संयोगो: समवायि कारणम्। अदृष्टादि निमित्त कारणम्। ततो द्वयणुकानाम् त्रयाणाम् क्रियया संयोगे सति त्रयणुकम् उत्पद्यते। तस्य द्व्यणुकानि समवायि कारणानि। शेष पूर्ववत्। एवं त्रयणुकैश्चतुर्भिश्चतुरणुकम्। चतुरणुकैर्परं स्थूलतरं स्थूल परेरपरं स्थूल तमम्। एवं क्रमेण महा पृथिवि महत्यापो महत्तेजो महाश्चवायुसत्पद्यते।"

परमाणुओं के गुण धर्म

"परमाणु: परम सूक्ष्म आधवयवः स्वयं निरवयवः अतीन्द्रियों नित्य।" [न्यू. सि. मु. पृष्ठ ९८]

अर्थात् परमाणु, पदार्थ का (१) सूक्ष्मतम (२) अविभाज्य (३) मौलिक (४) शाश्वत अवयव होता है। यह गोलाकार होता है जैसा कि शंकर मिश्र के निम्न शब्दों से प्रतिभासित होता है। "नित्यं परिमण्डलम् परिमण्डलमेव परिमण्डल्यम्।"

(५) परमाणु (तत्व) चार प्रकार के होते हैं। अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी। इनके चार मौलिक गुण होते हैं। रूप, स्पर्श, रस एवं गंध। एक ही महाभूत के समस्त परमाणु समान होते हैं एवं अन्य तत्वों के परमाणुओं से भिन्न होते हैं। इन परमाणुओं के अन्य गुणधर्मों का विवेचन भी प्राप्त होता हैं। (६) ये उपर्युक्त समस्त परमाणु, गुण रहित माध्यम आकाश में ["ते आकाशे न विद्यन्ते" कणाद सूत्र २।१।५।] सर्वदा गतिमान रहते हैं, जैसा कि रघुनाथ शिरोमणि का मत है।

"अनवरत परिस्पंदमाना परिमित पवनादि परमाणव" यह स्पंदन एक लम्बक के समान, चक्राकार अथवा सरल भी हो सकता है। आकाश की कल्पना निम्न प्रकार से की गई है। आकाशनिरूपणम्—"अत एभ्यो अष्टभ्योतिरिक्तः शब्द गुणी एसितव्यः। स एव आकाश इति। स चैकः। अतएव विभुत्वान्नित्यमिति।"

(७) परमाणुओं में आपस में संयुक्त होने की तीव्र प्रवृत्ति होती है। इस संयोजन कारण परिस्पंदन अथवा ताप होता है। परिस्पंदन एवं ताप के लिये "प्राचीन वैशेषिक लोग प्राणियों के धर्माधर्म रूप अदृष्ट को इसका कारण बतलाते हैं" [भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३०३]।

(८) किसी भी रासायनिक अथवा भौतिक गुण की प्रतीति हो, इसलिये आवश्यक है कि न्यूनतम दो परमाणुओं का संयोग हो। इस आधार पर, कल्पना कीजिये कि पृथ्वी और जल तत्वों के संयोग से दो भिन्न यौगिक बने हैं जिनके आणविक सूत्र हैं, क्रमशः $पृ_1$ $ज_2$ और $पृ_2$ $ज_2$। तो इनमें से प्रथम अणु में गन्ध (पृथ्वी का

गुण) नहीं रहेगा क्योंकि पृथ्वी का एक ही परमाणु पृ, विद्यमान है। जबकि दूसरे यौगिक में गन्ध और रस दोनों ही गुण पाये जायेंगे। क्योंकि दोनों ही मूल महाभूतों के न्यूनतम दो दो परमाणु विद्यमान हैं।

(६) जब तक ताप शक्ति के प्रभाव से कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता तब तक प्रत्येक परमाणु अपने अपने गुण बनाये रखता है। यौगिकों के विशिष्ट गुण रचयिता परमाणुओं के गुणों के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। यथा इत्र में सुगंध है और वह द्रव पदार्थ है क्योंकि उसमें पृथ्वी और जल के परमाणु उपयुक्त मात्रा में इस तरह विद्यमान हैं कि इत्र के व्यक्तिगत द्रवत्व और सुगंध की हमें प्रतीति हो सके।

यह तो हुआ वैशेषिक दर्शन के परमाणु बाद का संक्षिप्त दिग्दर्शन। आइये अब हम महर्षि कपिल के सांख्य दर्शन के परमाणुवादी मूल सिद्धान्तों का पर्यवेक्षण करें।

कपिल का परमाणुवाद

सांख्य दर्शन में प्रयुक्त शब्दावलि अपनी स्वयं की पारिभाषिकता रखती है अतएव विस्तृत विवेचन के इच्छुकों को मूल ग्रन्थों का अवलोकन करना उचित है। इस सीमित स्थल पर अत्यंत संक्षेप में सांख्य दर्शन का परमाणुवाद रखा जा रहा है।

सांख्य के अनुसार सृष्टि का मूल परमाणु नहीं वरन् प्रकृति है। परमाणु तो विकास क्रम की परम्परा में बहुत पीछे आते हैं। सत्व रज और तम ये तीन गुण होते हैं जिन्हें डा० बी० एन० सील महोदय ने क्रमशः बुद्धि, शक्ति (Energy) और मात्रा (Mass) का प्रतीक माना है। इन त्रिगुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। व्यास भाष्य में प्रकृति का स्वरूप "निःसंत्तासत्तं निःसदसद् निरसद् अव्यक्तं अलिङ्ग अप्रधानम्।" [२।१६] द्वारा व्यक्त किया गया है। प्रकृति मुख्यतया अचेतन किन्तु सक्रिय है। इस प्रकृति का जब, चेतन किन्तु निष्क्रिय सत्ता पुरुष से संयोग होता है तो पूर्ण साम्यावस्था में क्षोभ उत्पन्न होता है। सांख्य कारिका क्रमांकः ११ में पुरुष के सम्बन्ध में अधोलिखित परिभाषा की गई है।

त्रिगुणमविवेकि विलयः सामान्य म चेतनम्प्रसव धर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानम् तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥११॥

प्रकृति और पुरुष के संयोग और इसके द्वारा विश्व सृष्टि को अंधे एवं लंगड़े के संयोग की सुप्रसिद्ध कहानी द्वारा समझाया गया है। पुरुष लंगड़ा है जबकि प्रकृति अन्धी। इसके संयोग से प्रथम विकृति स्वरूप महत् तत्व की उत्पत्ति होती है। व्यष्टि दृष्टया यह बुद्धि तत्व कहा जा सकता है जब कि समष्टिगत जगत की दृष्टया इसे प्रथम उत्पत्ति बीज कहा जाना चाहिये। महत् की विकृति होने पर अहंकार की उत्पत्ति होती है। सत्व और रज के बाहुल्य के संयोग से [अर्थात् बुद्धि + अहम् + शक्ति इस संयोग से] भाव जगत् अर्थात् मन, बुद्धि एवं एकादश इन्द्रियों की रचना होती है। यही अहंकार जब रज और तम के बाहुल्य से संयोग करता है तो हम दृश्य जगत में पहुँच जाते हैं। रज और तम की एक एक इकाइयों के संयोग से सर्व प्रथम पूर्ण विष्क्रिय पदार्थ की मूल इकाई निर्मित होती है जिसे "भूतादि" कहा गया है। यह भूतादि पुनः रज की इकाइयों से संयोग करके पंच तन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। ये पंच तन्मात्रायें हैं क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध। समस्त भौतिक पदार्थों के गुण पंच तन्मात्राओं के कारण ही होते हैं। इन पंच तन्मात्राओं के विशिष्ट रूप में पुनः संयोग से पंच महाभौतिक तत्व परमाणुओं की रचना होती है जिन्हें क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी कहा गया है। इन परमाणुओं के पुनः संयोग से अणुओं की एवं स्थूल काय दृश्य वस्तुओं की सृष्टि होती है।

स्पष्टीकरण

सत्व रज और तम इन तीन मौलिक गुणों को या तत्वों को पूर्णतया अनुभवगम्य मानना उचित नहीं है। इनका निश्चित् स्वरूप माना गया है। विश्व की वस्तुओं में सत्व गुण की जिस क्रम से न्यूनता होगी उसी क्रम से उनमें बुद्धि, अहम् एवं प्राण शक्ति के ह्रास का

आभास होगा। इस आधार पर वृक्षों में सत्व गुण बहुत कम है जब कि सोने के एक ढेले में नहीं के बराबर। रजो गुण अर्थात् 'शक्ति' किसी भी वस्तु की कार्य शक्ति निर्धारित करता है। रज गुण हीन वस्तु निश्चेष्ट रहेगी। तमो गुण मात्रा का प्रतीक है। पदार्थ का पदार्थत्व तमो गुण ही निर्धारित करता है। हम, हमारा शरीर एवं हमारा सम्पूर्ण जीवन, सत्व, रज एवं तम के संघात की विभिन्न अवस्थाओं का समुच्चय मात्र है।

परमाणु की रचना

यदि 'भूतादि' को मात्रा की इकाई मान कर चलें तो रजो गुण की एक इकाई से संयुक्त होकर यह शब्द तन्मात्रा की एक इकाई की रचना करता है। यदि भूतादि की एक असंयुक्त इकाई को $क_1$ द्वारा पदर्शित करें तो शब्द तन्मात्रा$=क_1$

स्पर्श तन्मात्रा$=क_1+क_2$। रूप तन्मात्रा$=क_1+क_2+क_3$ रस तन्मात्रा$=क_1+क_2+क_3+क_4$। गन्ध तन्मात्रा$=क_1+क_2+क_3+क_4+क_5$

आइये अब हम आकाशादि पन्च तत्विक परमाणुओं को रचना समझने का प्रयत्न करते हैं। यदि आकाश के एक परमाणु को आ द्वारा प्रदर्शित किया जाय तो समीकरण होगा—$आ=श=क_1$

इसी तरह वायु परमाणु की रचना आकाश परमाणु और स्पर्श तन्मात्रा के संयोग से मानी गई है। अतएव $वा=आ+स्प=क_1+(क_1+क_2)=२क_1+क_2$ इसी क्रमानुसार $अग्नि=वायु+रूप=अ+स्प+रू=क_1+(क_1+क_2+क_3)=३क_1+२क_2+क_3$ $जल=अग्नि+रस=४क_1+३क_2+२क_3+क_4$

$पृथ्वी=जल+गन्ध=५क_1+४क_2+३क_3\times२क_4+क_5$

इस तरह तन्मात्राओं के आपस में भिन्न प्रकार के संयोग से भिन्न परमाणुओं की रचना होती है। एक ही तत्व के परमाणुओं में वैभिन्नय प्रदर्शनार्थ डा० बी० एन० सील महोदय ने बड़ी योग्यता पूर्वक क के मूल्य में a से लेकर b तक के सूक्ष्म परिवर्तन की कल्पना करके स्पष्टकीरण का प्रयत्न किया है। एतत्संबंधी विस्तृत विवेचन प्र० च० राय के रसायन शास्त्र के इतिहास के द्वितीय भाग में पाया जा सकता है।

परमाणुओं के गुण धर्म

सांख्य के मतानुसार समस्त विश्व प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है क्योंकि परमाणु एवं तन्मात्रादि निष्क्रिय नहीं रह सकते। शक्ति की अक्षयता के सिद्धान्त के अनुरूप शक्ति एवं मात्रा के समुचित परिवर्तन से जब पदार्थों एवं गुणों की रचना हो जाया करती है। नवीन उपादानों अथवा मूल्य परमाणुओं की आवश्यकता नहीं होती। समस्त भावी वस्तुएं अव्यक्त रूप में अपनी पूर्वगामी वस्तुओं में विद्यमान रहती हैं। समय आने पर उनका मूर्त रूप प्रगट हो जाता है। किसी भी प्रणाली (System) के चारों ओर एक काल्पनिक आवरण सा रहता है जो कि उस प्रणाली में सहसा मूलभूत परिवर्तन नहीं होने देता। इस आवरण का कोई सा भी हिस्सा ताप प्रकाशादि रजात्मक शक्तियों के द्वारा हटा दिया जाय तो उस हिस्से से संबंधित परिवर्तन हो जाते हैं क्योंकि नव निर्मित् छिद्र की राह से शक्ति, तन्मात्रा, सत्वगुणादिक का आगमन एवं निर्गमन प्रारंभ हो जाता है। लेकिन परिवर्तन का यह कार्य केवल कुछ ही परिस्थितियों में हो सकता है। पंच महाभौतिक परमाणुओं के अन्य गुणधर्मों के बारे में सांख्य दर्शन के प्रायः वे ही विचार हैं जो कि वैशेषिक दर्शन के। इनका नामकरण ही इनके गुणों का वर्णन कर देता है। अपने से पूर्व के समस्त महाभौतिक परमाणुओं के गुणधर्म बाद वाले परमाणुओं में पाये जाते हैं। इस आधार पर, पृथ्वी परमाणु में समस्त महाभौतिक परमाणुओं के गुण पाये जाते हैं जबकि तेज परमाणु में केवल शब्द स्पर्श एवं रूप के गुण ही पाये जायेंगे। रस एवं गन्ध नहीं। क्योंकि श्रंखला में रस एवं गंध अर्थात् जल एवं पृथ्वी परमाणु तेज के पश्चात् आते हैं।

परमाणु का आकार एवं स्वरूप

डा० बी० एन० सील महोदय ने बराहमिहिर के एक सूत्रात्मक उद्धरण "परमाणु रजो बालाग्रलिक्षयूकं यवोङ्गुलम् चेतिअष्ट गुणानि यथोत्तरम् अंगुलमेकं भवति संख्या" [बराहमिहिर संहिता अध्याय ५७ श्लोक[2]] के

आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि परमाणु का आकार म० ३.५—^{1} × ^{2}—^{62}घन इंच से भी छोटा होता है। यदि भास्कराचार्य के सूत्रों के आधार पर ग का मूल्य $\frac{3927}{1257}$माना जाय तो परमाणुओं का आकार ग०३^{2}.२—^{61} घन इंचों से भी कम माना जाना चाहिये। तन्मात्राएं तो इससे भी छोटी होंगी। पुष्टिकरण के लिये उन्होंने चरक एवं सुश्रुत के कुछ प्रमाण एवं कल्पनाएं भी प्रस्तुत की हैं। परमाणु गोलाकार होता है यह हम पहले ही देख चुके हैं। विस्तृत विवेचन के लिये दर्शनीय ग्रन्थ है हिन्दू रसायन शास्त्र का द्वितीय भाग डा० प्र० च० राय द्वारा संपादित।

ग्रीक परमाणुवाद एवं वैशेमिक दर्शन

ग्रीक विचारधारा के अनुरूप परमाणु यद्यपि स्वयं गुण रहित होते हैं लेकिन उनमें तौल, क्रम आदि का अन्तर अवश्य होता है जबकि कणाद के परमाणुवाद के अनुसार प्रत्येक परमाणु में अपने विशिष्ट गुण होते हैं। डिमाक्रिटस तथा एपिक्यूरस ने परमाणुओं को स्वतः गमनशील एवं आत्मा को भी उत्पन्न करने वाला माना है जबकि वैशेषिक दर्शन आत्मा को नित्य मानता है एवं निःस्पंद परमाणुओं में प्रथम स्पंदन का कारण अदृष्ट या ईश्वर होता है। मेक्समूलर के त्रसरेणु रचना के विश्लेषण के दौरान में व्यक्त विचारों को हम पहले ही देख चुके हैं। इन सबसे हमें इस निर्णय पर आने को बाध्य होना पड़ता है कि कणाद का परमाणुवाद पूर्णतया मौलिक है। ग्रीक दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन में उतना ही अंतर है जितना कि भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में है।

वैशेमिक दर्शन का परमाणु कारण वाद

सृष्टि के प्रारंभ में अदृष्ट कारण एवं कर्मनिमित्तवश पृथक पृथक परमाणु संयुक्त होकर द्वयणुकादि की रचना करते हैं। इस धारणा में हम अदृष्ट को कार्य का कारण तो मान सकते हैं लेकिन उत्पादक नहीं क्योंकि अचेतन होने के कारण अदृष्ट उत्पत्ति नही कर सकता। अतः जब कर्म का उत्पादक ही ज्ञात नहीं तो फिर कर्म (परमाणु आदि) किस निमिन्त से पैदा हुआ माना जाय? अस्तु। जब कर्म ही नहीं तो परमाणुओं का संयोग भी नहीं। इसी प्रकार वियोगकारक कर्म के निमित्त के ज्ञानाभाव से प्रलय अथवा सृष्टि नाश की कल्पना भी असंगत है।

यदि परमाणुओं को नित्य प्रवृत्ति स्वभाव का माना जाय तो प्रलय की कल्पना असंभव है और यदि नित्य निवृत्ति—परक माना जाय तो सृष्टि रचना का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि उभय स्वभाव (प्रवृत्त-निवृत्त) मानें तो पारस्परिक विरोध उत्पन्न हो जाता है। अतः परमाणु स्वयं में न तो प्रवृत्ति परक हैं, न ही निवृत्ति परक और न ही उभय स्वभाव के। वे तो एक महान् चेतन नियामक शक्ति द्वारा परिचालित होते हैं।

यदि रूपादि चार परमाणुओं को रूपादि चार कार्यों का मूल उत्पादक मानें तो भी सभी चीज प्रतीत नहीं होता क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपने स्वयं के सृजक कारण की तुलना में स्थूल होती है। परमाणु भी स्वकारणापेक्षया स्थूल होना ही चाहिये। अर्थात् परमाणुओं का भी कोई मूल कारण है ही। यहां परमाणुकारणवाद फिर असफल होता है और ईश्वरवाद की ओर जाना पड़ता है।

सांख्य एवं वैशेषिक दर्शन

आरंभवाद एवं कारणवाद :—वैशेषिक दर्शन श्रृष्टि का आरंभ परमाणु से मानता है। गुणों एवं पदार्थत्व दोनों ही का मूल कारण परमाणु है। E.A. और E_2A_2 यौगिकाणुओं के उदाहरण के द्वारा हम पहले ही स्पष्टीकरण कर चुके हैं कि किस प्रकार विश्व में पदार्थों में विशिष्ट गुणों की प्रतीति होती है। इस विचार धारा से भिन्न विचारधारा का पोषक है सांख्य दर्शन। इसके अनुसार, उपस्थित प्रणाली में शक्ति तथा मात्रा के त्रिगुणात्मक परिवर्तन स्वयमेव प्रतिक्षण हुआ करते हैं। आरंभ के किसी केन्द्र के अन्वेषण की आवश्यकता नहीं। स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण से आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के निकट सांख्य दर्शन अधिक हैं बजाय वैशेषिक दर्शन के।

मैं यह मानने को तय्यार नहीं कि दोनों ही दर्शन पूर्णतया अनीश्वरवादी हैं। परमाणुओं के प्रथम स्पंदन को वैशेषिक दर्शन जहां अदृष्टकारणवश मानता है वहीं प्रकृति एवं पुरुष के प्रथम मिलन के बारे में सांख्यदर्शन भी प्रायः यही विचारधारा प्रस्तुत करता है। सांख्य दर्शन दृष्टा अथवा पुरुष अथवा आत्मा अथवा कर्मयोग की सत्ता स्वीकार करता है और वैशेषिक दर्शन भी बहुत कुछ इसी पथ का पथिक है। अंतर केवल इतना ही है कि वैशेषिक दर्शन वाले एक विभु आत्मा को महत्व देते हैं जब कि सांख्य वाले असंख्य चेतन पुरुषों की कल्पना करते हैं। किसी न किसी रूप में दोनों दार्शनिक प्रणालियां ईश्वरीय सत्ता को अवश्य स्वीकार करती हैं।

तत्व मीमांसा

वैशेषिकों के समस्त द्रव्य एवं पदार्थ सांख्य वालों ने अपने प्रकृति एवं पुरुष में समाविष्ट कर लिये हैं। परमाणु चतुष्टय एवं आकाश का स्थान पंच तन्मात्राओं ने ले लिया है। पंच महाभौतिक परमाणु सांख्य की मान्यतानुसार हैं जब कि वैशेषिक दर्शन के अनुसार केवल चार ही परमाणु हैं। आकाश को कणाद ने माध्यम स्वरूप माना है। आज के विज्ञान जगत् के Ether (ईथर) की कल्पना के अधिक निकट हैं, कणाद। जो कुछ भी हो तत्व मीमांसा में सांख्य दर्शन वैशेषिकों से कहीं अधिक गहराई में पहुँचा है।

१—भौतिक विज्ञान के पंडित रौबर्ट एच० गोडार्ड को आज के 'रॉकेट का पिता' कहते हैं इसलिए कि इन्हीं के १९०९ में प्रारम्भ किये गये प्रयोगों ने रॉकेट को जन्म दिया गोकि सन् १२३२ से वैज्ञानिक रॉकेट के विषय में जानकारी रखते थे।

२—बर्फ से ढकी पहाड़ की चोटियों पर प्रायः सैकड़ों मनों के बर्फ के टुकड़े सधे रहते हैं। ऐसे स्थानों पर पहाड़ों के पथ प्रदर्शक यात्रियों को बात तक नहीं करने देते इसका कारण यह है कि तनिक बात चीत ताली आदि बजाने से बर्फ का समतोलन नष्ट हो जाता है और बर्फ का यह समतुलित 'पहाड़' नीचे गिर कर सर्वनाश कर सकता है।

३—कैलीफोर्निया में 'ब्रिसिलकोन पाइन' का पौधा है जिसे लोग संसार का सबसे पुराने प्राणी मानते हैं। इनमें से एक कानाम 'मैथ्यूसैलाह' है और इनकी अवस्था ४,६०० वर्ष मानी जाती है।
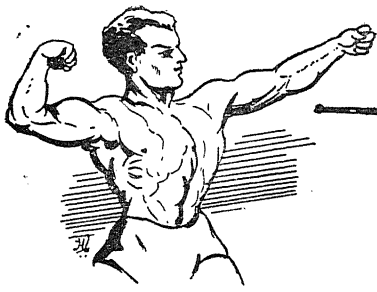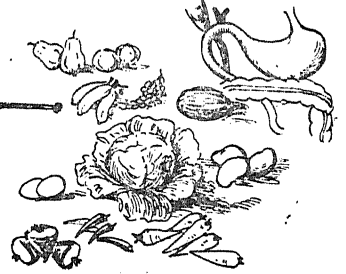
मानव हृदय के भीतरी छिद्रों के निदान के लिये आणविक विधि का उपयोग

नाट हैसल्टाइन

अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी० सी० के उत्तरी हिस्से में अमेरिका के कुछ सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक एवं चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धानकर्ता मानवजाति और उनकी भावी पीढ़ियों के जीवन को अधिक सुरक्षित और स्वस्थ बनाने के लिये अनुसन्धान-कार्य में लगे हैं।

बेथिस्डा (मेरिलैन्ड) स्थित स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी अद्भुत राष्ट्रीय संस्था (नेशनल इंस्टिट्यूट आफ हैल्थ) में इतने भिन्न प्रकार के अनुसन्धान-कार्य हो रहे हैं कि कोई भी व्यक्ति उनके बारे में ठीक तरह कुछ नहीं कह सकता है।

वहां के ७ इन्स्टिट्यूटों एवं चिकित्सा-अनुसन्धान केन्द्रों तथा ५०० बिस्तरों वाले अस्पताल में अनुसन्धान-कर्ता एवं वैज्ञानिक मनुष्य के सभी रोगों का हर मोर्चे पर मुकाबला कर रहे हैं।

उनके कार्य की प्रगति सम्बन्धी रिपोर्टें कभी कभी दैनिक पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर या लोकप्रिय पत्रिकाओं में विशेष लेखों के रूप में प्रकाशित होती रहती हैं। ये रिपोर्टें अक्सर टैक्निकल तथा चिकित्सा शास्त्र सम्बन्धी पत्रिकायें में छपतीं हैं।

लगभग प्रत्येक प्रयोगशाला एवं अनुसन्धानकर्ता की अपनी ही कहानी होती है। 'नेशनल हार्ट इन्स्टिट्यूट' नामी संस्था, जिससे इस लेख का सम्बन्ध है, हर वर्ष लगभग २०,००० ऐसे बच्चों को सहायता प्रदान करती हैं जिनके हृदय खराब होते हैं।

चिकित्सा-केन्द्र के वैज्ञानिकों ने मनुष्य के हृदय के भीतर विद्यमान खराबियों का पता लगाने के लिये नई आणविक विधि का विकास किया है। ये वैज्ञानिक हानिरहित रेडियो-सक्रिय गैस से भरे पात्र में से अपने रोगियों को लम्बा साँस खींचने को कहते हैं। बाद में हृदय के विभिन्न कोष्ठों में रेडियो सक्रियता की उपस्थिति की जांच करने के लिए हृदय कूपों से रक्त के नमूने एकत्र कर उनकी परीक्षा की जाती है और इससे उन्हें हृदय के भीतर विद्यमान छिद्रों के स्थान का ठीक से पता चल जाता है।

हृदय की खराबियां क्या जन्म से हैं या किसी रोग आदि के कारण उत्पन्न हुई हैं, इसका सही तौर पर पता लगाने के लिये विशिष्ट परीक्षण बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुये हैं। निदान के ऐसे तरीकों से अन्वेक्षण की दृष्टि से की जाने वाली शल्य चिकित्सा (चीर-फाड़) के खतरे दूर हो जाते हैं।

यद्यपि हृदय-फेफड़े को कृत्रिम तौर पर चालू रखने वाली निर्माण मशीनों के निर्माण परिणामस्वरूप अस्वस्थ्य हृदय को खोल कर ठीक करने के लिये समय मिल जाता है, फिर भी इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा पहले से ही यह जानकारी मिल जाती है कि हृदय के अन्दर क्या खराबी हो सकती है। इस प्रकार आपरेशन करने से पूर्व खराबी का आभास मिल जाने से सुधारने के लिए आवश्यक तैयारी कर लेना सम्भव हो जाता है। पहले प्रयुक्त की जाने वाली परीक्षण विधियों की अपेक्षा विकिरण विधि कहीं अधिक विश्वसनीय सिद्ध हुई है।

परीक्षणों सम्बन्धी प्राचीन एवं नवीन दोनों विधियां 'कारडायक कैथिट्राइजेशन' विधि (सूक्ष्म नली द्वारा हृदय-कोष्टों में रक्त के नमूने लेने) पर निर्भर रहती है।

'नेशनल हार्ट इन्स्टिट्यूट' के शल्य चिकित्सक डा० रिचर्ड जे० सैंडर्स ने यद्यपि हाल ही में नई हृदय-छिद्र अन्वेषी विधि का विकास किया है, परन्तु इस अल्प अवधि में ही चिकित्सका केन्द्र स्थित डाक्टरों ने कई हृदय रोगियों पर इसका सफल परीक्षण किया है।

हृदय रोग सम्बन्धी वैज्ञानिक पत्रिका 'सरकूलेशन' के नवम्बर १९४७ के अंक में उक्त नये परीक्षण की प्रारम्भिक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी! उक्त चिकित्सा केन्द्र के डा० रौवर्ट पी ग्रान्ट, डा० एन्डिट जी० मौरो तथा डा० यूजीन ब्रानवौल्ड ने डा० सैन्डर्स के साथ मिलकर उक्त रिपोर्ट तैयार की थी।

हृदय के भीतर अप्राकृतिक रक्त प्रवाह के निदान के लिये दायें हृदय से सूक्ष्म नली द्वारा रक्त का नमूना लेने की विधि को पिछले कई वर्षों से प्रयुक्त किया जा रहा है। इस परीक्षण विधि का उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या हृदय के बायें भाग में तैयार हुआ ताजा खून (औषजन मिश्रित रक्त) रिस कर हृदय के दायें भाग में तो नहीं जा रहा है। हृदय के दायें भाग से प्रयुक्त हुआ खून (अशुद्ध रक्त) औषजन के लिए पुनः फेफड़ों में जाता है। चूंकि धमनियों में प्रवाहित रक्त का दबाव नाड़ियों में प्रवाहित रक्त की अपेक्षा अधिक होता है, अतः यह स्वाभाविक है कि खून का प्रवाह बायीं ओर से दाहिनी ओर अधिक दबाव वाले भाग से कम दबाव वाले भाग की ओर हो।

सूक्ष्म नली द्वारा रक्त-परीक्षण की प्रमाणित विधि के अन्तर्गत टाँग या बाजू की धमनी और हृदय के दायीं ओर के कोष्ठों से रक्त का नमूना लेकर उसमें औषजन की मात्रा की तुलना की जाती है। स्वस्थ हृदय की हालत में जब टांग या बाजू के रक्त के नमूने की परीक्षा की जाती है तो उससे हृदय के नमूने की अपेक्षा अधिक औषजन पाई जाती है। जब हृदय के बायीं ओर के कोष्टों का ताजा खून किसी प्रकार दायीं ओर के कोष्टों में प्रविष्ट हो जाता है तो बाजू तथा हृदय के रक्त के नमूने में औषजन का स्तर लगभग बराबर रहता है। निदान शास्त्रियों की दृष्टि में इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि हृदय के भीतरी कोष्टों में कहीं न कहीं कोई छेद है।

हृदय रोग के विशेषज्ञों ने स्वीकार किया है कि रक्त में विद्यमान औषजन की मात्रा की परस्पर तुलना करने के फलस्वरूप प्राप्त बहुधा भ्रामक और गलत भी सिद्ध होते हैं।

अधिक उत्तम परीक्षण विधि का विकास करने के उद्देश्य से डा० सैंडर्स तथा उनके साथी डाक्टरों ने मिल कर रक्त विश्लेषण के लिए नाइट्रस ऑक्साइड गैसें को प्रयुक्त किया। 'नेशनल हार्ट इन्स्टिटस्यूट' के भूतपूर्व अधिकारी डा० जेम्स कालोले के निरीक्षण के आधार पर उक्त परीक्षण को शुरू किया गया। इस परीक्षण के अन्तर्गत रोगी को १५ प्रतिशत नाइट्रस आक्साइड, २६ प्रतिशत औषजन तथा ६४ प्रतिशत नाइट्रोजन मिश्रित

गैस को एक मिनट तक सुँघाया जाता है। इस एक मिनट की अवधि में हृदय की दायीं ओर से तथा हृदय से दूर स्थित किसी धमनी से रक्त के नमूने परीक्षण के लिए निकाल लिए जाते हैं।

बाद में फेफड़ों के माध्यम से नाइट्रस आक्साइड शुद्धरत में पहुँचता है और यहां से रक्त में मिश्रित होकर हृदय के बायें कोष्टों में जाता है। वहां से मुख्य धमनी द्वारा यह रक्त शरीर की असंख्य धमनियों में प्रवाहित होता है। स्वस्थ शरीर में नाइट्रस आक्साइड उन नाड़ियों तक पहुँचने में कुछ समय लगता है जो अशुद्ध रक्त को हृदय तक पहुँचाती है इसलिए हृदय की दायीं ओर से प्राप्त रक्त के नमूने में नाइट्रस आक्साइड की मात्रा के मौजूद होने पर निदान करने वाले डाक्टर फौरन यह समझ जाते हैं कि हृदय के भीतर कोई छेद है या वहां रक्त का संचार अप्राकृतिक ढंग पर हो रहा है।

परीक्षण करते समय डाक्टरों ने सब से पहले हृदय से फेफड़े को प्रयुक्त रक्त ले जाने वाले धमनी से रक्त का नमूना लिया। चूंकि यह रक्तवाहिनी हृदय के शरीर की ओर ले जाती है इसलिये इसे धमनी कहते हैं चाहे इसमें प्रयुक्त हुआ ही रक्त क्यों न प्रवाहित होता हो। उक्त धमनी के रक्त का नमूना लेने के तुरन्त बाद में ही हृदय के निचले दायें कोष्ट से रक्त का नमूना ले लिया जाता है। बाद में रक्त का नमूना निकालने वाली सूक्ष्म नली को तीसरी बार रक्त का नमूना लेने के लिए हृदय के ऊपरी कोष्ट में प्रविष्ट कर दिया जाता है।

नाइट्रस आक्साइड का तुलनात्मक दृष्टि से परीक्षण करने से जांच करने वालों को यह पता चल जाता है कि खराबी कहां है। यदि शुरू के नमूनों में नाइट्रस-आक्साइड के बारे में पता न चले तो डाक्टर यह समझ लेते हैं कि रोगी के हृदय का रोग अन्य प्रकार का है।

नेशनल हार्ट इन्स्टिटीय्यूट के डाक्टरों ने २०० से भी अधिक रोगियों पर नाइट्रस आक्सौइड के परीक्षण किये हैं और उन्हें कोथजन तथा पता लगाने वाली अन्य परीक्षण विधियों से भी अधिक उत्तम पाया। इसके बाद डाक्टरों ने यह निर्णय किया कि यदि वे रेडियो-सक्रिय गैस को प्रयुक्त करें, तो उन्हें प्रत्यक्ष इस से अधिक जल्दी परीक्षण के परिणामों का पता चल सकेगा। रेडियो-सक्रिय गैस 'क्रुपटान-८५' को प्रयुक्त करने के बाद उन्हें एक मिनट में ही 'गाइगर काउन्टर' यन्त्रों की सहायता से सही उत्तर मिल गए।

डाक्टर इस बात पर एक मत थे कि नई रेडियो-सक्रिय गैस पूर्ण रूप से हानि रहित है। इसका किसी भी तरह से शरीर के तन्तुओं पर कोई असर नहीं होता है। और नाड़ियों तक पहुँचने से पहले यह लगभग लुप्त हो हो जाता है। रेडियो-सक्रिय क्रुपटान से बीटा किरणों का विसर्जन होता है। यह किरणें इतनी शक्ति शाली हैं कि इन्हें कागज के एक पत्र द्वारा रोका जा सकता है।

पुराने साहित्य में अंतरिक्ष यात्रा

[शिवमोहनलाल निगम तथा डा० यतेन्द्र पाल वार्ष्णेय]

अन्तरिक्ष यात्रा की धारणा, बिना ग्रहों की उपस्थिति की कल्पना किये, आना बहुत असम्भव थी। यद्यपि बुद्ध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति तथा शनि आदि ग्रहों का पता विद्वानों को बहुत पहले से ही था परन्तु इन्हें सदैव घूमने वाले नक्षत्रों का ही स्थान मिल पाया था। यही नहीं तत्कालीन दार्शनिकों ने इनके सम्बन्ध में विभिन्न मत भी दिये। इन सबमें पैथागोरस के अनुयाइयों का अनुमान वास्तव में सत्य था। उन्होंने पृथ्वी भी एक ग्रह है, की शिक्षा देना भी प्रारम्भ कर दी थी। फिर भी इन विचारों को अमान्य ही समझा गया जबकि इनकी सत्यता के लिए कई तथ्य उपस्थित किये जा सकते थे। इसी कारण से प्राचीन काल में इस यात्रा की सम्भावनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

सूर्य तथा चन्द्रमा के बड़े आकारों ने वहां की भौतिक स्थिति के विषय में कल्पना करने के लिए विद्वानों को उत्साहित किया और चन्द्रमा में पड़े धब्बे वहाँ के पर्वतों तथा महासागरों का स्थान भी पा गये। इन कल्पनाओं के बाद, चन्द्रमा भी पृथ्वी की तरह एक ग्रह है, का विचार लोगों में आया। यह विचार इसके पूर्व भी पैथागोरस के अनुयाइयों द्वारा रखा जा चुका था। चन्द्रमा के विषय में कल्पनाओं की शृंखला टूटी नहीं बल्कि वहाँ सृष्टि भी रही होगी—का भी अनुमान उस समय किया गया। इधर साहित्यकारों को कल्पना करने के लिए आधार मिल गया। अतः उन्होंने इस विषय पर कई कहानियाँ लिख दीं।

सबसे पहली कल्पना सामोस के लुसायन की True History थी जिसमें नायक का जहाज एक जल स्तम्भ द्वारा चन्द्रलोक पहुंच गया। इसी लेखक ने पुनः दूसरी पुस्तक में अपने नायक को उसके दो पर लगाकर चन्द्रलोक पहुँचाने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् लगभग १५०० वर्षों तक साहित्य जगत् इस विषय में शान्त रहा। आधुनिक काल आया जिसमें वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा प्राप्त तथ्यों ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानने से इन्कार कर दिया। यहीं से साहित्यिक कल्पनाओं का आधार बदल गया। प्राचीन काल के पर्यवेक्षण आँख द्वारा किये गये थे जिनकी अब कल्पना भी कठिन है। आज से करीबन ३०० वर्ष पूर्व एक दूरदर्शक यन्त्र की रचना गैलेलियो द्वारा हुई और इससे उन्होंने चन्द्रमा में स्थित पहाड़ियों तथा पर्वतों का भी पता लगाया। उनका यह प्रयास केवल चन्द्रमा के लिए ही नहीं था वरन् उन्होंने अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी कुछ तथ्यों का पता लगाया। जिस प्रकार पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा घूमता है उसी प्रकार वृहस्पति के चारों ओर चार बहुत छोटे छोटे उपग्रह घूम रहे हैं यह तथ्य भी उन्हीं के प्रयासों से प्राप्त है। पूर्व के ज्योतिषियों द्वारा इन ग्रहों की दूरियों की गणना भी हो चुकी थी परन्तु इस यन्त्र द्वारा अन्तरिक्ष की गहराइयों का सच्चा साक्षात्कार और भी सरल हो गया। यही थे वे. तथ्य जिनका आधार लेकर साहित्यिक कल्पनाओं ने करवट बदली।

वैज्ञानिक आधार पर कल्पनाओं की रचना का प्रारम्भ केपलर ने किया। केपलर उस समय के प्रमुख ज्योतिषी थे तथा उन्होंने आकाशीय पिण्डों की गति के नियमों का भी निर्धारण किया था। उस काल के लोगों का जादू पर अधिक विश्वास था और यही कारण था कि इन्होंने अपनी कल्पना Somnuim के नायक को कुछ जादुयी साधन द्वारा चन्द्रलोक पहुँचाने की कोशिश की थी। शायद उस समय वैज्ञानिक साधनों की इतनी कमी थी जिसके कारण तत्कालीन विद्वान को जादू का सहारा लेना पड़ा था। इनका चन्द्रलोक वर्णन दूर दर्शक यन्त्र द्वारा प्राप्त तथ्यों पर आधारित था तथा इन्होंने वहाँ पर वातावरण तथा सृष्टि की उपस्थिति को माना।

केपलर के इस प्रयास ने अन्य लेखकों को भी इस

दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा दी। ४ वर्ष बाद ही बिशप गाडविन की कल्पना M n in the Moon साहित्य क्षेत्र में आई। इसमें इन्होंने कठिनाइयों का ध्यान न देते हुए अपने नायक को लट्ठों के बड़े, जो गोकि प्रशिक्षित वत्तखों द्वारा खींचा गया था, पर ही बिठाकर चन्द्रलोक पहुंचाने की कोशिश की। परन्तु विशेष बात यह थी कि वहाँ पर भार के अदृश्य होने तथा पृथ्वी के अपेक्षा गुरुत्वाकर्षण कम होने की कल्पना दी। वह कल्पना महत्वपूर्ण इस लिए है कि गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी वैज्ञानिक तथ्य इसके ५० वर्ष पश्चात् न्यूटन द्वारा ज्ञात किये गये थे। कुछ वर्षों बाद ही सन् १६४० ई० में बिशप विलकिन्स ने भी एक पुस्तक ,Discourse Concernig a New World लिखी जो कि कोरी साहित्यिक कल्पना न थी वरन् वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर वहां की भौतिक परिस्थितियों पर डाला गया प्रकाश था। इसके द्वारा उन्होंने 'उड़ने वाले रथ' की कल्पना वैज्ञानिकों के सामने रखी। इस प्रकार के लेखकों में सबसे सराहनीय साइरनो हैं जिन्होंने अपनी सन् १६५६ ई० में प्रकाशित पुस्तक 'Voyage to the Moon and un' के द्वारा 'राकेट' जैसे यन्त्र की सम्भावनाओं की ओर संकेत किया। इस प्रकार की तत्कालीन रचनाओं में फोन्टेनली की स० १६८६ ई० में प्रकाशित पुस्तक तथा सन् १७५२ ई० में वाल्टायर की 'Microme as' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

अन्तरिक्ष यात्रा १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही और भी कठिन दिखने लगी क्योंकि विज्ञान ने इस विषय पर काफी तथ्यों का पता लगा लिया था फिर भी इन पर विजय पाने के लिए विज्ञान शान्त था। जहां गुब्बारे की खोज वायुमण्डल की यात्रा के विचार को सुदृढ़ बनाती थी वहां यह भावना कि काफी ऊंचाई पर बिना किसी वाह्य सहायता के व्यक्ति का जीवन असम्भव है, हतोत्साह कर देती थी। यह कहानी अब उतनी सरल न थी जितनी कि गाडविन तथा विलकिन्स के लिए हो चुकी थी। वैज्ञानिक एक क्षण के लिए रुका भी पर साहित्यकारों की कल्पनाओं को मुड़कर एक क्षण देखने के लिए भी समय न था। उन्हें गुरूत्व विपरीत कार्य कर ने वाले पदार्थ का स्वप्न दिखने लगा। 'इस बीच वर्ने ने 'Earth to the Moon के नायक को किसी तोप द्वारा प्रक्षेप (Project) से ही चन्द्रलोक पहुँचाने की कोशिश की। वह चन्द्रमा के पास चक्कर लगाकर पुनः पृथ्वी पर वापस आ गया। शायद यह इस यात्रा के प्रथम प्रयास के भविष्य का संकेत दे रहा हो। इसमें वर्ने ने अपने नायक पर पड़ने वाले दिखावटी (Apparent) हजारों टन के भार की सच्चाई को साधारण हँसी में टाल दिया क्योंकि यह उसकी कल्पना कि सफलता के लिये आवश्यक था।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक कल्पना एच० जी० वेल्स ने की। पूर्व के लेखकों ने तो केवल गुरूत्व के विपरीत कार्य करने वाले पदार्थ का स्वप्न मात्र देखा था, पर इन्होंने Cavorite जो कि गुरूत्व के विपरीत कार्य करता था, की खोज कर डाली। अपने नायक को एक गोले, जिसके चारो ओर यह पदार्थ लगा था, के अन्दर बिठाकर चन्द्रलोक भेजा। वह जिस दिशा में जाना चाहता था उसी ओर की खिड़की खोल लेता था। आश्चर्यजनक विचार यह था कि गुरूत्व के विपरीत कार्य करने वाला पृथ्वी पर कैसे पाया जा सकेगा। हालाँकि आश्चर्यपूर्ण कल्पनाएँ सत्यता को स्थान नहीं देती फिर भी संकेत अवश्य देती हैं। गुरूत्व के विपरीत कार्य का विचार कोई असम्भव विचार नहीं।

इन कल्पनाओं में भले ही सत्यता न रही हो परन्तु वैज्ञानिकों के समक्ष समय समय पर आवश्यक दृष्टिकोण अवश्य रखा जो आज भी वैज्ञानिकों को प्रेरणा दे रहे हैं। यही छोटी छोटी रचनाएँ हैं जिन्होंने वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष की सत्यता का पता लगाने में रत रहने के लिये प्रोत्साहन दिया। आज भी वैज्ञानिक का इस दिशा में अथक प्रयास इन स्वप्नों की सच्चाई का रूप देने में कोई कमी नहीं रख रहा है और शायद वह समय दूर नहीं जब ये स्वप्न साधारण व्यक्ति की समझ में आ जाने वाली सत्यता का रूप धारण कर ले।

विमानों की उड़ान और बेतार यन्त्र

लेखक श्री ए० पुरुषोत्तम,

रेडियो कंस्ट्रक्शन और डेवलपमेंट यूनिट, नागरिक उड़ान विभाग, भारत सरकार

विमानों के आरम्भ होने से जो समस्यायें सामने आयीं, उनमें सबसे बड़ी समस्या उड़ते विमान के साथ सम्पर्क स्थापित करने की थी। विमानों का आवागमन नियमित होने और यात्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से यह समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। उड़ान के क्षेत्र में रेडियों का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। रेडियों संचार का अत्यन्त उपयुक्त साधन और विमान चालन में सहायक सिद्ध हुआ है।

आरम्भ में जब रेडियो का उपयोग नहीं किया जाता था, उड़ते विमान के साथ सम्पर्क रखने का एक मात्र साधन झन्डे और बत्तियां ही थीं। उस समय हवाई-अड्डों पर घास आदि जलाया जाता था, जिस से विमानों को उसके धुयें से पता लग जाता था कि वहां अड्डा है। बेतार यन्त्रों के आविष्कार से उड़ते विमानों और हवाई-अड्डों के बीच सम्पर्क रखने की सुविधा हो गयी। यह यन्त्र वजन में हलका होता है और बड़ी आसानी से विमानों में लगाया जा सकता है।

टामस एडिसन ने शीशे की वायु शून्य नली में जलता तिनका रख कर बिजली की बत्ती का आविष्कार किया। उसी आविष्कार में एक और आविष्कार छिपा था, जिस से आगे चल कर भौतिक-शास्त्र में एक नयी शाखा कायम हुई। तिनके के जलने के साथ एडिसन को यह भी पता चला कि उस शीशे की शून्य नली में केवल तिनका ही नहीं जल रहा था, बल्कि कुछ और भी हो रहा था, जिस से आगे चल कर रेडियो, राडार, टेलिविजन आदि सम्भव हुआ।

उड़ान के लिये रेडियो की जितनी आवश्यकता है, उतनी परिवहन के किसी अन्य साधन के लिये नहीं। सुसंगठित दूर संचार विभाग की स्थापना से ही मौसम की खराबी-आदि के बावजूद विमान ठीक समय पर उड़ते हैं।

यदि कुहरा हो तो मोटर, रेल या जहाज अपना वेग कम कर सकते हैं या किसी भी क्षण रुक भी सकते हैं, परन्तु उड़ते विमान के लिये यह सम्भव नहीं कि वह उड़ते-उड़ते एक दम रुक जाय या अपना वेग कम कर दे। कुहरे में उड़ते समय नीचे उतरना भी असम्भव होता है या बहुत कठिन होता है, क्यों कि कुहरे के कारण कुछ दिखाई नहीं देता। ऐसे मौके पर रेडियो की सहायता से विमान चलाना और हवाई यातायात के नियंत्रण केन्द्र से या अन्य विमान से सम्पर्क स्थापित करना अत्यन्त जरूरी होता है।

हवाई उड़ान में बेतार का उपयोग इस प्रकार किया जाता है :

(१) विमान चलाने में रेडियो का उपयोग जैसे दिशा बताना, प्रकाश डाल कर स्थान बताना, नीचे उतरने के तरीके तथा विमान-चालन के लिये अन्य सहायता।

(२) विमान के मार्ग तथा गंतव्य हवाई-अड्डे में और आवश्यकता पड़ने पर अन्य अड्डों में कैसा मौसम है यह बताना।

(३) विमान के कप्तानों की सुरक्षा, उड़ने की योजना, उतरने या उड़ने के सम्बन्ध में आदेश तथा जानकारी देना।

(४) हवाई-अड्डों को विमानों के उड़ने और उतरने के बारे में सूचना देना तथा उड़ान सम्बन्धी अन्य आवश्यक जानकारी देना।

(५) संचालन और रोज के काम के सम्बन्ध में रेडियो-तार आदि भेजना।

विभिन्न हवाई-अड्डों को विमान-चालन तथा संसार के लिए विभिन्न सुविधाओं की जरूरत होती है। इसलिए दूर-संसार की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड़ान संगठन ने हवाई-अड्डों के नियंत्रण के सम्बन्ध में नियम आदि बनाये हैं। इनके अनुसार लगभग पांच मील के घेरे में हवाई-अड्डों का नियंत्रण २५ मील के घेरे में प्रवेश नियंत्रण तथा १०० मील के घेरे में क्षेत्र नियंत्रण होना चाहिए। और उड़ान सूचना क्षेत्र के अंतर्गत ५०० से ६०० मील तक के घेरे का प्रदेश होना चाहिए। इसके अलावा ठीक नियमित तथा सुरक्षित ढंग से विमान चलाने के लिए रेडियो तथा राडार की व्यवस्था की जानी चाहिए। हवाई-अड्डों तथा विमान कम्पनी के विभिन्न कार्यालयों में आपसी सम्पर्क की व्यवस्था आवश्यक है।

दूसरे महायुद्ध के दौरान में रेडियो इंजीनियरी तथा भौतिकशास्त्र के विशेषज्ञों ने मिलकर सेना के उपयोग के लिए राडार यंत्रों का निर्माण किया। उन्होंने केवल पांच वर्षों में ही राडार की पूरी प्रणाली निकालकर वह काम किया जो बीस वर्षों में होता। इसी अवधि में वायुयान संचार की काफी प्रगति हुई और विमान-चालन में तथा संचार में रेडियो के विभिन्न तरीके निकाले गये। दूर-संचार के क्षेत्र में इतनी तेजी से प्रगति हुई कि निर्माण के बाद जल्दी यंत्र पुराने पड़ जाते थे। प्रगति की यह रफ्तार दूसरे महायुद्ध के बाद भी कायम रही।

देश में विमान यात्रा का बिस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है। इसकी सफलता के लिए विकसित दूर-संचार प्रणाली तथा अन्य सुविधाओं का होना आवश्यक है। इस विस्तार का उद्देश्य उड़ान इंजीनियरी में हाल में जो प्रगति हुई है उसके अनुसार तथा अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड़ान करार के अंतर्गत भारत को अपने हवाई-अड्डों पर जो-जो सुविधाएं देनी हैं, उन सबको जुटाना है।

बुद्धिमान कुत्ता

यह सोचना गलत है कि कुत्ते इतने बुद्धिमान होते हैं जैसे कुछ मनुष्य। कुत्ते के प्रेमी सदा यह कहा करते हैं। कुत्ते एक भयानक क्रिया, हमला आदि के बाद पूरा भोजन कर सकता है परन्तु मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि उसे भयानक मानसिक धक्का लगता है। परन्तु जन्तु बुद्धिमान होते हैं। उदाहरण के लिये एक भेड़ की रखवाली करने वाले कुत्ते को लीजिये! भेड़ के शरीर में देहिका (पिस्सू) होती है। यह उनके साथ रहने वाले कुत्ते के शरीर पर भी आ जाती हैं। इन देहिकाओं से छुटकारा पाने के लिये यह कुत्ते एक अद्भुत प्रयोग करत हैं। वह जहां भेड़ बन्द रहते हैं वहां जाते हैं और वहां पर गिरने वाले भेड़ों के बाल अपने मुंह में दबा लेते हैं। जब बालों का काफी बड़ा गुच्छा उनके मुंह में आ जाता है तब वे कहीं पास ही स्थिति पोखरे में घुस पड़ते हैं। वे ज्यों ज्यों पानी में घुसते हैं देहिकायें पानी में डूबे भाग से हट कर सूखे पर आती जाती हैं। अन्त में वह मुँह में दबाये बालों के गुच्छे के व नथनों के अलावा सारा भाग पानी में डुबो देते हैं जिससे सारी देहिकायें बालों के गुच्छे पर आ जाती हैं। तब वह उस गुच्छे को पानी में छोड़ देता है और डुबकी मार कर किनारे पहुँच जाता है। उसके शरीर पर अब एक भी देहिका नहीं होती!

यदि ये जीवित होते !

डा० सत्य नारायण प्रसाद

विलक्षण जन्तु जगत का इतिहास भी विलक्षण है। विद्वानों ने ऐसे जन्तुओं का भी पता लगाया है जो अतीत काल में, मानवसृष्टि से पहले, पृथिवी पर प्रमुख रूप से विद्यमान थे। ये दैत्याकार जीव बदलती हुई दुनिया की दौड़ में पिछड़ गये, इनका अस्तित्व लोप हो गया। केवल उनकी प्रस्तरीभूत अस्थियों के ही आधार पर उनके आकार का पता लगता है। उनके बारे में इस लेख से आसानी से जानकारी हो जायगी।

पूर्व काल के जन्तु जगत की तड़क-भड़क का पुनर्निरीक्षण करते समय उन विराट जन्तुओं का उल्लेख आवश्यक हो जाता है जो किसी समय मनुष्य जन्म से बहुत बहुत पहले, पृथ्वी पर शासक रूप में थे। छिपकली, कछुए, सांप इत्यादि सरीसृप अर्थात् जमीन पर रेंगने वाले जन्तुओं के ये पुरातन संबंधी अवशेष स्वयं काल की गोद में विलीन हो गए हैं। परन्तु वैज्ञानिकों ने हजारों फुट की गहराई से चट्टानों के बीच से इन जन्तुओं के अस्थि पंजर खोद निकाले हैं और उन्हीं के आधार पर इनके शरीर की बनावट का अनुमान करते हुए इनके चित्र बनाये हैं। वास्तव में इन्हें किसी ने देखा तक नहीं पर इनके चित्र बड़े चातुर्य तथा धैर्य के साथ प्रस्तुत किए गए हैं ताकि बिल्कुल वास्तविक प्रतीत हों। आधुनिक संसार में जहां ऐसे कलाकार हैं, जो मनुष्यों के अस्थिपिंजर देख कर ही उनके व्यक्तिगत चिन्हों समेत ऐसी तस्वीर तैयार करते हैं जिससे केवल देखने वाले को आश्चर्य ही नहीं होता वरन् स्वयं उनके असली चित्र तक फीके पड़ जाते हैं तो इन चित्रों की यथार्थता पर सन्देह का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

सरीसृप का विकास छिपकली की शक्ल वाले मेंढक की जाति के जन्तु, सलामेन्डर से हुआ है। सबसे पहले मेंढक की जाति वाले जानवरों ने ही पृथ्वी पर आने का साहस किया। इनके शरीर की बनावट ऐसी होती है कि यह सफलतापूर्वक जल तथा पृथ्वी दोनों पर रह सकते हैं। पर रेंगने वाले जन्तु व एक दम पृथ्वी पर रहने वालों में, चिड़ियों की तरह पैर वाला और बत्तख की भांति चोंच वाला डायनौसौर सर्वप्रथम हैं। इसलिए इनका चमड़ा कड़ा होने लगा जैसा कि आधुनिक काल में भी पाया जाता है ताकि यह गर्मी इत्यादि साधारण ही बरदाश्त कर सकें। इसके साथ इनके फेफड़े भी अधिक कार्य-साधक होने लगे। इन्होंने सबसे पहले ऐसे अंडे देना आरम्भ किया जो कड़े छिलके से ढंके रहते हैं। इन अंडों को यह स्वयं गड्ढे खोदकर उन्हें पानी से दूर सुरक्षित स्थानों में रखने लगे।

प्रकृति स्वयं सर्वगुण सम्पन्न जन्तुओं के विकास के लिये चिन्तित रहती थी। इसलिए उसने हर भांति के जन्तुओं को अपनी सफलता व्यक्त करने का अवसर दिया। इस प्रकार विकासवाद के मार्ग पर अग्रसर होने वाले रैप्टाइल ने पृथ्वी पर प्रमुख स्थान ग्रहण किया और ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग एक या दो हजार लाख वर्ष तक यह धड़ल्ले से पृथ्वी पर शासन करते रहे। प्रकृति, समय तथा अनुभव के छन्ने से छान कर असफल जन्तुओं को करकट की भांति निकाल फेंकती है इसलिए इनमें से बहुत से जन्तु जो असफल हुए सदा के लिए, लापता हो गए।

प्रकृति की पुस्तक के सभी परिच्छेदों अथवा दीर्घकाय युगों में मनुष्य के युग को छोड़कर सरीसृप का युग सभी से बड़ा अथवा शान्दार हुआ है। बहुत से लोग सरीसृप को डायनोसौर (भयंकर छिपकली) नामक विराट सरीसृप से सम्बन्धित करते हैं। डिकिन्स जैसे साहित्यकारों ने भी अपनी पुस्तक 'ब्लीक हाउस' में मंगालोसौर्स का उल्लेख किया है। यह सत्य है कि डायनोसौर ने निःसन्देह दीर्घ-

काय व्यक्तियों की भांति पृथ्वी पर बहुत दिनों तक विचरण किया परन्तु यह सरीसृप युग के सर्वेसर्वा नहीं थे। सरीसृप के जन्म के लाखों वर्ष बाद तक डायनोसौर का नाम और पता तक पृथ्वी पर न था।

प्राथमिक सरीसृप साधारण हुआ करते थे और साथ ही साथ एक दूसरे से काफी मिलते जुलते! इनमें से थोड़े ही ऐसे थे जो छः से दस फुट लम्बे होते थे। बाकी सब सामान्य रूप से छोटे हुआ करते थे। परन्तु समय की प्रगति के साथ इन्होंने भी आवश्यकता-नुसार भिन्न भिन्न अनोखेपन पैदा किए और हर प्रकार की जलवायु में रहने योग्य अपने आपको बनाया परन्तु अब प्रकृति का विलक्षण अनुसंधान प्रारम्भ हुआ। विराट शरीर वाले जन्तु पैदा हुए और इन्होंने भी, जैसा निम्नलिखित से प्रतीत होगा, भिन्न भिन्न प्रकार की विशेषताएं पैदा कीं और पृथ्वी के हर कोने में विचरते रहे, खाया पिया और संसार पर शासन किया। पर कदाचित प्रकृति की उन आवश्यकताओं को पूरा कर सके जिसे प्रकृति की खोज थी-फलस्वरूप सदा के लिए लापता हो गए। लगभग पांच हजार प्रकार के डायनोसौर का उल्लेख मिलता है। यह उत्तरी अमरीका, ग्रीनलैण्ड, दक्षिणी अमरीका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और भारतवर्ष इत्यादि सभी स्थानों में पाए जाते थे।

इनमें से एक जो कि सबसे बड़ा तो नहीं, फिर भी, आश्चर्यपूर्ण डिप्लोडोकस नाम का था। हाथी की भांति बड़ा तथा मोटा जानवर जिसके कूल्हे के पास की हड्डियां ही केवल तेरह फीट ऊँची है। इनके अंग मुटापे के कारण फूले प्रतीत होते थे। गर्दन बहुत लम्बी पर सर उसके मुकाबले में बहुत छोटा केवल दो फुट का होता था। सर पर दो बड़ी गोलाकार आंखें होती थी और नथुने ठीक आखों के नीचे की ओर। इनका जबड़ा उस प्रकार का होता था जैसा चिड़ियों में पाया जाता है। दांत पतले होते थे। इसका सर अथवा गला शरीर की लम्बाई से दुगना होता था। अब दुम को देखिए। पचास फुट लम्बी दुम प्रारम्भ में रस्से की भांति होती थी पर पीछे की ओर धीरे धीरे पतली होती जाती थी यहां तक कि अन्त में एक पतले डोरे की भांति हो जाती है इनके चारो पैर छोटे खम्बों की भांति होते थे। प्रत्येक पैर में पांच अंगुलियां होती थी और झुके हुए मजबूत नाखून।

ऐसा प्रतीत होता है कि दुम का प्रयोग यह अपने शत्रु को मारने के लिए करता था। यह शाकाहारी था और जल के किनारे के पेड़ों को उखाड़ कर उन्हीं को खाता था। पौधों को खोदने का काम पंजों से लेता था। कंघी की भांति दांत चलनी का काम करते थे। यह अपनी सुरक्षा के लिए पानी में छिप जाते और गर्दन बाहर निकाल कर सांस लेते थे। कभी कभी यह कंगारू की भांति अपनी दुम के सहारे पिछले पैरों पर खड़ा होता था। इतने बड़े शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ऐसा प्रतीत होता है कि, यह सदा खाते ही रहते थे। इन जन्तुओं का दिमाग बहुत छोटा होता था इसलिए खोपड़ी की वह जगह जहां दिमाग रहता है काफी पतली होती है। मालूम होता है कि इनकी चेतना शक्ति बहुत मन्द थी। किसी दुर्घटनावश दुम कुचल जाने का समाचार भी शायद मस्तिष्क तक पहुँचने में काफी समय लग जाता रहा होगा।
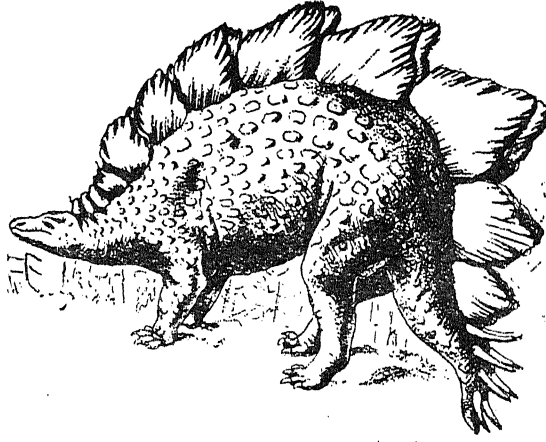
शरीर को देखते हुये उनका वजन कम होता था। एक ७४ फुट लम्बी ह्वेल के अस्थिपंजर का वजन लगभग १८ हजार पौंड होता है, पर उतने ही लम्बे डायनोसौर की हड्डियों का वजन केवल १० हजार पौंड ही होता

है। ऐसा शायद इसलिए होता है ताकि साधारण ही यह अपने पिछले पैरों पर खड़े होकर पेड़ों की चोटियों की पत्तियां खा सकें। अफ्रीका में एक डायनोसौर की हड्डियां मिली हैं। वह सबसे बड़ा समझा जाता है। कन्धे के नीचे इसकी हड्डियां २० फुट ऊंची है अर्थात् इसके कन्धे का हिस्सा एक मनुष्य की ऊंचाई से लगभग चौगुना रहा होगा। यह अपना सर पृथ्वी से ३५ फीट ऊपर उठा सकता था। ऐसे राक्षसी जन्तु पृथ्वी के कोने-कोने में पाये जाते थे। कुछ लोगों का तो बिचार है कि यह चलती फिरती जीती जागती पहाड़ियां अधिकतर पानी के पास पाई जाती थीं। निःसन्देह ऐसा ये अपनी सुरक्षा के लिए ही करते थे।

अब तक विचार कीजिए कि यदि यह विराट जानवर जीवित होते तो क्या होता। क्या हम इन्हें भी हाथी घोड़ों और ऊँटों की भांति पाल सकते? क्या इनके द्वारा भी हम बोझा ढोने का काम करा सकते? जरा यह भी सोचिए कि ऐसा विचित्र जानवर यदि अब कहीं अचानक शहर में आ जावे तो क्या होगा?

डयनौसौर

क्या डिप्जोडोकस क्या इग्वानी डोन, क्या डकबिल्ड डायनोसौर सभी एक से बढ़कर एक विलक्षण जन्तु थे।

इन दीर्घकाय शाकाहारी छिपकलियों के साथ विराट मांसाहारी छिपकलियां भी पाई जाती थीं। सचमुच यह बड़ी ही भयंकर तथा आपत्तिजनक रही होंगी। यदि प्रकृति ने स्वयं इन्हें पृथ्वी से निकाल न दिया होता तो हमारा क्या अन्त न हो जाता? क्या यह राक्षस मनुष्यों और जन्तुओं को जीवित रहने देते? हो सकता है कि हमारे जन्तु-जगत के पितामह इन्हीं के पेटों में हज्म हो जाते और आज हमारा नाम निशान तक न होता!

यह अपने शाकाहारी भाई बन्धुओं की भांति बड़ा न था। पर एक बड़े से बड़े कंगारू से अवश्य ही बड़े शरीर वाला हुआ करता था। इसके पैर भी कंगारू के पैरों से तगड़े होते थे। ये दुष्ट मनुष्यों की भांति सीधे ही चलते थे। चलने में पिछले पैरों का सहारा अपनी दुम से लेते थे। इनके इस प्रकार चलने का अनुमान वैज्ञानिकों ने पत्थरों पर पाये गये इनके पैरों के चिन्हों से किया है। ऐसा मालूम होता है कि ये शेर की भांति कूद भी सकते थे। आगे के पैर छोटे थे और पन्जों में शेर की भांति नाखून होते थे। इनके जबड़े भी बड़े होते थे। और किनारे तीखे चार चार, पांच पांच इन्च लम्बे दांत होते थे।

इन खूंखार जन्तुओं ने तहलका मचा दिया। दूसरों की सुरक्षा की जटिल समस्या आ उपस्थित हुई। ऐसी अवस्था में प्रायः यह होता है कि बेचारा दुर्बल या तो भाग निकलता है या फिर शत्रु का सामना करता है। सामना करने के लिये अस्त्र शस्त्र होना आवश्यक है इस लिये अपनी सुरक्षा के लिये यह अपने शरीर के ऊपर बड़े बड़े कवच की भाँति अङ्ग पैदा करने लगे।
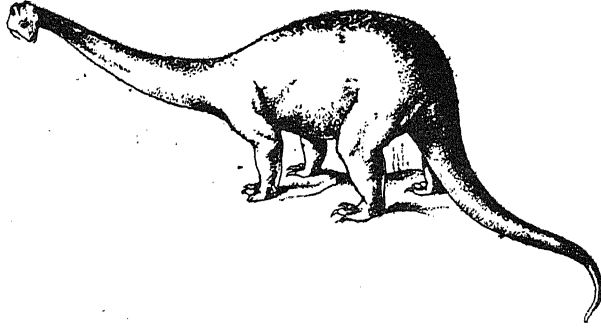
उत्तरी अमेरिका में जहाँ डायनोसौर की बहुलता थी एक बड़ी छिपकली, जिसके पैर चिड़ियों की भांति थे, पाई जाती थी। इसकी पीठ पर रीढ़ की हड्डी के ऊपर कांटे जैसे होते थे इस प्रकार के जन्तु को स्टीगोसौरिया कहते हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनके कूल्हे और पीठ बिल्कुल हड्डी के कवच जैसे हिस्से ढके रहते हैं और कन्धों पर सींगों की भांति के कांटे होते हैं। इनकी संख्या अधिक होती है। सब से अधिक शक्तिशाली स्टीगोसौर की पीठ पर चिपटे तिकोने टुकड़े होते हैं जिनके किनारे चाकू के फल की भांति तीव्र होते थे। लम्बाई में यह दुम से सिर तक २४ फुट का होता था और

कन्धे के नीचे सात फुट ऊँचा होता था। इसके कांटों की लम्बाई लगभग दो फुट होती थी।

परन्तु इतना अस्त्र शस्त्र युक्त शरीर भी बुद्धि में बड़ा छोटा होता था। यह अनुमान किया जाता है कि इनके दिमाग का वजन लगभग डेढ़ छटांक के होता था। पर इसके कूल्हे के क्षेत्र में सषुम्ना फूल कर काफी बड़ी ग्रंथि जैसी हो जाती थी। वजन में यह सहायक चेतना केन्द्र मस्तिष्क से लगभग दस गुना होता था। जब यह जानवर पाया गया था लोग इसे दो दिमाग वाला यूरीसूप कहते थे। परन्तु कूल्हे के क्षेत्र में सषुम्ना का इस प्रकार फूलने के कारण थे बड़े पैर और बड़ी दुम। इतने बड़े अंगों की चेतना शक्ति पर शासक-केन्द्र भी बड़ा ही होना चाहिये।

सशस्त्र डायनोसौर का एक और अमेरकी वर्ग था। वैसे तो इनमें भी कांटों इत्यादि की पंक्तियां वैसी ही होती थी जैसी ऊपर वर्णन की जा चुकी है। पर इनके अतिरिक्त इस वर्ग के जानवरों के खोपड़ी के पीछे की ओर हड्डी के नुकीले कांटों की एक झालर सी होती थी। इनमें भी सबसे भयंकर प्रत्येक आंख के पास दो फुट लम्बा बड़ा सींग होता था और वैसा ही डरावना एक नाक के ऊपर भी होता था। बहुत से वैज्ञानिकों का मत है कि इसके सुरक्षा के अस्त्र प्रायः उसके लिए परेशानी का कारण बन जाते थे। इतने भारी अंगों समेत उसे भागना दौड़ना भी कठिन हो जाता था शायद यही कारण था कि बेचारे संसार से सदा के लिए उठ गये।

पृथ्वी पर अथवा जल के किनारों पर शासन करने वाले डायनोसौर के अतिरिक्त और भी ऐसे बहुत से रेंगने वाले जन्तु थे जो उस समय से पाए जाते थे। यह उन जन्तुओं में से हैं जो पानी से बाहर निकले विकसित हुए और फिर पानी में वापस चले गए। वहां जा कर यह मछलियों पर अपनी जीविका का निर्वाह करने लगे। इनमें प्रमुख हैं इक्थिओ सौर्स अथवा मछली जैसी छिपकली। इसका सर घड़ियाल की भांति होता था और हाथ पैर चपटे सुफनों की भांति हो गए थे। इनकी सहायता से ये तैरते थे। ये काफी तेजी से तैरने वाले जानवर थे। इनकी दृष्टि भी काफी तीक्ष्ण थी। देखने में मगर का रूप था पर बनावट में मत्स्य का। इनकी उत्पत्ति के बाद एक दूसरा विलक्षण राक्षस पैदा हुआ जिसे प्लैसिओसौर्य कहते हैं। यह बिलकुल इक्थिओसौर्स की भांति बनावट में थे, केवल गर्दन और सर की बनावट में अन्तर था। छिपकली जैसा छोटा सिर बड़ी लम्बी गर्दन पर था। गर्दन पूरे शरीर की लम्बाई के बराबर थी और यह सहज ही चारों ओर घुमाई जा सकती थी।

जन्तु जगत के ऐसे अनोखे उदाहरण बहुत से हैं पर यहां पर केवल कुछ प्रमुख डायनोसौर का ही वर्णन किया गया है। इस भांति के कोई जानवर आजकल नहीं मिलते।

——×——

नवीनतम वैज्ञानिक चमत्कार अन्तरिक्ष-वाणी और भू-उपग्रह

अभी तक हम आकाशवाणी अथवा नभवाणी का नाम ही सुना करते थे। "मैं अमेरिका का प्रेसिडेण्ट बोल रहा हूँ"—यह वाक्य विज्ञान के क्षेत्र में एक नये चमत्कार के अविर्भाव का कारण बना है। वह चमत्कार है अन्तरिक्षवाणी का प्रादुर्भाव।

यह एक ऐसी अभूतपूर्व वैज्ञानिक घटना है, जिसकी मानव ने शायद कभी कल्पना भी-न की हो। उर्ध्वाकाश में ९२० मील की ऊँचाई पर अमेरिका का ४॥ टन भारी उपग्रह पृथ्वी की द्रुत गति से परिक्रमा लगा रहा है, और उससे उद्भूत अमेरिका के राष्ट्रपति की वाक्यावली इस भूमण्डल पर सुनाई दे रही है। अन्तरिक्ष से आवाज आती है..."आपके पास तथा समस्त मानव जाति के पास यह सन्देश भेज रहा हूँ कि अमेरिका संसार के सभी देशों के लोगों के लिये शान्ति एवं सद्भावना की कामना करता है।"

बड़े दिन के उपलक्ष्य में अन्तरिक्ष से प्रसारित यह शान्ति-सन्देश आशा है वैज्ञानिकों की कल्याणकारी प्रतिभा के फलस्वरूप अन्तरिक्ष-वाणी की आधार-शिला बन सकेगा और भविष्य में हम आकाश-वाणी के अतिरिक्त अन्तरिक्ष-वाणी भी सुन सकेंगे।

आकाश पर विजय पा लेने के पश्चात् मानव अब वाह्यकाश् अथवा अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने के लिये संघर्षशील हुआ है। अमेरिकी वैज्ञानिकों का यह प्रयास उस संघर्ष का एक नवीनतम और प्रबलतम अंग है। ऐसा प्रतीत होता है इस अद्भुत प्रयास में अनंत सम्भावनायें निहित हैं, जिन के उज्जवल स्वरूप के सम्बन्ध में हम अभी कोई भी कल्पना नहीं कर सकते। हां, हमें यह अनुभूति अवश्य होती है कि अवश्य ही मानव अब उर्ध्वाकाश में आगे बढ़ता ही जायेगा। उसके कदम पीछे नहीं हटेंगे। वह आकाश के वक्षस्थल को चीरता हुआ अन्तरिक्ष में प्रवेश करेगा, व्योम-विहार के समान अन्तरिक्ष-विहार करेगा, वहां से अनुपम सन्देश भेजेगा, और उड़ेगा पुन: आशाओं के सागर में हिलोरें मारता हुआ सौर-मण्डल स्थित ग्रह-पिंडों की ओर—अन्तरिक्ष की निस्तब्ध गहराई में दूर अति दूर।

बृहस्पतिवार की वह ऐतिहासिक घड़ी

अमेरिका में बृहस्पति की रात्री एक ऐसी ऐतिहासिक घड़ी बन कर आई, जब एक ८५ फुट लम्बे विशालकाय लम्बाकार यन्त्र ने व्योमारोहण करके अन्तरिक्ष-उड़ान सम्बन्धी मनुष्य की उक्त कल्पनाओं में सजीवता ला दी। वह सोचने लगा—"मेरा वाहन भी अब अन्तरिक्ष में शीघ्र ही उड़ेगा। मैं उसमें सुरक्षित कैसे रहूँगा? अन्तरिक्ष से पृथ्वीस्थ जीवों से वार्तालाप कैसे करूँगा? इन प्रश्नों का उत्तर इस अन्तर्महाद्वीपीय 'एटलस' प्रक्षेपणास्त्र के नासिका भाग में सन्नद्ध संवेदनशील यन्त्रों से मुझे मिल जायेगा। 'उसकी आशा दृढ़ से दृढ़तर हो गई, जब उसने देखा कि अमेरिका के राष्ट्रपति के जो शान्ति-सन्देशमय वाक्य भू-मण्डल से पृथ्वी की १०० मिनटों में एक परिक्रमा पूरी करने वाले ४॥ टन भारी उपग्रह में रखे टेप में अंकित थे वे उसने निर्दिष्ट समय पर पृथ्वी की ओर पुनः प्रसारित कर दिये। अन्तरिक्ष से यह प्रसारण हुआ स्वचालित प्रक्रिया द्वारा और अदृश्य तरंगों के माध्यम से, जिनकी गति थी १३२.४३५ और १३२.९०५ मैगासाइकिल।

अन्तरिक्ष उड़ान की आशाओं को सफलीभूत बनाने वाला भीमकाय 'एटलस' प्रक्षेपणास्त्र अमेरिका में फ्लोरिडा-स्थित केप केनेवेरल से गर्जन-तर्जन करता हुआ जब व्योम में प्रविष्ट हुआ, तब प्रथम तो आकाश धूम्राच्छादित हो गया, तुमुलनाद से व्योम-मण्डल गूंज उठा, और पुनः कुछ ही समय के पश्चात् वह अद्भुत यांत्रिक वाहन आकाश में विलीन हो गया, पर उसका निनाद कर्णगोचर होता ही रहा। अपने नासिका भाग में १५०

पौंड भारी अत्यन्त संवेदनशील यन्त्र-पुंज को धारण किये, जिसके उदर में छिपा हुआ था आइजनहौवर का फीते पर अंकित विश्व के नाम सद्भावना और शान्ति सन्देश, फिर वह १७,००० मील प्रति घण्टा की गति से भी अधिक गति से पृथ्वी के चारों ओर अपनी निर्दिष्ट कक्षा की ओर बढ़ गया।

मंच से विलग होने के समय सम्पूर्ण 'एटलस' वाहन का भार था २,४४,००० पौण्ड—तरल ईंधन प्रयुक्त करने वाले ५ राकेट-इंजनों ने उसको गति प्रदान की थी। उस समय वह ३,६०,००० पौंड धक्का देने की अपने में शक्ति उत्पन्न करके आगे आकाश में बढ़ा था। तब कहीं जा कर १० फुट व्यास वाला ८५ फुट लम्बा यह सम्पूर्ण वाहन सफल हुआ, पृथ्वी से ६२० मील ऊपर कक्षा में प्रविष्ट होने के अपने उद्देश्य में। शून्याकाश में मार्ग-निर्देशन के लिये उसमें एक स्वचालित निर्देशन-यन्त्र लगा हुआ था जिसने इस का पथ-प्रदर्शन किया और उसी के सहारे पृथ्वीस्थ वैज्ञानिकों से रेडियो-आदेश पाते ही, अपनी पूर्व निर्धारित कक्षा में १७,००० मील प्रति घण्टा की गति से संसार को चकित करता हुआ शून्य-काश में घूमने लगा—ईंधन अथवा किसी यांत्रिक विधि के सहारे नहीं, वरन् पृथ्वी की गुरुत्वाकर्पण शक्ति के सहारे। मंच के साथ सक्रिय एक ऐसे जटिल विद्युत मस्तिष्क ने उसे कक्षा में स्थापित करने में वैज्ञानिकों की सहायता की, जो १ सैकिण्ड में गणित के १०,००० प्रश्नों को हल करने की अपूर्व क्षमता रखता है।

कक्षा में छोड़े जाने से पूर्व इस 'एटलस' की क्षमता और सक्रियता की पूर्णतया जांच कर ली गई थी—उक्त परीक्षण के दौरान में आकाश में छोड़े जाने के पश्चात्, वह स्वनियन्त्रित (सैल्फ-गाइडैड) ढंग से ६,००० मील की सफल उड़ान पूरी कर चुका था, बिना किसी मानव के सहारे।

३६,००० उपकरणों की जांच

फ्लोरिडा से फेंके जाने के पूर्व उक्त उपग्रह में संलग्न पुर्जों की १२ घन्टे तक गम्भीर जांच की गई। जब वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया कि कहीं भी कोई भी-यांत्रिक त्रुटि नहीं है तब कहीं उन्होंने बटन दबाकर मंच से उसे आकाश में छोड़ा। हां, यदि कहीं एटलस की सफल उड़ान के सम्बन्ध में एक के बाद दूसरी, तीसरी,... सफलता मिलती गई तो अवश्य ही उड़ान से पूर्व परी-क्षण का यह जटिल कार्य कुछ ही मिनटों में पूरा हो जाया करेगा। अभी तो दशा यह है कि सम्बन्धित प्रावि-धिकों के सामने ८० ऐसे टाइप शुदा पृष्ठ रहते हैं, जिन पर ३६,००० पुर्जों का विवरण अंकित रहता है। एक अधिकारी पुर्जों का नाम बोलता चला जाता है। अन्य शिल्पिक तुरन्त उन पुर्जों की जांच कर लेते हैं।

स्कोर भू-उपग्रह

'स्कोर' नाम के पीछे एक तथ्य छिपा हुआ है। यह नाम अंग्रेजी के पांच शब्दों—(१) सैटिलाइट (उपग्रह), (२) कम्युनिकेशन (संचार), (३) ऑर्बिट (कक्षा), (४) रिले (पुनः प्रसारण) तथा (५) एक्सपैरिमेंट (परीक्षण) पर आधारित है, जो उस उद्देश्य विशेष की ओर इंगित करते हैं, जिसके उपग्रह को अन्तरिक्ष में क्रियाशील बनाया गया है। उद्देश्य स्पष्ट ही है—उपग्रह के माध्यम से संचार-व्यवस्था की नवीन प्रणाली का परीक्षण तथा उसी के द्वारा अन्तरिक्ष-मार्ग से समाचारों का भूमण्डल की ओर पुनः प्रसारण।

अमेरिका की एडवांस्ड प्रोजैक्टस एजेंसी के उपनि-र्देशक रियर एडमिरल जौन क्लार्क का कथन है कि अमेरिका ने ४॥ टन भारी यह उपग्रह तीन उद्देश्यों से प्रेरित होकर छोड़ा है। पहले उद्देश्य के अन्तर्गत था स्वयं 'एटलस' की दबाव के प्रति प्रतिरोधक शक्ति का परीक्षण, और द्वितीय उद्देश्य के अन्तर्गत उन्हें उस नियन्त्रित राकेट की मार्ग-निर्देशन-व्यवस्था की अचूकता की जांच करनी थी। उपग्रह को स्थलीय यन्त्रों के सहारे यहां से समाचार भेजना, फिर उसका वहां से पुनः भू-मण्डल की ओर प्रसारण—यह था तीसरा उद्देश्य।

दो उद्देश्यों की पूर्ति तो हो ही चुकी है—वातावरण और आकाश में दबाव का प्रतिरोध करता हुआ, अपने निर्दिष्ट पथ पर अडिग रहकर, वह कक्षा में पहुंच ही नहीं गया, अपितु ठीक गति से भ्रमणशील भी है।

तीसरे उद्देश्य के सम्बन्ध में भी कोई कम सफलता नही मिली है। उपग्रह में कोई मानव तो है नहीं। केवल यन्त्र रखे हुए हैं। विश्लेषण, संश्लेषण, नियन्त्रण तथा प्रसारण क्रियाएं। उन्हीं के द्वारा सम्पन्न हो रही है।

१९ दिसम्बर को ३ बज कर १५ मिनट पर भू-उपग्रह से प्रसारित आइजनहौवर के सन्देश को अंकित किया गया। अन्तरिक्ष से प्राप्त होने वाले इस सन्देश को व्हाइट हाऊस के लिए पुनः प्रसारित किया गया। यहां सम्वाद-दाताओं ने एक अस्पष्ट वाक्य को छोड़कर सम्पूर्ण सन्देश को आश्चर्यचकित हो कर सुना।

पृथ्वी से उपग्रह को समाचार भेजना और वहां से उनका प्रसारण—इस अद्भुत प्रक्रिया को परीक्षण हेतु बार-बार दुहराया जायेगा। अमेरिकी वैज्ञानिकों का कहना है कि जैसे-जैसे भू-उपग्रहों की इन क्षमताओं में वृद्धि होती जायेगी, वैसे-वैसे उनमें प्रयुक्त विधुदणु-यन्त्रों की जटिलताओं और फलतः उनकी क्षमताओं में भी विकास होता जायेगा—इस प्रगति का शुभ परिणाम होगा अन्तर्महाद्वीपीय संचार-व्यवस्था का इस नवीनतम माध्यम द्वारा विकास।

संप्रति भू-उपग्रह को सन्देश भेजने और उससे संदेश प्राप्त करने के लिये अमेरिका में ४ केन्द्रों की स्थापना की गई है। ये केन्द्र कैलिफोर्निया, एरिजोना, टैक्साय तथा ज्योर्जिया राज्यों में स्थिति हैं।

'स्कोर' उपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला अमेरिका का पांचवा उपग्रह है। यह अमेरिका के कई मार्गों में बिना किसी उपकरण की सहायता के केवल नेत्रों से देखा गया है।

यह अपनी अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान में कभी तो पृथ्वी से ९२० मील दूर चला जाता है और कभी कभी पृथ्वी से केवल ११५ मील दूर ही रह जाता है उसका जीवन काल २० दिन है।

इस सम्बन्ध में अद्भुततम तथ्य यह है कि सम्पूर्ण विशालकाय वाहन ही, जो मूलतः पृथ्वी से उड़ा था, यन्त्र-पुंज के साथ परिक्रमा कर रहा है। ईंधन जल जाने के कारण उसके भार में कुछ कमी अवश्य हो गई है। इससे पूर्व पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया जाने वाला सबसे भारी उपग्रह रुस ने छोड़ा था, जो स्पूतनिक तृतीय के नाम से विख्यात १।। मन भारी था।

रूस अब तक तीन उपग्रह छोड़ चुका है, जबकि अमेरिका ने 'स्कौर' समेत ५ उपग्रह छोड़े हैं। रूस का एक ही उपग्रह सक्रिय है, अमेरिका के चार।

इस प्रकार अन्तरिक्ष वाणी के अद्भुत युग का सूत्र-पात करने वाले अमेरिका के ४।। टन भारी 'स्कौर' उपग्रह के अतिरिक्त इससे पूर्व ७ और उपग्रह अन्तरिक्ष खोज के उद्देश्य से छोड़े जा चुके हैं।

३१ जनवरी, १९५८ को छोड़ा गया अमेरिका का 'एक्सप्लोरर प्रथम' पृथ्वी के चारों ओर १९,००० मील प्रति घन्टा की गति से १५०९ मील की, अधिकतम ऊँचाई पर भ्रमणशील है। ३०.८ पौन्ड भारी, ८० इन्च लम्बे इस बेलनाकार उपग्रह का जीवन ३ से ५ वर्ष तक आंका गया है।

१७ मार्च ५८ को फेंका गया अमेरिकी उपग्रह वेंगार्ड प्रथम, तो २०० वर्ष तक सक्रिय रह सकता है। ३·२५ पौन्ड भारी ६.४ इन्च पिंडाकार यह उपग्रह पृथ्वी से अधिकतम २,४५८ मील तथा न्यूनतम ४०९ मील दूर चक्कर लगा रहा है।

२६ मार्च को फेंका गया 'एक्सप्लोरर तृतीय,' जो जून में सम्भवतया विनष्ट हो गया, २,००० मील की ऊंचाई पर भ्रमणशील था। वह ट्यूब जैसा ७९ इंन्च लम्बा था।

२६ जुलाई, ५८ को फेंका गया एक्सप्लोरर चतुर्थ, जो ३८ पौन्ड भारी कारतूस जैसा आकार में है, १३६८ मील की ऊंचाई पर भ्रमणशील है। उसका जीवन काल ५ वर्ष है।

'एक्सप्लोरर प्रथम' ११३ मिनटों में, 'वेनगार्ड प्रथम' १३४ मिनटों में, 'एक्सप्लोरर चतुर्थ' ११० मिनटों में, तथा एटलस (स्कोर) १०० मिनटों में पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता है। गत जून में विनष्ट होने वाला 'एक्सप्लोरर तृतीय' ११५ मिनटों में पृथ्वी का चक्कर पूरा करता था।

४ अक्टूबर, १९५७, को छोड़ा गया रूसी स्पूतनिक प्रथम, जो जून ४ को विनष्ट हो गया, ५६० मील की

अधिकतम ऊंचाई तक जाता था। स्पूतनिक द्वितीय जो नवम्बर ३, १९५७, को फेंका गया, १०२० मील की अधिकतम ऊंचाई तक जाता था। वह १४ अप्रैल ५८ को नष्ट हो गया। कक्षा में ११२० मील की अधिकतम ऊंचाई तक जाने वाला स्पूतनिक तृतीय अब भी सक्रिय है, क्रम से उनकी गति १८,००० मील, १७,८०० मील तथा १४७४६ मील प्रति घन्टा कूती गई है।

अमेरिकी भू-उपग्रहों की गति क्रम से १९,००० मील १८,३६५ मील, १८,००० मील तथा १७,००० मील (स्कोर) कूती गई है।

गति में इस भिन्नता का कारण है, उपग्रहों पर पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव की भिन्नता। समस्त भू तल पर गुरूत्वाकर्षण शक्ति का प्रसार समान नहीं है। किस स्थल पर कितनी गुरूत्वाकर्षण शक्ति है, उपग्रहो से इसका भी ज्ञान हुआ है।

'स्कोर' तो एक नितान्त नये रहस्य का ही उद्घाटन कर रहा है—यह रहस्य है भावी अन्तरिक्ष-यात्री तथा भूतल पर विचरण करने वाले मनुष्यों के मध्य समाचार-वहन की व्यवस्था की सम्भावना। वह बता रहा है मानव अन्तरिक्ष उड़ान के समय भी एकाकी नहीं रह सकता। संचार-व्यवस्था द्वारा भू-मण्डल के व्यक्तियों से तारतम्य और सम्बन्ध की अनुभूति उसके एकाकीपन को एक ऐसा रुप प्रदान करेगी जिस पर मुग्ध हो वह चलता चला जायगा—अन्तरिक्ष यान के लिए, अपनी सफलता पर गर्व करता हुआ, अनन्त की ओर प्रकृति के रहस्यों से अधिकाधिक अवगत होने के लिए। संसार प्रतीक्षा करेगा आनन्द विभोर हो अन्तरिक्ष-यात्री के उतरने की व्योम से विजय की दुंदुभी बजाते हुये अन्तरिक्ष वाणी द्वारा उसकी अपूर्व सफलता का समाचार पाकर।
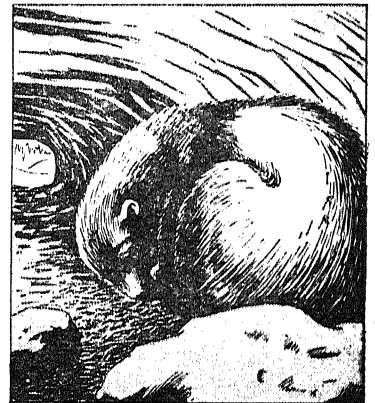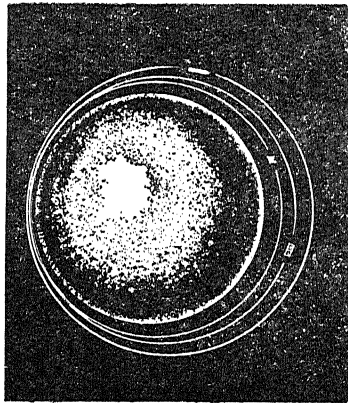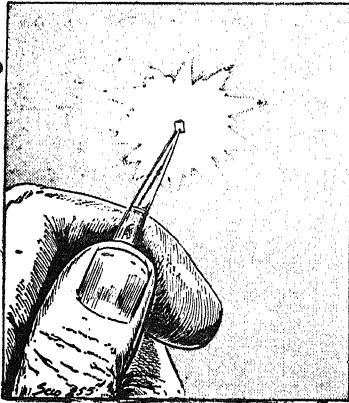
१ – संसार की सबसे छोटी पुस्तक वाशिंगटन की कांग्रेस लायब्रेरी में रक्खी है जिसकी लम्बाई व चौड़ाई $\frac{1}{25}$ इंच अथवा $\frac{1}{10}$ सेन्टी मीटर है।

२—इस चित्र में प्रथम तथा द्वितीय स्पुटनिक और अमरीकी कृत्रिम उपग्रह के मार्ग दिखलाये हैं। अमरीकी उपग्रह पृथ्वी से २१९ मील दूर अर्थात् प्रथम रूसी स्पुटनिक से ७६ मील आगे और द्वितीय रूसी स्पुटनिक ८९ मील आगे था।

३—बहुत से जानवर शीत काल में एक विशेष ढंग से निद्रा ग्रस्त हो जाते हैं। यह शीतकालीन निद्रा मृत्यु तुल्य होती है इस चित्र में दिखलाया गया स्तनपायी प्राणी स्वस्थ अवस्था में १ मिनट में ३० बार सांस लेता है और उत्तेजित होने पर १०० बार परन्तु शीतकालीन निद्रा के समय पांच मिनट में एक बार सांस लेता है और इसकी नाड़ी बजाय १ मिनट में ८० बार चलने के केवल पांच बार चलती हैं।

ह्यूमिडिटी क्या है?

"तापक्रम ८०° और ह्यूमिडिटी ७५°" कभी कभी तुम इस प्रकार के विवरण से अचम्भे में पड़ गये होगे। यह ह्यूमिडिटी क्या है? सबसे पहले हमें यह ध्यान देना होगा कि हवा किसी भी एक साधारण पदार्थ से नहीं बनी है यह विभिन्न प्रकार की कई गैसों से मिल कर बनी है इनमें नाइट्रोजन, औक्सीजन और कार्बन डाई-ग्राक्साइड गैसें हैं, सबसे महत्वपूर्ण तत्व पानी द्वारा बनी हुई भाप है।

हवा में हमेशा यह भाप किसी न किसी मात्रा में अवश्य रहती है। तापक्रम हवा की मात्रा के अनुसार होगा जितनी अधिक हवा होगी उतना ही अधिक तापक्रम। हवा में भाप भी इसी के अनुसार अधिक होगी। जितना अधिक तापक्रम होगा उतना ही अधिक हवा में भाप। धीरे धीरे तापक्रम की एक निश्चित सीमा आ जाती है। यदि इससे अधिक भाप हम हवा में मिला दें तो यह पानी की बूंद, ओले या वर्षा के रूप में बदलना शुरू हो जायेगी।

ह्यूमिडिटी से हमारा तात्पर्य हवा में इसी भाप की मात्रा से होता है। वास्तव में इस ह्यूमिडिटी का भार एक क्यूबिक फीट हवा में भाप की मात्रा से होता है। जब हम ह्यूमिडिटी कहते हैं तो यह हवा के तापकम में भाप की प्रतिशत मात्रा होती है। इसलिये ७५° तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि ८०° तापक्रम की हवा में तीन चौथाई भाप है।

जब हवा का तापक्रम बहुत अधिक बढ़ जाता है यानी हवा में भाप की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है। साथ ही ह्यूमिडिटी भी बहुत अधिक हो जाती है, तब हमें एक प्रकार की बेचैनी मालूम होती है। इसकी वजह यह है कि पृथ्वी के पास की हवा एक दम गर्म हो कर सूख जाती है और तब हमारे लिए सांस लेना मुश्किल हो जाता है और इसी भाप की जरूरत महसूस होती है। जब ह्यूमिडिटी न बहुत अधिक और न ही बहुत कम हो तभी हम बहुत आराम से रहते हैं। घर से बाहर तो नहीं पर कमरे के अन्दर इस हवा को संतुलित किया जा सकता है।

आकाश में कितने सितारे हैं?

कोई नहीं जानता कि पृथ्वी, "ब्रह्माण्ड" कितना विस्तृत है, इसी तरह यह भी कोई नहीं जानता कि आकाश का क्षेत्र कितना विकसित है और यह कह सकना तो और भी कठिन है कि आसमान में कितने सितारे हैं क्योंकि हर नये बड़े टेलिस्कोप से वैज्ञानिक जितना देखने का प्रयत्न करते हैं पृथ्वी और आकाश उन्हें उतना ही अधिक विकसित दिखाई देता है। जितनी दूर तक उन्होंने देखने का प्रयत्न किया उतनी ही दूर तक उन्हें सितारे भी दिखाई दिये। कुछ ज्योतिषियों का कहना है कि बहुत बड़े टेलिस्कोप से हम सम्भवतः ऐसी दूरी प्राप्त कर लें जहां सितारों का अन्त हो जाय। इसके साथ ही कुछ का यह भी कहना है कि क्या वजह है कि सितारे अनन्त विस्तृत ब्रह्माण्ड तक न मिलें। इसलिये हमारे

लिये अन्तिम सीमा या अनन्त ब्रह्माण्ड की कल्पना अथवा सितारों की विस्तृतता की कल्पना कर सकना बड़ा कठिन है ।

कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि यदि आसमान साफ रहे तो वे खुली हुई आखों से असंख्य सितारे देख सकते हैं। पर वास्तव में एक मनुष्य जिसके आखों की रोशनी बहुत अच्छी है, बिना किसी यन्त्र की सहायता के खुली हुई आखों से सिर्फ ६,००० तारे देख सकता है। पर एक बात ध्यान देने की है कि हम साथ ही पूरे आकाश को नहीं देख पाते सिर्फ आधे भाग को ही देखते हैं। और इसीलिये क्षितिज पर बहुत अधिक कोहरा होने के कारण ४,००० सितारों से भी कम दिखाई देते हैं, यदि आसमान धूल और गर्द से साफ हो ।

सितारे दिन में क्यों नहीं दिखाई देते ?

बहुत पहले जब लोग स्वर्ग या सितारों के विषय में अधिक नहीं जानते थे तब वे यही समझते थे कि सितारे सचमुच दिन में छुप जाते हैं। प्राचीन मिश्र निवासी यह समझते थे कि ईश्वर हर रात को आकाश में असंख्य सूराखों से लोहे के तारों के सहारे ये सितारों के रूप में लैम्प जला देता है ताकि रात को पृथ्वी पर उजाला हो जाय और आकाश बहुत खूबसूरत दिखाई दे। फिर सुबह होते ही वह इन लैम्पों को ऊपर खींच लेता है ।

ये सितारे रातों दिन चमकते रहते हैं। पर हम दिन में सूर्य की तेज रोशनी के कारण नहीं देख पाते, रात को तो ये दिखाई ही देते हैं। अगर दिन में सूर्य की इतनी तेज रोशनी न हो तो ये सितारे दिन में भी दिखाई दें और सूर्य काले आसमान में, हजारों सितारों से जकड़ा हुआ रोशनी की एक गोल प्लेट। पूरे सूर्यग्रहण पर ये सितारे दिखाई देते हैं। और साथ ही आसमान में यदि कोई ग्रह हो तो वह भी दिखाई देगा। सबसे चमकदार ग्रह वीनस तो दिन में ही दिखाई पड़ सकता है यदि किसी को उस समय उसके निश्चित स्थान का पता हो। यदि हवाई-जहाज से हम आसमान के प्रमुख वायुमंडल से ऊपर उड़ जाँय तो ये सितारे दिखाई देंगे ।

सितारे क्यों टिमटिमाते हैं ?

बच्चोंकी इस कहावत

Twinkle Twinkle, little star
How I wonder what you are,

का रहस्य बड़ा रोचक है। स्वच्छ आकाश की ओर देखने पर ये सितारे चमकदार मोतियों की भाँति चमकते, टिमटिमाते हुए बड़े ही भले मालूम पड़ते हैं, और बच्चे उत्साहपूर्ण तोतली वाणी में गा उठते हैं

Twinkle Twinkle little star
How I wonder what you are
Up above the world so high
Like a dimond in the sky

ये सितारे टिमटिमाते हुए दिखाई तो जरूर देते हैं, पर ये तो आग के गोले हैं जो स्वयं नहीं टिमटिमाते। अगर तुम पृथ्वी के वायुमंडल से ऊपर उड़ जाओ और तब इन सितारों की ओर देखो तो ये निश्चल, एकटक चमकते हुए दिखाई देंगे न कि टिमटिमाते हुए। ये टिमटिमाते हुये तो इसलिये दिखाई देते हैं कि हम उन्हें पृथ्वी के वायु मन्डल के नीचे खड़े हो कर ऊपर २०० मील तक तेज हवा के बीच से इनको देखते हैं। यह हवाओं का समुद्र विभिन्न ताप-क्रमों का होता है और इसकी धारायें बड़ी तेजी से चक्कर काटती हुई आकाश में एक हवा की धार से टकरा कर दूसरी ओर, दूसरी से टकरा कर तीसरी ओर मुड़ जाती है इस प्रकार समीत जगह में ही एक अच्छा खासा उधम मचा रहता है। इससे सितारों का सीधा तेज प्रकाश छिन्न-भिन्न हो कर विभिन्न दिशाओं और कोणों में बंट जाता है। यही कारण है कि सितारों का स्थिर प्रकाश कभी धीमा और कभी तेज हो जाता है। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसे हम काफी तेज अंधड़ के बीच दूर किसी चीज को हिलते हुए देखते हैं।

क्षितिज की ओर के सितारे या कभी कभी अन्य सितारे भी बहुत तेजी से टिमटिमाते हुए दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि क्षितिज के सितारों के प्रकाश को तो वायुमन्डल का अत्यधिक भाग पार करना पड़ता है और कभी कभी वायुमन्डल ही बहुत

अस्थिर होता है। इसी वायु के कारण वैज्ञानिकों को अपने अनुसंधान में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। टैलिस्कोप तो सितारों के प्रकाश को और भी बड़ा कर देते हैं। यहाँ तक कि ये सितारे उछलते कूदते हुए नजर आते हैं।

सितारे विभिन्न रंग के क्यों है।

ये सितारे भी विभिन्न तापक्रमों के अनुसार विभिन्न रंग के होते हैं। यदि तुमने किसी सोनार को सोना गर्म करते हुए देखा हो तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि सोना गर्म होने पर लाल रंग का हो जाता है। और अधिक गर्म करने पर पीला, फिर सफेद और फिर नीला। इसी प्रकार सितारे भी अपने तापक्रमों के अनुसार लाल, पीले, नीले, और यहां तक कि हरे, बैगनी, गुलाबी और नीलमणी के रंग के भी होते हैं। अगर तुम शान्त वातावरण में जब कि आसमान बिलकुल साफ हो इन सितारों को ध्यान से देखो तो तुम्हें भी ये सितारे कई रंगों के मिल जायेंगे। नक्षत्रों के समूह कैनिस (Canis) में सरिस सितारा सफेद रंग का है जिसका ताप क्रम २०,०००° फैरनहाइट है। नक्षत्र अयुरिगा (Auriga) में कपेला (Capell) सितारा सूर्य की भांति पीले रंग का है जिसका तापक्रम ११,०००°फैरनहाइट है। बूट (Bootes) में आर्कटयूरस और टायुरस (Taurus) में अल्देबरान, ये दोनों सितारे नारंगी रङ्ग के हैं जिनका तापक्रम ७,०००° फैरनहाइट है।

सितारे और ग्रहों में अन्तर

सितारे और ग्रह एक जैसे ही दिखाई देते हैं पर दोनों में बहुत अन्तर है। सितारे सूर्य की भाँति अत्यधिक गर्म चमकते हुए आग के गोले हैं और ग्रह पृथ्वी की भाँति सितारों से बहुत छोटे होते हैं, इनमें स्वयं अपना प्रकाश और गर्मी नहीं होती। ये ग्रह आसमान में शीशे की भाँति हैं ये सूर्य की रोशनी ग्रहण कर चमकते हुए दिखाई देते हैं। सूर्य मन्डल के सिर्फ नौ ग्रह ही हमें ज्ञात हैं जब कि सितारे असंख्य हैं। ये ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं—इनमें से कुछ रात को सितारों के बीच घूमते हुए दिखाई देते हैं। और कुछ दिन में, पर वे सूर्य की तेज रोशनी के कारण नहीं दिखाई देते। कभी कभी रात को चमकते हुये इन ग्रहों को सितारों के बीच पहचानना कठिन हो जाता है।

सितारे वायुमंडल के कारण टिमटिमाते हुए दिखाइ देते हैं। पर ग्रहों का प्रकाश इतना अधिक नहीं टिमटिमाता और स्थिर होकर चमकता हुआ दिखाई देता है। और बड़े टेलिस्कोप से देखने पर तो बड़े से बड़ा सितारा छोटा प्रकाश बिन्दु की भाँति दिखाई पड़ता है जब कि ये ग्रह पृथ्वी की भांति ठोस और चपटे हुए दिखाई देते हैं। सितारे निश्चित स्थान पर ही दिखाई देते हैं पर ग्रह अपना स्थान बदलते रहते हैं इस कारण उन्हें पहचाना जा सकता है। ग्रहों का शाब्दिक अर्थ है लापरवाह घूमने वाला और वे सदियों से घूमते हुए दिखाई देते हैं।

यह कैसे मालूम हुआ कि पृथ्वी गोल है

४५० वर्ष पूर्व २० सितम्बर १५१९ को दो नाविक फर्डीनेन्ड मैगलन और सेबास्टिअन डेल कानो स्पेन से पश्चिम की ओर चले। तीन वर्ष बाद ८ सितम्बर १९२२ को उनका एक जहाज फिर स्पेन वापस आ गया पर अन्य चार जहाज चट्टानों से टकराकर डूब गए थे और इस लम्बी भंयकर सामुद्रिक यात्रा में मैगलन की मृत्यु हो गई थी। इस यात्रा ने ही यह सिद्ध कर दिया था कि यदि हम हवाई जहाज या सामुद्रिक जहाज पर बैठ कर एक स्थान से चलें तो कुछ समय बाद हम फिर उसी स्थान पर पहुँच जायेंगे। इस यात्रा के बाद कई लोगों ने समुद्र द्वारा और हवाई जहाज द्वारा यात्रायें कीं और अंत में इसी नतीजे पर पहुँचे कि पृथ्वी गोल है।

अगर इतनी लम्बी यात्रा न भी करें तो अन्य उपायों के जरिये हम यह कह सकते हैं कि पृथ्वी गोल है। उदाहरण के लिए समुद्र के किनारे खड़े हो कर एक जहाज को पृथ्वी की ओर आते देखो, जैसे जैसे जहाज पृथ्वी के पास आता जाता है वह और भी बड़ा दिखाई देने लगता है। अब मान लो अगर पृथ्वी स्लेट की भाँति चपटी होती

(शेष पृष्ठ १२७ पर)
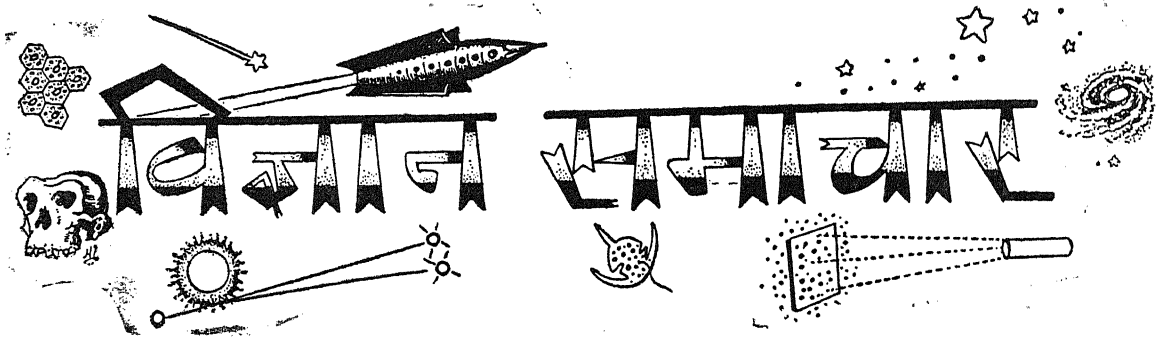
विज्ञान ने खाद्य समस्या भी हल कर दी

वह दिन दूर नहीं जब हमें खाने की मेजों का स्वादिष्ट एवं पाचक भोजन उन नवीन सूत्रों से प्राप्त हो सकेगा जो आज तक अज्ञात हैं।

विश्व के अनेक देशों में नित्य प्रति बढ़ती हुई जन संख्या और औद्योगीकरण की भारी कमी के बीच उत्पन्न संघर्ष के कारण आज सभी जगह खाद्य समस्या के हल पर बड़ी जोरों से विचार हो रहा है। इसके साथ ही हमारी आवश्यकतायें निरंतर बढ़ती जा रही हैं जब कि खाद्य पदार्थ का स्तर एक जैसा ही है। प्रायः प्रकृति की अज्ञात दुर्घटनाओं के कारण असंख्य जीव और बहुमूल्य खाद्य पदार्थ का नाश भी होता रहता है। ऐसी स्थिति में विज्ञान और यांत्रिक प्रयोग ही हमारी सहायता कर सकते हैं।

चावल खाने वाले व्यक्ति अपनी इस भोज्य-लिप्सा को बहुत कम बदल पाते हैं। शुरू में कई देशों में कृत्रिम चावल पैदा करने का प्रयास किया गया पर उन्हें यथार्थ रूप में सफलता न मिल सकी। यूरोप में जौ, गेहूँ और मक्के को चावल की शक्ल में बदल कर उपभोक्ताओं को दिया जाता है। इग्लैंड और हौलैंड में इसे 'पटाको राइस' के व्यापारिक नाम से प्रचलित किया गया। जापान में टूटे चावल, अन्य अनाज के छिलके और घी को मिला कर चावल की शक्ल का अनाज बनाया जाता है। भारत में भी 'मैसूर के सेन्ट्रल फूड टैक्नालौजिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट' में इसी प्रकार गेहूँ, सूजी और मूंगफली को मिला कर चावल से दुगने पाचक एक अनाज बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। केरल में उत्पन्न किये जाने वाले इस नये चावल का दाम जलवायु में उत्पन्न प्राकृतिक चावल के दाम से कहीं कम होगा।

कृत्रिम अंडे

कुछ वर्ष पूर्व जर्मनी में गोश्त की कमी ने एक भीषण रूप ग्रहण कर लिया था और तब अन्य साधनों से गोश्त पैदा करने का प्रयत्न किया जाने लगा। सोयाबीन के कड़ुए भाग को निकाल कर उसमें कुछ राल जैसा पदार्थ मिला कर गोश्त के स्वाद का बनाया जाता था। कागज व कपड़े की मिल से फेंके जाने योग्य तरल पदार्थ को कुछ छोटे जानवरों के साथ मिला कर उबाल देने पर एक नए प्रकार का गोश्त तैयार हो जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य जब देश में अंडों की भारी कमी महसूस की गई तब जर्मनी बनावटी अंडों के उत्पादन में पथ प्रदर्शक बना। सोयाबीन, अगर, गाइसरीन और हरी सब्जियों के सत्त को मिला कर शाकाहारी अंडे का निर्माण हुआ। अलसी से बनाया गया 'विनडोवा' अंडा इसी बीच जर्मनी के बाजार के लिए वरदान बन गया।

विश्व के कुछ भागों में दूध एवं दूध से बनी हुई चीजों की कमी सर्व विदित है। इसके प्रतिस्थापक का ग्रहण अब अपरिहार्य हो गया है। चीन और अमरीका ऐसे देशों में सोयाबीन के दूध ने इस भारी कमी को कुछ हद तक पूरा किया है। भारत में सोया बीन की

पर्याप्त मात्रा की कमी, मूंगफली जो कि इसके बराबर ही गुणवान है इस प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में पूरी करती हैं। मैसूर के 'सेन्ट्रल फूड टैक्नालौजिकल इन्स्टीट्यूट' ने मूंगफली से दही का प्रतिस्थापक बनाया है। यह सस्ता है, साथ ही उतना ही पाचक है जितना कि अन्य जानवरों के दूध का दही। मटर व मूँगफली से बनाया गया मक्खन, मक्खन की जगह अमरीका में बहुत प्रचलित है। फैक्ट्री में मटर से बनाया गया मक्खन बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादित होता है। दस वर्ष पूर्व जर्मनी की एक फैक्ट्री में सब्जियों से २०० टन मक्खन प्रतिदिन बनाया जाता था। फ्राँस में नैपोलियन तृतीय के राज्य-काल में मिगेरियस ने सबसे पहले 'मार्गेरीन'नामक मक्खन, प्रतिस्थापक के रुप में बनाया था जिसे सम्पूर्ण विश्व के लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया।

नया पेय

कहवा चाय या कोको ने शराब की जगह ली, इसी प्रकार अन्य कृत्रिम वस्तुओं ने कहवा आदि का स्थान लेने का प्रयत्न किया जैसे आलू, डहालिया की गाँठे व मूंगफली को भूंज कर कृत्रिम कहवा बनाया गया। अमरीका में सोयाबीन जौ व चिकोरी व चुकन्दर को मिला कर एक प्रकार का कहवा बनाया जाता है, चाय की पत्तियों से मिलती जुलती पत्तियों को सुखा कर बनावटी चाय बनायी जाती हैं। कमल या अन्य पेड़ की पत्तियों का भी यही प्रयोग है।

अलकतरे की चीनी घर व उद्योगों में प्रयोग की जाती है। एक प्याला कहवा पीने में जितनी चीनी खर्च होती है उसी के बराबर अलकतरे की चीनी से ५५० प्याले कहवा बनाई जा सकती है। उद्योगों में इसका निषेध हो गया है क्योंकि यह हानिकारक है। बहुमूत्र-रोग से ग्रस्त रोगियों को अलकतरे की चीनी लाभदायक है। भविष्य में चावल की भूसी से बनी चीनी का प्रयोग घरों में अत्यधिक मात्रा में होने लगेगा।

सितारे भी ध्वनि पैदा करते हैं।

एक अमरीकन ज्योतिषी का कहना है कि सितारे भी बोलते हैं। यह नवीन रेडियो ज्योतिष विद्या का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है जिसने स्वर्ग का एक आश्चर्यजनक चित्र हमारे सामने रक्खा। बोस्टन विश्वविद्यालय की निरीक्षणशाला के संचालक डा० जिराल्ड. एस. हाकिन्स ने 'थर्मल ध्वनि' का जो दो विभिन्न स्थानों में प्रथक हो जाती है, इस प्रकार वर्णन किया है कि सूर्य और आकाश गंगा की हल्की ध्वनि सुनी जा सकती है। आकाश गंगा की ध्वनि तो स्थिर रहती है परन्तु सूर्य मंडल में उठने वाला तूफान एक घन्टे में कई बार उठता है और फिर ठन्डा पड़ जाता है।

बृहस्पति ग्रह की ध्वनि सारी हवा पर अधिकार कर लेती है और जब तेज यंत्र द्वारा इसकी आवाज सुनी जाती है तो वह बड़ी घड़घड़ाहट और चीत्कार के रूप में सुनाई पड़ती हैं। तब हर आदमी को यह विश्वास हो जाता है कि इस ध्वनि को सुनकर रोम निवासियों का बृहस्पति को ईश्वर मान लेना सही था।

यद्यपि अत्यन्त तीक्ष्ण दूरदर्शक यंत्र से भी आकाश के विभिन्न पदार्थों को देखना संभव नहीं फिर भी उनके आश्चर्यजनक ध्वनि संकेतों को सुनकर उनकी उप-स्थिति का अनुमान हो जाता है। आसानी से दिखाई पड़ जाने के कारण सूर्य के विषय में अत्यधिक जानकारी प्राप्त कर ली गई है। सेन्टीमीटर से लम्बी तरङ्गों को नापने पर सूर्य ठीक वैसा ही दिखाई पड़ता है जैसा कि खुली आँखों से, केवल उसके स्थिर प्रकाश का प्रभाव बादल, वर्षा और कुहरे के कारण आंखों पर नहीं पड़ता। २० सेन्टीमीटर की लम्बी तरंगों से देखने पर सूर्य का प्रकाश एक चमकदार खोखली खोह की तरह और रेडियो की सहायता से देखने पर धूल से भरा हुआ एक चमकदार गोला दिखाई पड़ता है।

बालू पर चलना स्वास्थ्य कर है।

बड़े दिन के उपलक्ष में अत्यधिक खरीद-फरोख्त करने के कारण श्रीमान आइवर कैश ने आस्ट्रेलिया की गृहणियों को यह सलाह दी कि वे नंगे पैर आधे घंटे तक समुद्र के किनारे पैदल चलें ताकि उनके पैरों का दर्द ठीक हो जाय। इनका कहना है कि इस प्रकार पैदल चलने से पैरों में ऐंठन नहीं पैदा होती और जिससे पैरों

को तो आराम मिलता ही है साथ साथ पूरे शरीर को एक नयी स्फूर्ति प्राप्त होती है।

बिजली का हृदय

अभी हाल ही में "गैस्ट्रोऐन्ट्रोलौजी" की विश्व गोष्ठी में अमरीका के रेडियो कार्पोरेशन के सभापति डेविड सर्नौफ ने कहा कि एक दिन सुनने के लिये बनावटी यंत्र और नकली दांत की तरह बिजली का हृदय भी बनने लग जायेगा। इसके साथ ही उन्होंने कहा खराब गुर्दे, फेफड़े तथा शरीर के विभिन्न अंग बिजली की सहायता से बदले जा सकते हैं। सर्नौफ का कहना हैं कि इस विद्यु त शक्ति के युग के पहले इसकी सम्भावना कि मनुष्य द्वारा विद्यु त-शक्ति की सहायता से निर्मित तरीके शरीर के विभिन्न अंगों को बदल देंगे 'हास्यप्रद' प्रतीत होता था। परन्तु अब यह लक्ष्य लगभग प्राप्त हो चुका है और शल्य चिकित्सा की सहायता से ऐसे औपरेशन जो पहले असम्भव थे अब आसानी से हो जाते हैं। उन्होंने आगे जोर देते हुए कहा कि खराब अंगों को ये बिजली के यंत्र हो सकता है कुछ समय के लिये ही पर्याप्त हों पर भविष्य में एक मनुष्य जिसके कई अंग बदले जा चुके हैं—स्वस्थ्य और आसानी से पैदल चल सकेगा।

समुद्र के नीचे तेल की टंकी मिली।

न्यूजीलैन्ड की तेल का निरीक्षण करने की एक संस्था अभी हाल में दक्षिणी द्वीप के समीप समुद्र में एक ऐसी गैस का निरीक्षण कर रही है जिसके नीचे तेल मिलने की सम्भावना है। इस गैस का पता अकस्मात एक ऐसी घटना से लगा जब कि एक तैराक पानी के नीचे फोटो खींचने के यंत्रों का परीक्षण कर रहा था तब उसने देखा कि एक चट्टान से बुलबुले निकल रहे हैं। एक नली के द्वारा उसने इन बुलबुलों को एक बोतल में इकट्ठा कर लिया ताकि वापस आकर वह इसकी परीक्षा कर सके। विशेषज्ञों का कहना है कि हो सकता था वह अपने नतीजे पर न पहुँच पाता, परन्तु भाग्यवश वह 'मीथेन' गैस थी जो तेल के होने की निश्चित सम्भावना प्रकट करती है। ऐसी आशा की जाती है कि यहाँ उतनी ही बड़ी तेल की खान होगी जितनी कि फारस की खाड़ी में।

ऋगवेदीय वायु-यान

अकोला के एक प्रोफेसर पंडित हनुमान प्रसाद शास्त्री ने ऋगवेद तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों आदि का १० वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् एक वायु यान बनाया और उसका प्रदर्शन नई दिल्ली में किया।

यह यान हिन्दू साहित्य में दिये गये नियमानुसार बनाया गया था और लगभग दो फीट लंबा था। यह पारा तथा गंधक की वाष्प से चला और ७५ फीट ऊँचा उठा। इसकी गति का अनुमान नहीं लगाया जा सका गोकि काफी तीव्र थी।

प्रोफेसर का दावा है कि पारे की वाष्प को पुनः ठंडा करके पारा बनाया जा सकता है जिससे यान के चलने का खर्च कम हो जायगा।

हमारे पुराने समय के वायुयान आधुनिक यानों से भिन्न थे इसका उल्लेख जगह-जगह मिलता है परन्तु उस समय विज्ञान का जो ज्ञान लोगों को था वह विदेशी लोगों के आक्रमणों आदि के कारण बुरी तरह अंधकार में चला गया। उस ज्ञान की जाग्रति से पुनः आश्चर्य-जनक खोजें हो सकती हैं उपर्युक्त प्रदर्शन इस बात को सिद्ध करती हैं।

बिना ईंधन के बस चलाइये

मानें या न मानें, बिना ईंधन के चलने वाली बस है और बूढ़े-बूढ़े वैज्ञानिकों ने पेट्रोल या स्वाभाविक बिजली के बिना चलने वाली इस बस के साथ 'खेलकर' कुछ देर आनन्द लिया है।

इस बस का बिजली का मोटर, बस की छत की चौरस पटिया पर पड़ने वाले प्रकाश से उत्पन्न बिजली से चलता है। यह पटिया श्वेत प्रस्तर विशेष सिलिका के स्फटिकों की बनी है। उसमें कुछ बेरीन परमाणु भी हैं। इस पर दिन का प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश पड़ने से इतनी बिजली तैयार हो जाती है कि खिलौना बस, या बिजली के चलने वाला छोटा सा पंखा, या छोटा सा रेडियो चल सके।

इस बस के चलाने का सिद्धान्त वही है जिसके आधार पर तृतीय स्पुत्निक के यंत्र चलाये गये थे, अर्थात् सौर बैटरी का सिद्धान्त। इस पटिया पर जितना प्रकाश पड़ता है, उसका प्रायः ११ प्रतिशत बिजली बन जाता है। एक वर्ग गज पटिया करीब १२० वाट बिजली देती है।

आर्कटिक में बर्फ पिघल रही है

सुप्त ज्वालामुखी माउन्ट गौस के क्षेत्र के सर्वेक्षण से पता चला है कि बर्फ की सतह ५५ वर्षों में औसतन २५ फुट कम हो गयी है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ग्लेशियर का किनारा हिम नदी के तट से हट गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बीसवीं शताब्दी में अन्टार्कटिक का ग्लेशियर बहुत ही मन्द गति से पीछे हट रहा है।

अब यह प्रमाणित हो गया है कि अन्टार्कटिका का जलवायु धीरे-धीरे कुछ-कुछ उष्ण हो रहा है।

यद्यपि बर्फ की चादर की मोटाई की माप इसकी पुष्टि करती है कि अन्टार्कटिक महाद्वीप का केन्द्र गहरा खड्ड है जो सागर की सतह से आधा मील नीचे है, परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना भूल होगी कि यह एक भूखन्ड न होकर द्वीप समूह है। अगर बर्फ का भार हटा दिया जाए, तो पृथ्वीतल सागर की सतह से थोड़ा ऊपर उठ जायेगा।

ग्लेशियरों और चट्टानों के भीतर के तापमानों के अध्ययन से मनोरंजक परिणाम निकले हैं।

यह नियम है कि बर्मा करने से जैसे-जैसे गहराई बढ़ती है, आम तौर से तापमान ऊपर जाता है, परन्तु अन्टार्कटिका में इसके विपरीत गहराई जितनी अधिक होती है, तापमान उतना ही कम होता है। यह असाधारण बात तीसरे बर्फ आच्छादन के ऊपर पायी जाती है, जबकि इसके नीचे तापमान धीरे-धीरे बढ़ता है।

रेडियो तरंगें मस्तिष्क नलिकाओं की परीक्षा में सहायक

सोवियत वैज्ञानिकों ने रेडियो तरंगों की सहायता से मस्तिष्क नलिकाओं की परीक्षा का नया ढंग निकाला है।

मरीज के सिर के दोनों ओर एक जेनरेटर से इलेक्ट्रड लगा दिये जाते हैं। जब रेडियो तरंगें मस्तिष्क से होकर गुजरती है, तब उन्हें एक प्रकार के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है! इसे ग्राफ के रूप में तालिकाबद्ध कर लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त वक्र ग्राफ से न सिर्फ बड़ी मस्तिष्क नलिकाओं बल्कि छोटी नलिकाओं का भी वास्तविक रूप सामने आ जाता है। इस प्रकार यह जाना जा सकता है कि मस्तिष्क में रक्त-संचार किस प्रकार हो रहा है।

पहले ऐसे तथ्य बहुत ही सापेक्ष होते थे। या तो ऊपर की धमनी का रक्तचाप देखकर या आंखों के आस-पास की दशा देखकर उनके बारे में कुछ जाना जाता था।

बाल विज्ञान

(शेष पृष्ठ १२३ का)

जहाज जब दूर था तभी से हमें धुँआ, जहाज का झन्डा और पूरे जहाज से लेकर उसकी तलहटी तक दिखाई दे जाता। पर क्योंकि पृथ्वी गेंद की भांति गोल है इसीलिए जैसे जैसे जहाज समुद्र पर चढ़ता जाता है हमें और साफ दिखाई देने लगता है। और हमारे पास पहुंच कर पूरा जहाज दिखाई देता है यह वो स्थिति है जब कि जहाज गेंद के ऊपरी सिरे पर पहुँच जाता है। यहाँ से जैसे ही आगे नीचे की ओर बढ़ने लगता है या जैसे जैसे जहाज हमसे दूर होता जाता है वह और भी छोटा होता जाता है और एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब वो बिल्कुल ही गायब हो जाता है। अगर पृथ्वी गोल न होती तो क्या ऐसा होता। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पृथ्वी गोल है।

चन्द्रलोक के द्वार पर

चन्द्रलोक की यात्रा का विचार बड़ा पुरातन है। परन्तु यह हर्ष का विषय है कि हम ऐसे समय में पहुँच गये हैं जिसमें इस विचार को स्वप्नवत् नहीं माना जा सकता। जैसा सोवियत विज्ञान अकादमी की मुख्य वेधशाला के संचालक श्री ए० ए० मिखाईलोव ने कहा है अब समय आ गया है जब मनुष्य चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर उतर सकेगा।

अभी कल की बात है कि रूस के वैज्ञानिकों ने एक और उपग्रह छोड़ा जो इस समय तक चन्द्रमा के क्षेत्र को पार कर चुका है। यह पृथ्वी से फेंका गया पहला पिंड है जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के पार चला गया है, और यही इसकी विशेषता है। इस राकेट का वजन १ टन १० हंडरवेट है। उसमें रक्खे वैज्ञानिक यंत्रों का वजन २९६.५ पौंड है।

इस उपग्रह की गति इतनी तीव्र है कि वह चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण का भेदन करके आगे बढ़ गया है। आशा है वह ब्रह्मांड की सौर मंडलीय परिधि में उड़ता रहेगा अर्थात् सूर्य का नया उपग्रह बन जायगा। प्रारम्भ में वह महाव्योम से वैज्ञानिक आँकड़े रेडियो द्वारा प्रसारित कर रहा। पता चलता है कि राकेट की सतह का तापमान १५ डिग्री सैंटीग्रेड से लेकर २० डिग्री सैन्टीग्रेड तक है। उसका रेडियो यंत्र सामान्य ढंग से कार्य, कर रहा और लगातार ऐसी सूचना मिल रही जो भविष्य में ऐसे उड़ान के लिये अति लाभ कर रहेगी।

अक्टूबर १९५८ में छोड़ा गया अमरीकी उपग्रह पृथ्वी से ७९,२१२ मील की ऊंचाई तक गया था। इस रूसी उपग्रह ने ऊंचाई के इस रिकार्ड को तोड़ दिया है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि विज्ञान के इतिहास की यह बहुत बड़ी घटना है। पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से निकलकर महाव्योम जाकर इसने वैज्ञानिक प्रगति का एक स्वर्णरंजित पृष्ठ लिख दिया है।

सोवियत विज्ञान अकादमी की ज्योतिष परिषद के उपाध्यक्ष प्रोफेसर बोरिस कुकार्रिकन ने बतलाया कि रूसी राकेट ने महाव्योम में सोवियत का धुंवा उगल कर एक कृत्रिम पुच्छलतारा बनाया। इस कृत्रिम पुच्छल तारे का चित्र जार्जिया की टिलिसी और अबस्तुमानी प्रयोगशालाओं में लिया गया। इसके लिये पांच मिनट तक कैमरा खुला रहा। बतलाया जाता है कि इस कृत्रिम पुच्छल तारे का चित्र उसी स्थान पर अथवा उसी समय में लिया गया जिसकी भविष्य वाणी पहले से की जा चुकी थी।

सोवियत वैज्ञानिकों का दावा है कि विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया में रूस का प्रथम स्थान है। सोवियत चन्द्र राकेट हम बात का समर्थन करता है और सोवियत प्रथम स्पूटनिक भी इसी ओर संकेत करता है। जहां तक औद्योगिक उत्पादन का सम्बन्ध है इस समय रूस का दूसरा स्थान है।

चन्द्रगामी राकेट की सफलता ने रूसी वैज्ञानिकों का सम्मान बहुत बढ़ा दिया है। प्रथम स्पुटनिक की भांति यह भी रूसी मस्तिक को ऊंचा करने में सफल हुआ। यह निःसदेह सत्य है कि इस दिशा में रूसी वैज्ञानिकों की सफलता दूसरों के लिये पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई और उन्हें संसार का प्रथम श्रेणी का वैज्ञानिक बना दिया। इस सफलता के लिये रूसी वैज्ञानिक हमारी बधाई के पात्र हैं।

पश्चिम जर्मनी के राकेट विशेषज्ञ प्रोफेसर यूजेन सींगर का कथन है कि १९७० के बाद अंतरिक्ष में मानव युक्त स्टेशन होंगे। उसके दस वर्ष बाद प्रोफैसर साहब ने भविष्यवाणी की कि यात्री एक अन्तरिक्ष स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक यात्रा कर सकेंगे। जो राकेट इन ग्रहों तक अथवा उनके बीच उड़ेंगे उनकी गति ६०,००० और ६००,००० मील प्रति घंटे होगी। प्रोफेसर साहब ने यह भी कहा कि मंगल तथा बुद्ध आदि ग्रहों तक राकेट तो आगामी चन्द वर्षों के अन्दर भेजे जा सकेंगे।

रूसी वैज्ञानिकों द्वारा छोड़े गये इस चन्द्र राकेट की सफलता ने इस जर्मन वैज्ञानिक की भविष्य वाणी बड़ी जल्दी पूरी कर दी। इसे देखते हुये हमें पूरी आशा है कि आगामी दस वर्षों में यदि नहीं तो बीस वर्षों में अवश्य ही पृथ्वी से यात्री लेकर राकेट अन्य ग्रहों तक जाने लगेंगे।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

जनवरी १९५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव तीर्थराज प्रेस, ९३ चक, इलाहाबाद—३।

भाग ८८ संख्या ५

फरवरी १९५९ कुम्भ २०१५ वि० माघ १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपए]   [इस अङ्क का मूल्य ४० नए पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

विज्ञापन की दर

	एक अंक के लिये	एक वर्ष के लिये
पूरा पृष्ठ	२० रुपया	२०० रुपया
आधा पृष्ठ	१२ रुपया	१२० रुपया
चौथाई पृष्ठ	८ रुपया	८० रुपया

प्रत्येक रंग के लिये १५ रुपया प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के बी० माथुर	२ रुपया
१०—कमल पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रुपये ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८८ | कुम्भ २०१५ विक्र०; माघ १८८० शाकाब्द; फरवरी १९५९ | संख्या ५

एक्स-१५ राकेट यान अन्तरिक्ष उड़ान के क्षेत्र में एक अद्भुत प्रयोग

जब हम अन्तरिक्ष उड़ान की बात करते हैं तब तुरन्त हमारा ध्यान कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों की ओर आकृष्ट हो जाता है जिनका ऊर्ध्वाकाश में प्रवेश से घनिष्ट सम्बंध है। वे गम्भीर तथ्य हैं–(१) पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति; (२) ऊर्ध्वाकाश में वायु तथा दबाव का अभाव, अथवा उनकी अत्यन्त न्यूनता; (३) तीव्र-गामी राकेट का वायुमन्डल में पुनः प्रवेश तथा (४) प्रकृति में क्रिया और प्रति-क्रिया की व्याप्ति का गम्भीरतम रहस्य।

साधारण वायुयानों के सम्बन्ध में इन प्राकृतिक रहस्यों का इतना महत्व नहीं है जितना कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण परिधि का अतिक्रमण करने के प्रयास में अथवा अन्तरिक्ष से पुनः वायुमन्डल में प्रवेशार्थ संलग्न राकेट-यानों के विषय में विमान वायु-मन्डल के अन्तर्गत उड़ने के कारण उपलब्ध वायु का प्रयोग करते हैं और फलस्वरूप उनके आकार और प्रकार दोनों ही भिन्न होते हैं। अग्नि के प्रज्वलित होने के लिए आवश्यक औक्सीजन गैस उन्हें वायु-मन्डल से उपलब्ध होती रहती हैं। क्रिया और प्रतिक्रिया की विष्पत्ति उनके अग्र और पुच्छ-भाग में लगे विशेष प्रकार के पंखों से होती रहती है और यान वायु को काट कर आकाश में आगे और ऊपर बढ़ते हैं। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से संघर्ष करने की समस्या उनके सम्मुख नहीं होती। अतः विमान को न तो उतनी गति की और न उस असाधारण गति का सृजन करने वाले किसी विशिष्ट ईंधन की ही आवश्यकता होती है। वायुमन्डल में वायु की विद्यमानता के कारण प्रतिक्रिया का उतना भयंकर रूप भी अस्तित्व में नहीं आता।

प्रतिक्रिया और राकेट

प्रतिक्रिया ही वह रहस्य है जिसके पूर्ण रूपेण उद्घाटित कर लेने पर वैज्ञानिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले राकेटों के निर्माण में सफल हो सके हैं।

अंग्रेज वैज्ञानिक न्यूटन ने सर्व प्रथम क्रिया (एक्शन) और प्रति-क्रिया (रिएक्शन) के रहस्य का पता लगाया था। पृथ्वी पर पैर रखते ही एक अदृश्य क्रिया अस्तित्व में आती है, पुनः उसी के प्रभाव वश आपके आगे चलने की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन का कहना था कि प्रत्येक क्रिया, प्रतिक्रिया को अवश्य ही

जन्म देती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर अमेरिकी राकेट-विशेषज्ञ गोडार्ड ने एक विशेष प्रकार के ईंधन के प्रयोग से राकेट-विज्ञान को अद्भुत गति प्रदान करके उक्त क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी थी।

अमेरिका के "रि-एक्शन मोटर्स" ने भी राकेट में प्रयोगार्थ एक ऐसे अद्भुत इंजन निर्माण किया है, जो ५०,००० पौन्ड धक्का देने की शक्ति रखता है। इस अद्भुत इंजन का एक्स-१५ नामक उस अद्भुत राकेट यान में प्रयोग किया जायेगा जो अमेरिका के यू० एस० नेशनल एयरौनौटिक्स एन्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन, यू० एस० एयरफोर्स तथा यू० यस० नेवी और नार्थ अमेरिकन एवियेशन के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप अस्तित्व में आया है। इस राकेट-यान की गति किसी भी यान से दूनी होगी तथा मानव द्वारा ऊर्ध्वाकाश में की गई तब तक की यात्रा की अपेक्षा वह चार-गुना आकाश में अधिक ऊँचा उड़ सकेगा।

धक्का देने की शक्ति का भी राकेट-यान में विशेष महत्व है। यह शक्ति मूलतः ईंधन की शक्ति पर आधारित होती है। कल्पना कीजिए विभिन्न शक्ति वाले दो पहलवान हैं। इन दोनों पहलवानों को आप दो भारी लोहे के गोले दे दीजिए। दोनों ही पहलवान गोलों को दूर तक फेंक अवश्य देंगे, किन्तु उनकी दूरी में अन्तर होगा। यह अन्तर क्यों हुआ? केवल इसलिये कि उनकी गोले को धक्का देने की शक्तियों में भिन्नता थी।

(वैज्ञानिकों ने इसी प्रकार के उदाहरणों से यह पता लगाया है कि १,००० पौण्ड धक्का देने की शक्ति रखने वाला यन्त्र १ पौन्ड भारी पदार्थ को १८,००० मील प्रति घन्टा की गति से आकाश में आगे फेंक सकता है।)

अमेरिका के रि-एक्शन मोटर्स ने जिस राकेट-इंजन का निर्माण किया है उसमें प्रयुक्त ईंधन को इतनी शक्ति होगी कि वह ५०,०००पौन्ड धक्का देने की शक्ति सम्पूर्ण यन्त्र पुन्ज में उत्पन्न कर सकेगा।

अपनी उड़ान के दौरान में जिस समय यह एक्स-१५ राकेट-यान पृथ्वी-मन्डल को पार कर लेगा उस समय वह वायु की क्रिया के फलस्वरूप उड़ान रूप प्रति क्रिया को जन्म नहीं देगा, वरन् स्वयं में उत्पन्न केन्द्रापग शक्ति द्वारा ऊर्ध्वाकाश में आगे बढ़ेगा। वायु के अभाव में केन्द्रापग शक्ति ही उसकी उड़ान का अवलम्ब होगी। और चूंकि इस अवस्था में वायु के अभाव के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण क्रिया केन्द्रापग (संट्राफ्यूगल) शक्ति से शून्याकाश में संचालित होगी; अतः इस यान को वायु-यान न कह कर अन्तरिक्ष-यान कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

इस अन्तरिक्ष यान में सवार अन्तरिक्ष-विहार करने वाला यात्री अपने को ऊर्ध्वाकाश में इतना ऊँचा पायेगा कि वहां सूर्य का प्रकाश भी, जो प्रत्येक वस्तु को रूप प्रदान करता है, संतुलित अवस्था में विद्यमान न होगा। प्रकाश के इस असंतुलित प्रसार का फल होगा, पदार्थों का ठीक से न दिखलाई देना। उस समय उसे सूर्य प्रकाश में भी वस्तुओं को देखने के लिये कृत्रिम प्रकाश का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

यह अन्तरिक्ष-यान वस्तुतः अन्तरिक्ष में ही उड़ता नहीं रहेगा। इसका वातावरण में पुनः प्रवेश भी होगा। एक्स-१५ राकेट यान में ऐसी यांत्रिक व्यवस्था की गई है जिसके सहारे यान वायुमंडल के स्पर्श में आते ही गुरुत्वाकर्षण शक्ति से एक दम आकृष्ट न हो जाये। चालक यान में संलग्न विभिन्न जटिल यंत्रों के द्वारा यान और गुरुत्वाकर्षण शक्ति के मध्य ऐसा सन्तुलन स्थापित करने में समर्थ हो सकेगा कि जिसके फलस्वरूप यान धीमी गति से वायुमन्डल में पुनः प्रवेश कर सके।

यदि कदाचित् वायुमन्डल में प्रवेश के हेतु पूर्व निर्धारित पथ से यान, किसी भी याँत्रिक त्रुटि के फलस्वरूप, तनिक भी भटक गया, तो एक्स-१५ यान इतनी तेजी से वायुमंडल से टकरायेगा कि सम्पूर्ण वातावरण उसके लिए एक अत्यन्त ठोस पदार्थ के समान बन जायेगा। वातावरण में पुनः प्रवेश भी केन्द्रापग शक्ति द्वारा ही सम्भव होता है। सफल पुनः प्रवेश के लिए, गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रतिरोध करने वाली धीमी गति की मात्रा को ६-जी (गुरुत्वाकर्षण का माप) कूता गया है।

अभीष्ट उड़ान

एक्स-१५ प्रथम तो अन्तरिक्ष में प्रवेश के लिए वायुमंडल के पार जायेगा, और अन्तरिक्ष में एक दूरी विशेष तक जाकर वातावरण में पुनः प्रवेश करेगा यही इसकी समस्या है।

कोई भी यान क्यों न हो यदि वह ध्वनि-सीमा से पार की गति पर उड़ता है, तो वह यान तुरन्त अत्यधिक गरम ही नहीं हो जायेगा, वरन् चालक को ऐसा अनुभव होगा मानों आकाश में किन्हीं प्रतिरोधक शक्तियों से उसका संघर्ष हो रहा है। उस समय उसका तापमान १००० डिग्री फा० तक पहुँच जायेगा। और कहीं यदि वह पुनः प्रवेश के समय निर्धारित पथ से भटक जाता है, तो उक्त तापमान और अधिक बढ़ जायेगा, और चालक को घोर संकट का सामना करना पड़ जायेगा।

वस्तुतः इन सम्भावित संकटमय अवस्थाओं का प्रयोगशाला में भली प्रकार परीक्षण कर लिया गया है। पुनः प्रवेश के समय धीमी गति की अवस्था में, परीक्षणों के आधार पर, ऐसा अनुमान किया गया है कि दुर्घट-नाओं से बचने और विपरीत अवस्थाओं का सामना करने के लिए यह आवश्यक है कि चालक के सिर में मजबूती से एक पट्टी बंधी रहे अन्यथा या तो वह संज्ञा-हीन हो जायेगा, या फिर उसकी ग्रीवा (गर्दन) को आघात पहुँचेगा। उक्त धीमी चाल के दौरान में, जिसका आविर्भाव गुरुत्वाकर्षण शक्ति से संघर्ष के समय होता है, शरीर के आन्तरिक अवयवों और पेट को भी पर्याप्त आघात पहुंचता है– उसके विकृत होने का डर रहता है। रक्त जम कर पारे जैसा हो जाता है और समस्त शरीर से बढ़कर वह नेत्रों और मस्तिष्क के अग्र भाग की ओर प्रवाहित होने लगता है।

जिस समय इस सम्भावित उड़ान के सम्बन्ध में परी-क्षण किए गये और स्काट क्रौसफील्ड को उनमें से होकर गुजरना पड़ा उस समय वह संज्ञा-शून्य हो गये और उनका चेहरा विकृत हो गया।

अतएव यह स्पष्ट ही है कि एक्स-१५ यान जिस ऊँचाई पर उड़ेगा, वह चालक के जीवन और उसके उद्देश्य दोनों ही के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। यान में साधारण विमान के समान पुच्छ-भाग में लगे वायु का काट करने वाले पखों का प्रयोग तो किया नहीं जा सकता, क्योंकि वहां वायु ही नहीं होगी, जिस पर उनकी क्रिया अथवा प्रतिक्रिया हो सके।

इन बाधाओं और संकटों पर विजय पाने के लिए ही यह आवश्यक है कि उक्त यान में प्रतिक्रियात्मक शक्तियों का प्रयोग किया जाये।

अमेरिकी इन्जिनियरों ने इस प्रतिक्रियात्मक शक्ति को उत्पन्न करने के लिए हाइड्रोजन पैरोक्साइड पदार्थ को प्रयुक्त किया है। राकेट-यान के छोड़े जाने के पश्चात् उसे कुछ समय तक निर्धारित पथ का ही अनु-सरण करना होगा, क्योंकि आरम्भ में जब राकेट-यान को प्रक्षेपणास्त्र के समान आकाश में छोड़ा जायेगा, तब उसे अनिवार्यतः निर्दिष्ट मार्ग का ही अनुसरण करना पड़ेगा। प्रक्षेपणास्त्र के पथ में कोई भी परिवर्तन सम्भव नहीं होता।

ऊपरी वातावरण में उड़ान के समय चालक को सम्पूर्ण यान पर नियन्त्रण रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यही वह स्थान है, जहां चालक को यान को ठीक अवस्था में रखना ही चाहिये। ध्वनि-सीमा की इतर गति को पार करके ध्वनि-सीमोन्तर गतियों पर जब यान उड़ने लगता है, तब दबाव उसके मध्य भाग पर होता है, जहां पंखा इत्यादि लगे होते हैं, और उस समय आकाश में उत्पन्न होने वाली प्रकम्पन तरंगे बड़ी तेजी से यान से टकराती है।

अतः यह स्पष्ट है कि एक्स-१५ राकेट यान को अन्तरिक्ष उड़ान के दौरान में भयंकर बाधाओं का सामना करना पड़ेगा, ऐसी बाधाओं को जिनका किसी भी वैमा-निक ने आज तक सामना नहीं किया।

अमेरिकी इंजिनियर बड़ी तत्परता और लगन से इन सम्भावित समस्याओं का हल ढूँढ़ने में लगे हैं। भयंकर धक्का देने वाले प्रकम्पनों को प्रभावहीन बनाने के लिए वे सिलिकोन नामक पदार्थ से यान के पंखों को अत्यन्त चिकना बना देते हैं। किन्तु आशंका ऐसी है कि टकराने

वाली तरंगें फिर भी आघात पहुंचाने में सफल हो जायेंगी।

यान के अत्यधिक ताप से पिघलने और अन्य किसी प्रकार की क्षति पहुंचने की समस्या वस्तुतः वहीं की वहीं रहती है।

इन दुर्घटनाओं के निराकरण के लिए ही, ५० फुट लम्बा बेलनाकार एक्स-१५ राकेट यान सख्त धातु का बना होगा, जिसमें निकिल और इस्पात का मिश्रण रहेगा। निकिल-मिश्रित धातु का ही उसके बाहरी भाग में प्रयोग किया जायेगा। यदि ताप कदाचित् इस परत के भी अन्दर प्रविष्ट हो गया, तो वह एक दूसरे परत द्वारा रोक दिया जायेगा, जो टाइटेनियम और स्टेनलैस स्टील का बना होगा। इस यान का ढांचा ऐसा होगा कि वह १,००० डि० फा० ताप का बड़ी आसानी से प्रतिरोध कर सकेगा।

एक्स-१५ यान के ६५ प्रतिशत भाग में विभिन्न अवयव झलाई-प्रक्रिया द्वारा परस्पर सम्बद्ध किये गये हैं, जब कि ३५ प्रतिशत भाग में अवयव यान्त्रिक प्रक्रिया द्वारा परस्पर सन्नद्ध कर दिये गये हैं। पेंच कसे हुये स्थानों में सभी प्रकार के छिद्रों को बन्द करने के लिए हाइड्रोलिक नलिकाओं का प्रयोग किया गया है। ईंधन-व्यवस्था के लिए 'उच्च दबाव' वाले 'टैंक' प्रयोग में लाये गये हैं।

उड़ान प्रक्रिया

अभीष्ट उड़ान के समय यह अद्भुत यान अपनी पहली मंजिल में ४०,००० फुट तक एक "मातृ" विमान पर सवार होकर जायेगा। वहां से वह ४०० मील प्रति घन्टे की गति से आकाश में छोड़ दिया जायेगा। चालक उस समय सतर्क रह कर संचालन और नियन्त्रण क्रिया में संलग्न हो जायेगा।

आज तक किसी भी अन्य यान में इतनी संख्या में दिशा निर्देशक यंत्र नहीं लगाये गये। इस यान में इतने यंत्रों की आवश्यकता केवल इस लिये हुई, क्योंकि शून्याकाश में दिशा का जानना कोई आसान काम नहीं है। वात-गति मापक तथा ऊँचाई मापक यंत्र यहाँ काम नहीं दे सकते। चालक को इसी लिये सदैव इस बात की जानकारी रखनी पड़ती है (यंत्रों के सहारे) कि वह अपने मूल स्थान की अपेक्षा शून्याकाश में कहाँ है।

स्पैरी जिरोस्कोप द्वारा निर्मित यन्त्र के सहारे चालक सघन वायु मन्डल में पुनः प्रवेश के समय एक्स १५ यान की चाल को धीमा करके उस अवस्था में रख सकेगा, जिसमें कि पुनः प्रवेश बिना किसी क्षति के सम्पन्न हो सके। शून्याकाश में इस प्रकार की प्रत्येक उड़ान के विवरण का विद्युदणु-प्रक्रिया द्वारा अंकन होता रहेगा। यदि हम यह कह दें कि इस उड़ान सम्बन्धी सम्पूर्ण निश्चल व्यवस्था, अर्थात ऐसी व्यवस्था जिसमें उड़ान के दौरान कोई परिवर्तन नहीं होता, ये चालक एक अति बौद्धिक प्राणी के रूप में कार्य करता हुआ अति विपरीत अन्तरिक्ष सम्बन्धी अनुभवों के बीच अपने को जीवित रखेगा और परम उपयोगी विवरण एकत्र करेगा तो कोई अत्युक्ति न होगी।

चूंकि निस्तब्ध वातावरण में उड़ान के समय तनिक सी भी कोई आकस्मिक बाधा यान का संतुलन भंग कर सकती है, अतएव निर्माण के समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि यान पर नियन्त्रण रखने में चालक को कोई असुविधा न हो। अन्य यन्त्रों के अतिरिक्त उड़ान पर नियन्त्रण रखने के लिये उसकी कुर्सी के नीचे ही ऐसी यांत्रिक व्यवस्था कर दी गई है कि वह बैठे-बैठे अपनी सीधी कलाई के स्पर्श-मात्र से यान पर नियन्त्रण प्रात कर सके।

अभी एक और अन्तिम समस्या है। कल्पना कीजिये कि एक्स १५ राकेट यान उड़ता है और किसी आकस्मिक दुर्घटनावश आकाश अथवा शून्याकाश में जाकर किसी दोष के उत्पन्न होने के कारण बिगड़ जाता है। ऐसी दशा में चालक की सुरक्षा की क्या व्यवस्था है, अथवा हो सकती है? राकेट विशेषज्ञों का कहना है कि शून्याकाश में उतनी ऊँचाई से चालक का यान से याँत्रिक प्रक्रिया द्वारा कूदना एक अकल्पनीय सम्भावना है। वह वहां से कूदने पर जीवित रह ही नहीं सकता। इस लिये इस कल्पना को मान कर ही एक्स १५ राकेट

यान में उड़ान की व्यवस्था करनी पड़ेगी कि यान की उड़ान के समय विस्फोट अथवा अग्निकान्ड की कोई सम्भावना नही होगी। ऐसी दशा में चालक की सुरक्षा की कोई विशेष व्यवस्था की ही नहीं जा सकती।

हां, यदि कदाचित् चालक उड़ान के दौरान में किसी सम्भावित खतरे के कारण यह अनुभव करता है कि वह एक्स १५ यान का अवश्य ही जीवन-रक्षा के हेतु परित्याग कर दे, तब उसे जो करना चाहिये वह यह है कि वह उस समय तक यान में ही बना रहे जब तक कि उसकी चाल अत्यन्त धीमी न हो जाये। पुनः वह याँत्रिक प्रक्रिया द्वारा वहाँ से कूद सकता है। हाँ, इस प्रतीक्षा में उसे जान पर अवश्य खेलना पड़ेगा। किन्तु तथ्य तो यह है कि एक्स १५ यान के सफल परीक्षण के हेतु चालक को जान की बाजी लगानी ही पड़ेगी। यह एक अत्यन्त साहसिक कार्य है, और प्रत्येक साहसिक काम में खतरा निहित रहता ही है। अन्तरिक्ष-विज्ञान की उन्नति के लिये ऐसे खतरों का सामना करना अवश्यंभावी ही है। मानव कल्याण के हेतु अन्तरिक्ष उड़ान के प्रयोग की भूमिका में मानव का यह खतरा भरा प्रयास भी स्तुत्य है और है अत्यन्त शलाघनीय।

गौर कीजिए जरा वैज्ञानिकों के बुद्धि-चातुर्य पर, उनके गम्भीरतम चिंतन और कल्पना की उच्चतम उड़ान पर। आकाश में इतनी तेज गति से यान का उड़ना कि सम्पूर्ण वाहन के ही ताप के आघात से पिवल जाने का खतरा हो, उस समय वायु के दबाव की न्यूनता से शरीरावयवों के निष्क्रय हो जाने की आशंका हो, शरीर में संचारित रक्त के ही जम जाने का भय हो—ये ऐसी घटनायें हैं जिन पर विजय पाने के लिये अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक्स १५ नामक अद्भुत राकेट यान में पूर्ण यांत्रिक व्यवस्था की है, राकेट वाहन के निर्माण में विशेष प्रकार की धातुओं का प्रयोग किया गया है, उसके बाहरी भाग पर विशेष तत्वों के लेप किये गये हैं, और चालक के उपर्युक्त विपरीत अवस्थाओं में भी स्वस्थ, संज्ञामय, चेतन और सक्रिय बने रहने के लिए एक विशेष प्रकार की वेशभूषा का निर्माण किया गया है।

आशा है एक्स–१५ नामक यह अद्भुत अमेरिकी राकेट यान अन्तरिक्ष उड़ान के क्षेत्र में एक क्रान्ति के अविर्भाव का कारण बनेगा। पुनः उपन्यासों में वर्णित अन्तरिक्ष उड़ान की कहानियाँ साकार रूप धारण करके हमारे सम्मुख आती हुई दृष्टिगोचर होंगी, और हमारे हृदय इस विजयोल्लास से परिपूर्ण हो खिल उठेंगे, प्रकृति देवी के उस तेजोमय प्राँगण में, जहाँ मानव का ज्ञानमय शुभ्र प्रयास अपने चतुर्दिक विकास के लिये नित नये कौतुक दिखाता है।

—०—

खेती की उन्नति में अणु शक्ति का प्रयोग

नयी दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसंधान के एक कोने में ८०० फुट व्यास की गोला कार जमीन के चारों ओर ३ फुट चौड़ी और १८ फुट ऊँची दीवाल बनायी जा रही है। इस जमीन में गामा किरणें फेकने वाले कोबाल्ट ६० के टुकड़े लगाए जायेंगे, जो ऐसे पौधे तैयार करेंगे, जिन की उपज अधिक होगी और जिनमें कीड़े तथा बिमारियाँ भी न लगेगी।

अनुसंधान शाला में पिछले तीन वर्षों से रेडियो-आइसोटापो (कणों) द्वारा पौधों की नसल सुधारने पर खोज हो रही है। पहले यह धारणा थी कि रेडियो-आइसोटोपों से पौधे जल्दी बढ़ते हैं। परन्तु विदेशों में और इस अनुसंधान शाला में खोज करने से पता चला है कि ऐसा नहीं है। अब पौधों पर किरण-कणों का प्रयोग कर के यह देखा जाता हैं कि उनका पौधे की रचना पर और मिट्टी पर क्या असर पड़ता है। उर्वरकों और खादों में किरण युक्त कणों को छोड़ कर पौधों के पोषण और बाढ़ की क्रिया का अध्यन किया जाता है।

रेडियो विकिरण से पौधों की नस्ल बदलती है। इस प्रकार अनाज आदि की किस्म सुधारी जा सकती हैं।

रेडियो विकिरण से फसल के कीड़े भी नष्ट किए जा सकते हैं। नर कीड़ों पर गामा किरणों के पड़ने से उनकी संतानोंत्पादन शक्ति मारी जाती है।

पौधों की नस्ल में सुधार

अच्छे किस्म के पौधे उगाने के लिए उपयुक्त किस्म की पौध छांटनी होती है। मान लीजिए कि हम गेहूं की ऐसी किस्म पैदा करना चाहते हैं, जिसमें रतुआ न लगे तो हमें इसके लिए गेहूँ की उस नस्ल का पौधा लेना होगा, जिसमें रतुआ रोकने की शक्ति हो। यह शक्ति पैदा करने के लिए हमें पौधे के जनने या वंशानुगत तत्वों में परिवर्तन करना होगा। ऐसे जाति परिवर्तन अपने आप भी होते हैं, परन्तु रेडियो विकिरण से तेजी से परिवर्तन किया जा सकता हैं।

इस प्रकार पौधों की जातियां बदलने में रेडियो विकिरण से काफी सहायता मिलती है। गेहूँ की किस्म उन्नत करने में यह विशेषकर लाभ दायक होगा, क्योंकि पिछले ५० वर्षों से गेहूँ की किस्म सुधारने के लिए निरन्तर प्रयत्न हो रहा है और अब पुराने तरीके से अधिक परिणाम निकलने की आशा नहीं है।

भारतीय कृषि अनुसंधान शाला ने रेडियो विकिरण से गेहूँ कपास तथा अन्य पौधों की किस्में सुधारने में काफी काम किया हैं। इसकी मदद से एन० पी० ८०९ किस्म के गेहूँ में जल्दी अंकुर फूटते हैं और उसके पौधों में काला, पीला या भूरा रतुआ भी नहीं लगता। इसी तरह संकर बिनौले तैयार किए गए, जिनसे अधिक कपास पैदा होती है। टमाटर और फूलों के पौधे भी रेडियो विकिरण से अधिक सुन्दर फल-फूल देने लगते हैं।

गामा खेत

कृषि अनुसंधान शाला ने अपने यहां जो 'गामा खेत' बनाया है, उससे रेडियो विकिरण द्वारा पौधों की नस्ल बदलने के बारे में अध्यन करने में बहुत सहायता मिलेगी। रेडियो विकिरण के लिए अन्य पदार्थ भी इस्तेमाल किये गये, परन्तु कोबाल्ट ६० सबसे कम खर्च का और अच्छा साबित हुआ है। यह अधिक समय तक चलता है और इससे काफी शक्तिशाली और अन्तरवेधक गामा किरणें निकलती हैं। इसके लिए कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा से २०० क्यूरी का कोबाल्ट ६० खरीदा गया है। इससे बहुत से पौधों पर एक साथ किरणें डाली जा सकेगी।

यह खेत अणु शक्ति आयोग के सहयोग से बनाया जा रहा है। यहाँ संस्था के कर्मचारियों के अलावा देश के अन्य ऐसे कार्यकर्ताओं को भी अध्ययन और प्रयोग करने की सुविधा दी जाएगी।

देश में अणु शक्ति पैदा करने के लिये बृहत कार्यक्रम बनाया गया है। और इसके लिये अगस्त १९५६ में टाम्बे में पहली अणु भट्टी भी बिठाई गयी। परन्तु वहां शक्ति पैदा करने में अभी समय लगेगा। तब तक अणु-रिएक्टर से रेडियो आइसोटोप तैयार करके प्रयोग में लाये जा रहे हैं। इनसे वैज्ञानिकों के काम में बड़ी सुविधा हुई है। भारतीय कृषि अनुसंधान शाला कृषि की उन्नति के लिए खोज करती है और कोबाल्ट ६० गामा खेत बना कर उसने मनुष्य की भलाई के लिए अणु शक्ति के उपयोग में एक कदम उठाया है।
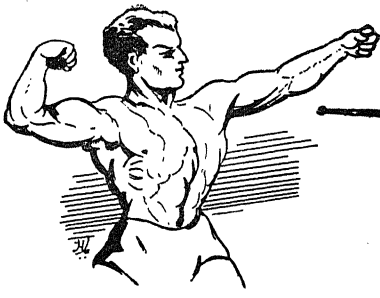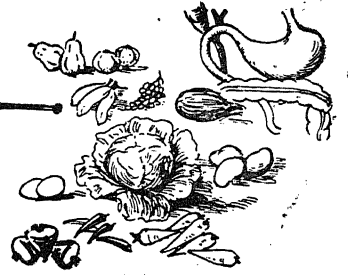
चूहों पर स्वास्थय सम्बंधी परीक्षण

ले० नाट हैसल्टाइन

वाशिंगटन (डी० सी०) के एक उपनगर में बेथिस्डा (मेरिलैण्ड) स्थित 'नेशनल इन्स्टिट्यूट्स ऑव् हैल्थ' के ६ करोड़ ५० लाख डालर की राशि से बने चिकित्सा-केन्द्र को देखकर दर्शक इतने मुग्ध हो जाते हैं कि वे इसे एक सब से बढ़िया अस्पताल समझने लगते हैं। ये यह समझ नहीं पाते कि यह , अस्पताल के अतिरिक्त, चिकित्सकों की एक अद्वितीय प्रयोगशाला भी है।

'नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑव् हैल्थ' की सात संस्थाओं में जो उपयोगी कार्य हो रहा है उससे दर्शक कदाचित् अनभिज्ञ ही रहते हैं। नई उपचार एवं चिकित्सा विधियों की प्रामाणिकता को आंकने के लिए ही उक्त संस्थाएं इस अस्पताल को प्रयोग में लाती है। दर्शक सम्भवतः श्वेत कोट पहने डाक्टर को तो पहचान लेते हैं, लेकिन संसार को अपनी अद्भुत खोजों से स्तब्ध एवं चकित करने वाले शान्त एवं गम्भीर कर्मचारियों को वे सरलता से नहीं पहचान सकते।

विज्ञान के पी-एच० डी० वाल्टर एल० न्यूटन कालेज में पढ़ते समय जब पशुओं की चीर-फाड़ किया करते थे तब भला उन्हें क्या मालूम था कि वह एक दिन चूहों के विशेषज्ञ बनेंगे। इस समय आप, छोटे किन्तु सबल परीक्षणात्मक पशुओं के पेट के चीर-फाड़ सम्बन्धी विभाग के विशेषज्ञ हैं। अति-संवेदनशीलता (एलर्जी) तथा संक्रामक रोगों सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था के पशु-निरीक्षण विभाग के अध्यक्ष के नाते उनका काम अपने दल को रोगाणु-मुक्त चूहे प्रदान करना है।

रोगाणु-मुक्त पशुओं की दो तरह से जांच की जा सकती है। एक तरीका तो पशुओं के शल्य चिकित्सा विभाग को सौंपने के तुरन्त बाद ही, बाहरी संक्रमण से मुक्त, कीटाणु-विहीन वातावरण में रखने से सम्बन्धित है। दूसरा तरीका है रोगाणु-मुक्त पशुओं के जोड़ों का साथ-साथ विकास, और कीटाणुमुक्त विशिष्ट टैंकों में उन का प्रजनन क्रिया में संलग्न होना।

स्वास्थ्य एवं रोग के क्षेत्र में रोगाणुमुक्त अनुसन्धान का इतना महत्व बढ़ गया है कि 'यू० एस० नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑव् एलर्जी एण्ड इनफैक्शस डिजीजेज' के अन्तर्गत ही उष्ण प्रदेशों में प्रचलित रोगों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के हेतु एक विशेष प्रयोगशाला की स्थापना की गई है, जो एक दिन बहुत बड़ी प्रयोगशाला बन जाएगी। नोटरे डैम विश्वविद्यालय में आरम्भ में स्थापित जीवाणु प्रयोगशाला के नमूने पर ही उक्त प्रयोगशाला को तैयार किया जाएगा, ताकि पशुओं के बारे में विभिन्न प्रकार के परीक्षण किए जा सकें।

अब तक सफल अनुसन्धान के मार्ग में मुख्य बाधा केवल परीक्षणात्मक-पशुओं एवं निरीक्षण सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव की ही रही है। इस अभाव को दूर करने के उद्देश्य से ही अलर्जी एवं संक्रामक रोगों सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्था ने एक नई रोगाणु-मुक्त पशु-अनुसन्धानशाला की स्थापना की है।

एक वर्ष से अधिक समय हुआ जब श्री न्यूटन ने मादा चूहों तथा उनसे उत्पन्न बच्चों के सम्बन्ध में प्रयोग और अनुसन्धान के उद्देश्य से शल्य-चिकित्सा विभाग की स्थापना की थी, और उन्होंने यह पता लगाया है कि अब तक पैदा हुये कुल ४०० चूहों में एक बार भी रोगाणु-मुक्त चूहा पैदा नहीं हुआ है, यद्यपि आकस्मिक

तौर पर रोग से प्रभावित होने की सम्भावना अत्यधिक रही।

वस्तुतः जिन चूहों ने इस प्रकार वैज्ञानिक विधि से अन्य चूहों को जन्म दिया यह आवश्यक नहीं कि उनमें से प्रत्येक ही रोगाणुमुक्त रहा हो। प्रत्येक सम्भव सावधानी के बावजूद, कीटाणु-प्रभावित वायु का किसी न किसी कारण से उस स्थान में जहां चूहे जन्म लेते हैं, प्रवेश हो ही जाता है। कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जहां पशुओं को जीवाणुहीन कक्षाओं (स्टैराइल चैम्बर) में रोगाणुओं के प्रविष्ट होने के फलस्वरूप कक्ष में मौजूद चूहे दूषित हो गये। परीक्षण के तौर पर कीटाणुओं से मुक्त चूहों को भी विशिष्ट रोगाणुओं के प्रभाव-क्षेत्र में ला दिया गया, ताकि इन जीवाणुओं से ज्ञात हो सके कि इन दूषित जीवाणुओं का चूहों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

श्री न्यूटन की विधि यह है कि तरुण चूहों को रोगाणु–मुक्त विशिष्ट औपरेटिंग चैम्बर में डाल देते हैं। मादा पशु को "स्टैराइल चैम्बर" के बाहर औषधि के प्रभाव से बेहोश किया जाता है, तत्पश्चात् न्यूटन कीटाणु मुक्त सैलोफेन द्वारा जरूरी चीर-फाड़ कर देते हैं। जैसे ही एक चूहा उत्पन्न होता है वैसे ही उसे रोगाणु-मुक्त टैंक में प्रविष्ट कर दिया जाता है जहाँ परीक्षणात्मक दृष्टि से ही उसका विकास होता है।

नौटरे डैम विश्वविद्यालय में शुरू में जिस आधारभूत कीटाणु-मुक्त पात्र को तैयार किया गया था वह लगभग ३ फुट व्यास वाला ५ फुट लम्बा इस्पात का एक सिलैन्डर (पात्र) है। इस पात्र के ऊपरी भाग में निरीक्षण के लिये एक खिड़की की व्यवस्था है और साथ ही एक रबड़ के दस्तानों का जोड़ा पड़ा रहता है। औपरेटिंग टैंकों की तरह के खास यूनिटों में दोनों तरफ खास तरह के दस्तानों के जोड़े पड़े होते हैं ताकि जब वैज्ञानिक औपरेशन कर रहा हो या इन्जैक्शन (सुई द्वारा टीका) दे रहा हो, तब टैक्निशियन पशु को ठीक से पकड़ सके।

इस सम्बन्ध में प्रश्न यह है कि बड़े कीमती कमरों में रहने वाले इन पालतू पशुओं से निरीक्षक क्या कुछ सीखने की आशा रखते हैं?

कन्ठ के तन्तुओं में विषाणुओं की क्या गतिविधि रहती है इस रहस्य का पता लगाने की उन्हें (निरीक्षकों को) आशा रहती है। सम्भवतः इस तरह के वातावरण में विषाणु अपनी विचित्र प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करेंगे ऐसा उनका अनुमान होता है।

ये निरीक्षक, रोग से मुक्ति पाने की विभिन्न विधियों का अध्यन करेंगे, ताकि मानव जाति आक्रमणकारी रोगाणुओं का सफलता पूर्वक मुकाबला करके रोगों से मुक्ति पा सके।

ये निरीक्षक आंत की नली में रहने वाले 'सामान्य' जीवाणुओं की महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाओं का पता लगाना चाहते हैं, ताकि अतिसार के भयंकर रोग से मुक्ति पाई जा सके।

निरीक्षक यह भली प्रकार जानते हैं कि कुछ कीटाणु खास पशुओं पर ही पनपते हैं, महत्त्वपूर्ण पशुओं के सहारे वे जीवित नहीं रह सकते। जैसा कि प्रारम्भिक रोगाणु-मुक्त परीक्षणों से संकेत मिला है, निरीक्षक यह पता लगाना चाहते हैं कि क्या कीटाणुओं के भय से मुक्त पशु, जीवाणुओं को हड़प लेता है या नहीं।

ये निरीक्षक अलर्जी सम्बन्धी परीक्षणों के लिए रक्त का अध्यन करेंगे ताकि उन्हें आहार और पोषण सम्बन्धी क्रिया में लाभकारी एवं हानिकारक जीवाणुओं की प्रतिक्रियाओं का पता चल सके। वे ऐसे जीवाणुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, जो विटामिन को बढ़ावा देते हैं या विटामिन को नष्ट करते हैं, ताकि इससे यह पता चल सके कि आधुनिक ढङ्ग के रोगाणुनाशक कार्य में ये कीटाणु किस तरह से काम करते हैं।

'नेशनल इन्स्टिट्यूट औव् हैल्थ' के अन्तर्गत कार्यरत प्रयोगशालाओं में अन्य वैज्ञानिक अपनी खास योजनाओं सम्बन्धी अध्ययन एवं अनुसन्धान कार्य में संलग्न हैं; ताकि मानव जाति को आतंकित करने वाले भयंकर रोगों से एक दिन मुक्ति मिल जाये या रोग का उन्मूलन करने वाली किसी उपयुक्त औषधि का पता लग जाये।

"लो मैं तैयार हूं"

वेरकी चेरियन

अस्पताल में बहुत दिनों तक पड़े रहने से बड़ी आयु के लोग भी परेशान हो जाते हैं। ४ साल की लक्ष्मी के लिए तो यह स्थिति अत्यन्त दुखद और शोचनीय थी। उसे अस्पताल में फेफड़े का आपरेशन कराने के लिए भरती किया गया था।

वेलोर के क्रिश्चियन मैडिकल कालेज के अस्पताल की नर्सों के लिए नई समस्या यह थी कि इस दुखी और व्याकुल लड़की को कैसे बहलाया जाय। तथापि, उनकी अनथक कोशिशों का फल हुआ और लक्ष्मी ने वार्ड के अन्य लड़के लड़कियों के साथ बातचीत करना और मिलना शुरू कर दिया। वह देखती थी कि कुछ बीमार बच्चों को पहियेदार पलंग या कुर्सी की सहायता से आपरेशन कक्ष में लाया जाता है। उसके बाद उसे कहा गया कि वह उन बच्चों से मिले जिनके आपरेशन हो चुके हैं।

फिर एक दिन नर्सों को यह सुन कर बड़ी हैरानी हुई कि लक्ष्मी अपना आपरेशन कराने के लिए स्वयं राजी हो गई है।

रोगी की व्यक्तिगत देखभाल और परिचर्या के फलस्वरूप किस प्रकार उसका सहयोग मिलता है और वह जल्दी आरोग्य लाभ करता है, इसे अस्पताल में बाल-रोगियों की परिचर्या-सलाहकार मिस मेरी ए. एन्डरसन अच्छी तरह बतलाती हैं।

मिस एण्डरसन वेलोर कालेज के अस्पताल में 'अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन' की ओर से रोग परिचर्या सलाहकार और शिक्षिका के रूप में दो साल तक काम करने गत नवम्बर में आई थीं। वे न्यूयार्क अस्पताल में कौर्नेल मेडिकल सेन्टर की ओर से बाल-रोगियों की परिचर्या सम्बन्धी शिक्षिका थीं।

वेलोर अस्पताल में रोग परिचर्या के दो पाठ्यक्रम हैं जिनमें से एक ४ साल का बी. एस. सी. का पाठ्यक्रम है और दूसरा तीन साल का प्रमाणपत्र देने का पाठ्यक्रम है। इन दोनों में बाल-रोग चिकित्सा का विषय आवश्यक है।

मिस एन्डरसन का कथन है कि बच्चों के वार्ड में परिचर्या करने का मूल तत्व हरेक बच्चे को समझना है। इस लिए हरेक शिक्षार्थी को कुछेक बच्चे सुपुर्द किये जाते हैं और परिचर्या-शिक्षिका उस छात्रा को वार्ड में बच्चों के काम-काज करने की क्रियात्मक शिक्षा देती है।

रोगी बच्चों की परिचर्या में खेल का विशेष महत्व होता है, क्यों कि बच्चों के जीवन से खेल को अलग नहीं किया जा सकता। जो बच्चे आंगन में जा सकते हैं उनके खेलों की व्यवस्था वहाँ कर दी जाती है। अन्य बच्चों के लिए पलंग पर लेटे-लेटे ही सचित्र पुस्तकें पढ़ने और चित्रकारी करने आदि के साधन जुटा दिये जाते हैं।

मिस एन्डरसन बाल-रोगियों की चिकित्सा के नियमित पाठ्यक्रम में योग देने के साथ-साथ रोगी बच्चों की माताओं को छात्राओं द्वारा शिक्षा देने के काम की देख रेख भी करती हैं। नियत समय पर ये छात्रायें स्त्रियों को स्वास्थ्य-स्वच्छता, आहार की न्यूनताओं और पुष्टिकारक तत्वों के अभाव आदि के सम्बन्ध में कुछ बुनियादी बातें बतलाती है। इसके साथ ही वे उन्हें खाद्य-पदार्थों की तालिकायें आदि भी दिखलाती हैं।

इन निर्देशों के बाद ये छात्रायें अस्पताल से मुक्त हुए बच्चों के घरों पर जा कर यह देखती हैं कि उनकी बतलाई हुई बातों का क्या असर हुआ है।

मिस एन्डरसन ने बतलाया कि इन दौरों से दोनों को ही लाभ होता है। नर्सें घरों में बच्चों के पालन-पोषण की असली समस्यायें जान जाती हैं और माताओं को यह पता चल जाता है कि उन के घर के बगीचों में उगी साग-सब्जियां बच्चों के लिए उतनी ही लाभदायक है जितनी नारंगियां।

भारत में कोयला

[ओमशंकर द्विवेदी एम० ए०, प्रयाग विश्वविद्यालय]

किसी भी देश के लोगों के जीवन स्तर का अनुमान उस देश में उपलब्ध ऊर्जा स्रोतों और उनके विकास से लगाया जा सकता है। यद्यपि संसार के अग्रणी देशों ने आणविक विद्युत के विकास की लम्बी चौड़ी योजनायें बना रक्खी हैं, विभिन्न तैल क्षेत्रों से अत्यधिक मात्रा में तेल निकालने की सुविधा प्राप्त की है, और अनेकानेक जलविद्युत योजनाओं को कार्यान्वित कर शक्ति साधनों की उपलब्धि का मार्ग खोल दिया है फिर भी कोयला ही एक ऐसा खनिज है जो इन देशों को भी उनकी अधिकतम आवश्यकताओं के हेतु शक्ति प्रदान करता है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि आज भी कोयला विश्व का सबसे बड़ा शक्ति स्रोत कहलाने की क्षमता रखता है। भारतवर्ष भी इस नियम का अपवाद नहीं। देश के प्रमुख उद्योग, यातायात के साधन तथा अन्य छोटे मोटे व्यवसाय अपने हेतु आवश्यक शक्ति का अधिकतम भाग आज भी कोयले से प्राप्त करते हैं।

यदि हम देशों को उनमें प्राप्त उत्तम कोयले के भन्डार तथा उत्पादन के अनुसार क्रमवद्ध करें तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि देशों की उन्नति और कोयले के उत्पादन में एक सरल अनुपात है। संसार के कोयला उत्पादक देशों में भारत का दसवां स्थान है। भारत में इस उद्योग की महत्ता इस तथ्य से जानी जा सकती है कि सन् १९५५ ई० में भारत में पूर्ण खनित खनिजों का मूल्य १०३०० लाख रुपये था, जिसमें केवल खनित कोयले का मूल्य ५९०३ लाख रुपये अर्थात् आधे से भी अधिक था। खनित खनिजों में भार की दृष्टि से भी कोयले का ही प्रथम स्थान है। विभिन्न खानों में कार्यरत मजदूरों के आधे से अधिक कोयला खानों में कार्य करते हैं।

भंडार—भारत के कोयला भंडारों के विषय में विभिन्न विद्वानों के अलग अलग मत हैं। फेरमर (L. L. Fermor) के अनुसार भारत में अच्छे कोयले के भंडार ४५२१० लाख टन हैं जो कि सुविधा पूर्वक विकसित किए जा सकते हैं और इसमें से १७००० लाख टन कोयला कोक बनाने के उपयुक्त है।

सन् १९३२ में फाक्स (Sir Cyril Fox) ने भारत के खनन योग्य कोयला भंडारों में निहित कोयले की मात्रा का अनुमान २००००० लाख टन लगाया था। उन्होंने केवल उन खानों पर ही विचार किया था जिनसे कि आद्रता रहित ऐसा कोयला प्राप्त किया जा सके जिसमें राख की मात्रा २०% से अधिक न हो, जो ४ फीट या अधिक मोटी परतों में भूतल से १००० फीट तक की गहराई तक प्राप्त हो सकें। इन्हीं के अनुसार उस उत्कृष्ट आद्रताहीन कोयले की अनुमानित मात्रा जिसमें राख का औसत १६% है और जो भूतल से २००० फीट तक की गहराई तक प्राप्त हो सकता है लगभग ५०००० लाख टन है। उपरोक्त भंडार केवल गोन्डवाना क्षेत्र में पाए जाते हैं। उपरोक्त भंडार में से ४६००० लाख टन केवल बिहार और पश्चिमी बंगाल क्षेत्रों में पाए जाते हैं। उपरोक्त ५०००० लाख टन उत्तम भंडार में से केवल एक तिहाई भाग ही इस योग्य है जिसका कि प्रयोग धातु शोधक कोक के रूप में हो सकता है। ऊपरी आसाम तथा गारो खासी पहाड़ियों के कोयला भंडारों का अनुमान २०००० लाख टन है।

सन् १९४७ ई० में राष्ट्रीय योजना आयोग ने भारत के विभिन्न भंडारों में निहित कोयले की मात्रा निम्न प्रकार से दी है—

स्थल	भंडार–दस लाख टनों में
दारजिलिंग तथा पूर्वी हिमालय	१००
गिरिडी तथा देवगढ़	२५०
रानीगंज तथा झरिया	२५६५०
सोन घाटी	१०,०००
छत्तीस गढ़ तथा महानदी	५,०००
सतपुड़ा क्षेत्र	१,०००
वर्धा घाटी	१८,०००
योग	६०,०००

धातु शोधन के उपयुक्त कोयले के परिरक्षण के हेतु नियुक्त समिति ने सन् १९४९ ई० में कोयला क्षेत्रों का पर्यवेक्षण किया और विभिन्न भन्डारों से प्राप्त होने योग्य धातु शोधक कोयले के भंडारों की मात्रा का अनुमान लगाया जिसका कि वर्गीकृत विवरण नीचे दिया गया है :—

वर्ग	भंडार दस लाख टनों में	विशुद्ध दस लाख टनों में
उत्कृष्ट क	५०० कोक कोयला, १५%राख या कम	५००
उत्कृष्ट ख	७५० कोक कोयला, १५-१७%राख या कम	६००
विभाग १ तथा २	१५०० कोक कोयला, १७%से अधिक राख किन्तु शुद्ध होने पर $\frac{2}{3}$ तक रह जाता है	१०००
योग	२७५०	२१००

संसार के प्रमुख कोयला उत्पादक देशों की तुलना में भारत के भंडार नगण्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के ३००० फीट की गहराई तक के कोयला भंडार ३२१४०००० लाख टन हैं। रूस के भंडार १६५००००० लाख टन तथा जर्मनी के ३५०००० लाख टन हैं।

वर्गीकरणः—भारतीय कोयला क्षेत्र आयु के अनुसार दो भागों में बाँटे जाते हैं। (१) गोण्डवाना क्षेत्र जिनसे कि भारत के पूर्ण उत्पादन का लगभग ९८% कोयला प्राप्त होता है। ये क्षेत्र पश्चिमी बङ्गाल, विहार, मध्य-प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा बम्बई में फैले हुए हैं। (२) तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Fields) यह पूर्ण उत्पादन का २% कोयला उत्पादित करते हैं और आसाम, राजस्थान, तथा पंजाब में फैले हैं।

फाक्स ने काल क्रमानुसार भारतीय कोयला क्षेत्रों का वर्गीकरण नीचे लिखे ढंग से किया है:—

कालक्रमानुसार खननयोग्य कोयले के स्तर

भौमिकी युग	युगारम्भ से कालावधि लाख वर्षों में	भारत के कोयला क्षेत्र	
प्लायोसीन	२५०	करेबा (काश्मीर)	तृतीययुग के कोयला क्षेत्र
मायोसीन १	३००	नामचिक, माकूम, जयपुर, नजीरा और नागा पर्वत (आसाम) दक्षिणी अर्काट (मद्रास) का लिगनाइट	
उच्च इयोसीन	४५०	चेरापूँजी, माओलोंग (आसाम)	
निम्न इयोसीन	६००	पलना (राजस्थान)कालाकोट (काश्मीर)	
क्रेटेशश२	१३५०	दारगिरी, सेंग्रे नगिरी इत्यादि गारो पर्वत आसाम में खासी जयन्तिया पहाड़ियों के कुछ भाग	क्रेटेशश क्षेत्र
उच्च जुरेसिक	१६२०	कच्छ, लमेता घाट (नर्मदाघाटी)	जुरेसिक क्षेत्र
निम्न जुरेसिक	१६२०	कालाबाग पंजाब	
उच्च परमियन	२४००	रानीगंज, झरिया, बोकारो (दामोदरघाटी) दारजिलिंग	गोण्डवाना क्षेत्र
निम्न परमियन	२७००	प्रायद्वीपीय भारत के सभी निम्न गोण्डवाना क्षेत्र, दामोदरघाटी, महानदी, ब्रह्माणी घाटी, प्रणहीता, गोदावरीघाटी, पेंच घाटी, वर्धाघाटी, सोनघाटी इत्यादि को सम्मिलित करके।	

१—उत्तरी आसाम के मायोसीन कोयला क्षेत्र अब उच्च इयोसीन युग के माने जाते हैं।

२—आसाम के क्रेटेशश कोयला क्षेत्र अब निम्न इयोसीन युग के माने जाते हैं।

गुण धर्म और उपयोगिता के अनुसार कोयला मंडल ने रानीगंज वर्ग के कोयले का विभाजन निम्नलिखित श्रेणियों में किया है।

कोयला वर्गीकरण मंडल द्वारा श्रेणी विभाजन

वर्ग	निम्न तापक्रम पर वाष्पीभूत (Volatile) कोयला (विशेषतः बाराकार प्रकार की खाने)	उच्च तापक्रम पर वाष्पीभूत कोयला विशेषतः रानीगंज प्रकार की खाने
उत्कृष्ट वर्ग	१३% तक राख, ७००० कैलोरी प्रति ग्राम से अधिक	११% तक राख, ६८०० कैलोरी प्रति ग्राम से अधिक ६% आद्रता
वर्ग १	१५% तक राख, ६५८० कैलोरी प्रति ग्राम से अधिक	१३% तक राख ६३०० कैलोरी प्रति ग्राम से अधिक, ६% आद्रता
वर्ग २	१८% तक राख, ६००० कैलोरी प्रति ग्राम से अधिक	१६% तक राख, ६००० कैलोरीप्रति ग्राम से अधिक, १०% आद्रता
वर्ग ३	उपरोक्त से निम्न प्रकार के सभी कोयले	

कोयला उद्योग का विकास

हमारे देश में कोयला ही मुख्य ईंधन है, पर हमारी आवश्यकता भर अच्छी किस्म का कोयला देश में नहीं मिलता। कोयले से रासायनिक चीजें जैसे रंग, औषधि, कीटाणुनाशक विस्फोटक पदार्थ और उर्वरक आदि भी बनाए जाते हैं। अतः कोयला उद्योग के विकास के लिए १६४० में ईंधन अनुसन्धान समिति की स्थापना की गई। समिति ने इस काम के लिए एक अनुसन्धान-शाला खोलने की सिफारिश की। १६४६ में धनबाद की कोयला खानों से ६ मील दूर दिग्वाडीह नामक स्थान पर ईंधन अनुसन्धानशाला की नींव रखी गयी और अप्रैल, १६५० में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इसका विधिपूर्वक उद्घाटन किया।

पिछले ८ साल के भीतर अनुसंधानशाला ने बड़े महत्व के काम किये हैं। अनुसंधान शाला के सर्वे विभाग ने पहले पहल देशी कोयले की वैज्ञानिक जाँच की, जिस से पता चला कि देश में किस किस्म का कोयला कहां पाया जाता है। इस जांच से कोयला खानों की उन्नति में बहुत सहायता मिलेगी। हमें अपना कोयले का उत्पादन बढ़ा कर १६७५तक ३० करोड़ टन प्रति वर्ष पहुंचाना है। यह १६४६ के उत्पादन का १० गुना है।

कोयला सर्वे बिभाग की ६ शाखाएँ हैं, जो प्रमुख कोयला क्षेत्रों में स्थित है। ये शाखाएँ अपने क्षेत्र के कोयले की पूरी जानकारी देती हैं। प्रधान कार्यालय में इन सब को एकत्र किया जाता है। इससे पता चला है कि दुर्भाग्य से हमारी खानों में अच्छी किस्म का कोयला नहीं है। इसलिए इस कोयले की सफाई करके इसे अच्छी किस्म का कोयला बनाना जरूरी है। अनुसंधान शाला में इस पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अनुसंधानशाला तथा जमशेदपुर के कोक अनुसंधान विभाग ने साधारण कोयले से लोहा और इस्पात कारखानों में काम आने वाला अच्छी किस्म का कोयला तैयार करने की विशेष विधि निकाली है। धनबादशाला में कोयले की बनावट के बारे में मूल अनुसंधान किये जा रहे हैं, जिससे यह पता चले कि अच्छे (कोकिंग) और साधारण (गैर कोकिंग) कोयले की बनावट में क्या अन्तर है।

साधारण कोयले को कार्बनित करके धातु-शोधन में काम आने लायक बनाने का भी प्रयास किया जा रहा है।

समुद्रों में विद्यमान कोलाहल

[मेरी पोलेण्ड फिश]

समुद्री गोताखोरों का मौन संसार भी उस व्यक्ति के लिये कोलाहलपूर्ण सिद्ध हो सकता है, जो सुनने के यन्त्रों से उचित रूप में लैस हो। समुद्र की गहराइयों में प्रायः सीटियों और खर्राटों जैसी ध्वनियां, जंजीरों के टूटने जैसा शोर, खटखट करने की हल्की और तेज आवाज, कील ठोंकने जैसी ठकठक तथा तेल जलने के समय की चिड़चिड़ाहट जैसे शब्द सुनाई देते हैं।

ये आवाजें सब से पहले द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ के दिनों में अमेरिकी नौ-सेना के उन सैनिकों ने सुनीं, जो पनडुब्बियों की तलाश करने वाले 'सोनार' यन्त्रों का उपयोग कर रहे थे। ये लोग पनडुब्बियों की तलाश की नई विधि के उपयोग की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे जिससे जहाज को चलाने वाले पंखों की गड़गड़ाहट के शब्द को गिन कर दिखाई न देने वाले जहाज को पहचाना तथा उसका पता लगाया जा सकता है। इन लोगों के प्रशिक्षण में गूंज से निर्मित उस ध्वनि को पहचानने पर बल दिया जाता था, जो समुद्र के तट या अन्य किसी निकट वस्तु से मध्यम ध्वनियों को जान-बूझ कर टकरा कर पैदा किया जाता था। शब्द पैदा करने तथा उसकी गूंज वापस आने के बीच के समय को नोट कर वे लोग समुद्र की गहराई या दूर खड़े किसी जहाज की दूरी का अनुमान लगा सकते थे।

इस अभ्यास के समय इन लोगों को जहाज और मनुष्य निर्मित ध्वनियों (जिन की व्याख्या करने की विधि उन्हें सिखाई गई थी), के अतिरिक्त आश्चर्य और भय के साथ कुछ ऐसी भूतों जैसी आवाजें भी सुनाई पड़ीं, जिन की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती थी। १९४१ के बड़े दिन के अवसर पर रजिस्टर में कैनेरी चिड़िया के बोलने जैसी ध्वनि का उल्लेख किया गयाहै। बताया गया है कि यह आवाज किसी नाव के अगले हिस्से में बंधी ठीक ढंग से काम न देने वाली तथा रुक रुक कर फट-फट करने वाली मोटर की आवाज से मिलती है अथवा इसकी तुलना किसी हास्यपूर्ण नाटक के विदूषक की उस चप-चप की आवाज से की जा सकती है, जो नायिका को दूर से चुम्बन प्रदान करने पर होती है। अपनी सीमा में किसी जहाज के न रहने पर भी 'सोनार' यन्त्र पर नियुक्त इन सैनिकों ने 'पानी के अन्दर महान् डकारों', 'एक फेफड़े वाले इंजन की ध्वनि' तथा 'लोहे को पीट रहे लुहारों के दल की आवाजें सुनी। पनडुब्बियों की चौकसी सम्बन्धी युद्धकालीन रिपोर्टों में ये रहस्यपूर्ण कहानियां कुछ काल के लिए छिपी पड़ी रहीं।

तथापि नौसेना के संकट की खोज करने वाले व्यक्ति शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि ये रहस्यपूर्ण भूतों जैसी आवाजें निश्चय ही समुद्री जीवों की हलचलों का परिणाम हैं। लेकिन शोर मचाने वाले वे जीव कौन से हैं तथा इनका सामना फिर कब और कहां हो सकता है, यह प्रश्न उपस्थित था। इस बारे में जानकारी उस समय अत्यधिक स्वल्प थी।

इस प्राकृतिक रहस्य के समाधान की दृष्टि से आधारभूत अनुसन्धान का कार्य एक दीर्घकालिक योजना के अन्तर्गत किया गया। १९४६ से समुद्र में रहने वाले जीवों की आवाज बड़े परिमाण में सुनी जा रही है। रोड आइलैन्ड विश्वविद्यालय में मुख्य कार्यालय स्थापित कर यह कार्य अमेरिकी नौ-अनुसन्धान की देखरेख में हो रहा है।

विश्वविद्यालय की नेरागैनसेट स्थित समुद्रीय अनुसन्धानशाला में आवाज करने वाले प्रत्येक समुद्री जीव की आवाजें चुम्बकीय फीतों या रिकार्डों के रूप में जमा की गई हैं। ये रिकार्ड अद्भुत संग्रह हैं। इस संग्रह से व्यापारिक या शौकिया रूप में मछली पकड़ने वाले लोगों

को सहायक श्रव्य यन्त्रों के विकास की दृष्टि से सामग्री उपलब्ध होती है। साथ ही इससे सैनिक पोशाकों और यन्त्रों के डिजाइन तैयार करने में भी सहायता मिलती है। इस से उन आवश्यक तथ्यों की जानकारी भी मिलती है, जिसके आधार पर जलगत परिस्थितियों के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। साथ ही इससे 'सौनार' यन्त्र पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण में भी सहायता प्राप्त होती है।

अब तक समुद्री केंकड़े, सामान्य केंकड़े तथा घोंघों जैसे छोटे-छोटे समुद्री जीवों, भारी-भरकम सूँस, समुद्री शेर, समुद्री गाय और ह्वेल मछली जैसे जीवों, न्यू इंग्लैन्ड के तट पर मिलने वाली ८० विभिन्न किस्मों की मछलियों, बरमूदा और बहामा के आसपास मिलने वाली १२५ अन्य किस्मों की मछलियों तथा उष्ण-प्रदेशीय ८० विभिन्न किस्म की मछलियों की आवाज रिकार्ड की जा चुकी है।

समुद्री जीवों की बोलने की क्षमता की जाँच करने के लिए, संभव होने पर, इन जीवों को अनेक प्रकार के प्रलोभन भी दिये जाते हैं। किसी नाटक में कार्य करने वाले अभिनेता के सामान, उनकी विविध परिस्थितियों में जांच की गई है। अकेले में उनकी आवाज सुनी गई है। इसके बाद मित्र या शत्रुओं के मिलने पर भी उन की आवाज सुनी गई है। उन में भोजन के बारे में प्रतियोगिताएं भी कराई गई हैं तथा उन्हें अनेक प्रकार से परेशान भी किया गया है। जब भी उन्होंने किसी प्रकार का शब्द किया, वह तत्काल हाइड्रोफोन (जल में इस्तेमाल होने वाला ध्वनि-विस्तारक यन्त्र) की सहायता से रिकार्ड कर लिया गया। अनेक अवसरों पर रंगीन फिल्में भी तैयार की गई।

भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगशाला मे इन रिकार्डों का अध्ययन कर प्रत्येक जीव की अपनी विशिष्ट आवाज निश्चित कर ली गई है। प्रत्येक मनुष्य की आवाज में कम्पन का पृथक् स्वरूप होता है, इसी लिए टेलिफोन पर हम परिचित आवाज को पहचान सकते हैं। यन्त्रों की सहायता से इस आवाज का विश्लेषण भी किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक समुद्री जीव की आवाज में अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं।

ये आवाजें किस प्रकार पैदा होती हैं, इस बात की जानकारी व्यक्तिगत अध्ययन तथा खोजबीन के आधार पर प्राप्त की गई है। उदाहरण के रूप में समुद्री केंकड़ा अपने पन्जों की एक खास व्यवस्था के फलस्वरूप बड़ी तेजी से कड़ाके की आवाज पैदा करता है। किसी बोतल में लगे कड़े कार्क के खुलने जैसी यह आवाज होती है। सूँस साँस लेने के छिद्र से सांस बाहर निकालते हुए "सीटी" जैसा शब्द पैदा करती है। अनेक मछलियों में गैस से भरी हवा की थैली रहती है। यह एक ऐसा भीतरी ढोल होता है, जो अपनी तनी दीवारों की माँसपेशियों के सिकोड़ने पर बज उठता है। इसे वायलिन के समान भी बजाया जा सकता है। यह कार्य इस थैली की पीठ पर मजबूती से खिंची हुई, स्नायु से निर्मित, तारों को इधर-उधर हटा कर सम्पन्न किया जाता है। कभी-कभी मछली के पर भी इस ढोलनुमा थैली की बाहरी "खिड़की" को ढोल बजाने वाली लकड़ी की तरह पीटते हैं। प्रायः मछली के गले के दांतदार टुकड़े जोरों से पिस जाते हैं। ये टुकड़े क्योंकि इस ढोलनुमा थैली के निकट होते हैं, इस लिए पिसने की इस आवाज का विस्तार हो जाता है। जंग लगे हुये कब्जों जैसा किंकियाने तथा कराहने का शब्द उस समय पैदा होता है, जब सामने के नालीदार दांतों को जान-बूझ कर आपस में रगड़ा जा रहा हो। "स्कलपिन" नामक समुद्री मछली, जो न्यू इंगलैन्ड के समुद्र में शीत ऋतु में शोर मचाने वाले समुद्री जीवों में अग्रणी है, तथा साइबेरिया, एल्यूशिया तथा अन्य, अत्यधिक उत्तरी समुद्रों में मिलने वाली मछलियां ऐसी आवाज पैदा करती हैं, जो बिजली-उत्पादक यन्त्र की आवाज से मिलती है। यह आवाज उस समय पैदा होती है, जब मछली के सिर के पिछले भाग की मजबूत स्नायुएँ उत्तेजित होकर सिकुड़ जाती हैं।

समुद्री जीव ये आवाजें क्यों निकालते हैं? प्रकट रूप में इसका कारण वही है, जो भूमि के पशुओं के बोलने का कारण है। ये आवाजें बातें करने, लड़ाई

झगड़ा करने बचाव करने, चेतावनी देने, जानकारी करने और यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए निकाली जाती हैं। कुछ मछलियाँ सन्तान उत्पत्ति के मौसम में उसी प्रकार साथी को बुलाती हैं, जिस प्रकार पक्षी इस काल में अपने साथी को पुकारते हैं। प्रतियोगिता छिड़ जाने पर, जिसकी आवाज तेज हो वह प्रायः जीत जाता है।

समुद्री केकड़े बड़ी तेज ध्वनि पैदा करते हैं। कभी-कभी वह आवाज बरमें की आवाज से मिलती-जुलती होती है। यह आवाज उस समय की जाती है, जब वे नये स्थान की खोज कर रहे हों। आपस में बातचीत करते हुये ये जोरों की सीटियाँ बजाते हैं। विगनी की लर्नर समुद्रीय अनुसन्धानशाला में अनुसन्धानकर्ताओं ने एक समुद्री केकड़े की १०॥ मिनट में ८०२ सीटियाँ सुनीं। इस मादा केकड़े का बच्चा खो गया था। जब उसे इस बात का पता लगा, तो वह इस तरह चीख उठी।

प्वेर्टोरिको के तट के पास वैज्ञानिकों के एक दल का एक बड़ी दुर्घटना से सामना होते होते बचा। ये मछलियों की आवाज रिकार्ड कर रहे थे कि सहसा ८०० पौण्ड की ३ समुद्री गौएँ तैरती हुई चली आई। लटकते हुए हाईड्रोफोन से २५ फुट की दूरी पर इन की नेता सहसा मुड़ गई तथा उसने एक कर्कश स्वर पैदा किया, मानो अपने साथियों को चेतावनी दे रही हो अथवा दखलन्दाजी करने वाले वैज्ञानिकों को गालियां सुना रही हो।

क्या आप जानते हैं।
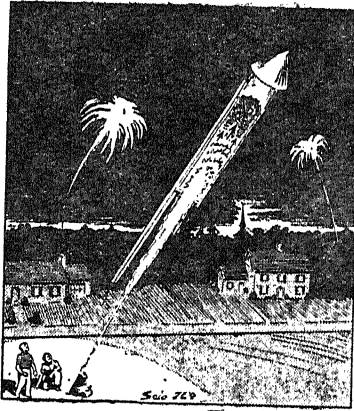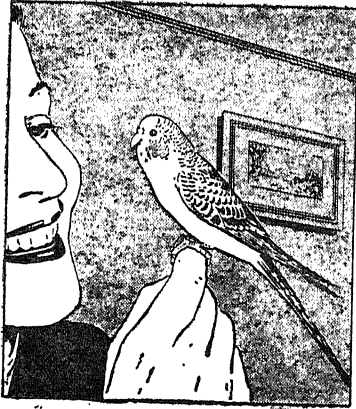
सबसे अधिक बोलने वाला व शब्दों को याद रखने वाला पक्षी 'सैन्डी पाल' है। यह भूरी चोंच वाला पक्षी इंग्लैंड के मिडिलसैक्स के स्टेन्स नामक स्थान की एक महिला श्रीमती आइरन पौल का है। यह मादा पक्षी है जिसे उन्होंने १९५२ में पकड़ा था। यह १२ प्रकार की बोलियां बोल लेता है और इसकी स्मरण शक्ति ३०० शब्दों से अधिक है।

अमेरिका के भौतिक शास्त्रीय स्वर्गीय डा० रौबर्ट एच० गौडर्क ने, जिन्हें वैज्ञानिक आधुनिक राकेटों का पिता कहते हैं, उस प्रसिद्ध विश्वास के प्रतिकूल १९२० में यह सिद्ध कर दिया था कि राकेट जेट द्वारा खींचा न जाकर एक गैस के जलाने से उड़ेगा जो राकेट के मुख भाग से नीचे पीछे की ओर तेजी से छोड़ी जाने पर उसे धक्का देकर आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करेगी।

वैज्ञानिकों के अनुसार २४ घन्टे में एक नियमित भार के औसत व्यक्ति के शरीर में इतनी क्रियायें होती हैं—वह २३,०४० बार सांस लेगा; १·४३ पिंट (तरल पदार्थ का एक नाप जो आधी बोतल के बराबर होता है) पसीना निकालेगा, ५,००० शब्द बोलेगा और इस प्रकार वह अपने मस्तिष्क के सात करोड़ कोष्ठकों का प्रयोग करेगा। उसके हृदय का कंपन १०३,६८० बार होगा और बाल ०·०१२ इंच बढ़ेंगे।

विज्ञान से मनुष्य को लाभ—१

जीवाणु और मनुष्य

डा०—सेलमैन ए० वैक्समैन

प्राध्यापक, जीवाणुशास्त्र, रजर्स विश्वविद्यालय, अमेरिका

मनुष्य ने तो जीवाणुओं को बहुत बाद में पहचाना हैं पर वे बेचारे तो आदिकाल से हमारी सेवा करते आ रहे हैं। जब हमारे पूर्वज अपनी भेड़ बकरियों, गाय-भैंसों आदि के साथ कबीले बनाकर घास के मैदानों की तलाश में घूमते फिरते थे, तब वे यह नहीं जानते थे कि उनके दूध को कौन सड़ने से बचाता है और कौन उसे फाड़ता या जमा देता है।

इसके बाद जब उनकी सन्तति गांव और नगर बसा कर रहने लगी और खेती करके अन्न खाने लगी, तो ये जीवाणु खमीर आदि में मिलकर रोटी बनाने में अदृश्य रूप से उसकी सहायता करते रहे। एक और प्रकार के जीवाणुओं ने अंगूर और अनाज से शराब खींचने में मनुष्य का हाथ बटाया। इससे भी बड़ा उनका काम था खेतों में घासफूस और पत्तियों को गला सड़ा कर पौधों को नत्रजन और दूध पोषक पदार्थ देने वाले तत्वों का रूप देना।

आधुनिक विज्ञान की प्रगति के साथ पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में जीवाणु प्रकाश में आए और विज्ञान की एक विशेष शाखा विकसित हुई। लुई पास्त्योर, फर्डीनैंड कोन, राबर्ट कोच, पाल अरलिच और बहुत से अन्य वैज्ञानिकों ने तो यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया कि जीवाणु मनुष्य जीवन के लिए परम उपयोगी हैं। किन्तु इन लोगों ने रोगकारी जीवाणुओं या कीटाणुओं का भी पता लगाया। इस प्रकार दो प्रकार के जीवाणु पाये गये, (१) मनुष्यों, पशु-पक्षियों और वनस्पति के रोग फैलाने वाले हैं। इन्हें नष्ट ही करना चाहिये। (२) वे जो खमीर आदि उठाने और अनेकों रासायनिक क्रियाओं में सहायक होते हैं। इनका संवर्धन होना चाहिये।

पुरानी प्रथायें समाप्त

पहले लोग यह विश्वास करते थे कि बीमारियां किसी देवी-देवता के कोप से फैलती हैं। धीरे-धीरे विज्ञान के प्रसार से लोग रोगों के सही कारणों को समझने लगे और सफाई, दवाओं और टीकों आदि के द्वारा रोगों की रोकथाम शुरू हुई। पहले निमोनिया, चेचक, डिप्थीरिया आदि रोगों के लिए कुनीन आदि काष्ठौषधियाँ और टीके (सीरम) आदि का प्रयोग किया गया और अब संखिये तथा पारे के रसायनों का भी प्रयोग होने लगा है। "सल्फा" औषधियों के आविष्कार से चिकित्सा-शास्त्र में विशेष प्रगति हुई है। अनेक बीमारियों में शल्फा औषधियां रामबाण होती हैं। साथ ही उपकारी जीवाणुओं से लाभ उठाने का भी काफी प्रयत्न किया गया है। अच्छी नस्ल के जीवाणुओं का चुनाव, नस्ल सुधार, उनकी वंशवृद्धि और पौधों और मिट्टी में उनको छोड़ने की दिशा में काफी काम हुआ है। जीवाणुओं से औद्योगिक कार्यों के लिए कई प्रकार के मद्यसार (अल-कोहल), आरगेनिक एसिड, एसीटोन जैसे रासायनिक बनाये जाते हैं। कई विटामिनों और एनजाइमों के बनाने में भी जीवाणु काम आते हैं। भूग की खेती में शिंब या लेग्यूम से बहुत लाभ होता है। शराब, पनीर तथा दूसरी खाने-पीने की चीजों में जीवाणुओं का असाधारण उपयोग होता है। खाने-पीने की चीजों को सुरक्षित रखने, मलमूत्र को ठिकाने लगाने, कूड़े करकट और गोबर की खाद बनाने और फफूंद या भुकड़ी पैदा करने में जीवाणुओं से बहुत मदद मिलती हैं।

मनुष्य के पालतू

अब धीरे-धीरे जीवाणु मनुष्य के वश में आने लगे

हैं और इस प्रकार से वे मनुष्य के पालतू प्राणी बन गये हैं। किन्तु जीवाणुओं के ये सब उपयोग प्रतिजीव औषधियों (एन्टीशयोटिक्स) के आविष्कार के सामने फीके पड़ गये हैं। इन प्रतिजीवों में लाभकारी जीवाणुओं के बनाए हुए रासायनिक तत्व होते हैं, जो रोगाणुओं को खा जाते हैं। इस प्रकार हैजा, प्लेग आदि महामारियां जो महायुद्धों से भी कहीं अधिक संहार करती थीं, अब पूरी तरह वश में आ चुकी है। बच्चों की अनेकों बीमारियां आज मिटायी जा चुकी हैं। पेट और आंतों की भी कई बीमारियां आज उतनी व्यापक नहीं रहीं, जितनी पहले थीं। बीमारियों के शमन से लोगों की आयु बढ़ गयी है। मनुष्य जाति का चिर शत्रु राज रोग, क्षय भी अब अजेय नहीं रहा है।

व्यावहारिक उपयोग

प्रति जीवों (एंटीबायोटिक्स) की खोज १६३६ में ड्यूबोस ने की। इसके पहले यह तो ज्ञात था कि फफूंद आदि में कुछ ऐसे जीवाणु होते हैं, जो हानिकारक रोगाणुओं को नष्ट कर देते हैं। प्रयोगशालाओं में भी इस तरह के प्रयोग किये गये, किन्तु इस ज्ञान का व्यापक और व्यावहारिक उपयोग नहीं किया गया। साल भर बाद १६४० से पैनिसिलिन व इसी श्रृंखला के कुछ और पदार्थ और मेरी प्रयोगशाला में एक्टिनोमाइसिन तथा उसके बाद स्ट्रेप्टोथ्राइसिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन बनायी गयीं और हमारे हाथ में महामारियों से लड़ने का एक अमोघ अस्त्र आ गया।

जिन जीवाणुओं में प्रतिजीव पदार्थ उत्पन्न करने की क्षमता है। उनमें 'एक्टीनोमिसिटीज' का प्रमुख स्थान है। आजकल उड़ कर लगने वाली बीमारियों के इलाज के लिए जो ३० से भी अधिक पदार्थ इस्तेमाल होते हैं, उनमें से केवल २-३ शाकाणुओं (बैक्टीरिया) से, २-३ फफूंद से और बाकी लगभग २५ 'एक्टीनोमिसिटीज' से ही बनते हैं। प्रतिजीव औषधियों में सबसे अधिक उपयोगी पेनसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन है। इनके अलावा 'क्लोरेम्फेनिकोल' और 'टेट्रासाइक्लिन्स' भी प्रमुख हैं। दुनिया भर में बनने वाले प्रतिजीव पदार्थों में से तीन-चौथाई यही चार पदार्थ होते हैं। इन प्रतिजीवों से संसार भर की उड़कर लगने वाली ६० प्रतिशत बीमारियां रोकी जा सकती हैं। अधिकांश रोगाणुओं पर पेनसिलिन और और स्ट्रेप्टोमाइसन असर करते हैं। जिन पर ये काम नहीं करते, उन्हीं के लिये बाकी कम प्रचलित प्रतिजीव पदार्थ काम आते हैं। फफूंद और छोटे विषाणुओं पर उपर्युक्त पदार्थ काम नहीं करते। कुछ प्रतिजीव पदार्थ विषाणुओं और कैंसर की चिकित्सा में काम आते हैं। इनमें एक्टिनोमाइसिन और सारकोसिन आदि प्रमुख हैं, पर ये अचूक दवायें नहीं हैं। आशा है, जल्दी ही विषाणुओं और कैंसर को कारगर औषधि भी खोज ली आएगी।

चिकित्सा के अलावा प्रतिजीव पदार्थों का और भी उपयोग है। ये मुर्गियों, बत्तखों, सूअरों आदि घास न खाने वाले पशु-पक्षियों को खिलाए जा सकते हैं और पशुओं के बहुत से रोगों में भी काम आते हैं। खाने की कुछ चीजों, कृत्रिम गर्भाधान के लिए सांड के वीर्य और विषाणुनाशक पदार्थों को देर तक रखने में भी प्रतिजीव पदार्थों का उपयोग होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि जीवाणु अगणित संहारक रोगों के विरोध से लेकर चीजों को सुरक्षित रखने जैसे न जाने कितने कामों में उपयोगी होते हैं। (आकाशवाणी के सौजन्य से)

—:o:—

प्रकृति जब व्यतिरेक करती !

डा० सत्यनारायण प्रसाद

जब प्रकृति व्यतिरेक करती है तो अनियमित घटनायें घटती हैं। मानव-शरीर भी जब प्रकृति के व्यतिरेक का शिकार हो जाता है तब उसमें आश्चर्यजनक उथल-पुथल हो जाते हैं। ऐसा प्रायः उस समय होता है जब शरीर गर्भ में पिंड अवस्था में होता है। ऐसी अवस्था में प्रकृति का एक गलत कदम जुड़वा बच्चे बना सकता है या उसे विकृत आकार प्रदान कर सकता है। परन्तु ऐसी अनियमित घटनायें प्रसव के पश्चात् बढ़ते हुए शरीर में भी घट सकती हैं। इस लेख में इन्हीं का उल्लेख है।

उदासर्ग

शरीर में कुछ बिना नली वाली ग्रंथियां पाई जाती हैं, जो भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थित रहती हैं। इनमें कुछ विशेष रस पैदा होते हैं जो सीधे रक्त में मिल कर अंग अंग में जाते हैं। इसीलिए इन रसों को लोग 'अदृश्य उदासर्ग' कहते हैं। शरीर के विकास तथा व्यक्तित्व के ऊपर की जिम्मेदारी इन्हीं अंगों पर होती है। इनका शरीर के कुछ अँगों पर उत्तेजक और दूसरों पर निरोधक प्रभाव पढ़ता है। ये शरीर-यंत्र को सामान्य स्थिति में रखने के लिए विशेष उपकारी होते हैं।

जीवों की आवश्यक क्रियाओं अर्थात् वृद्धि, परिमाण, यौवन, वृद्धावस्था तथा अपक्षय आदि पर इन ग्रंथियों के रसों की क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं और निष्क्रियता का निरन्तर प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की ऊँचाई तथा निचाई, दृढ़ता अथवा कृशता, स्वर की तीव्रता या मन्दता और केशहीनता आदि के विशेष कारण ये उदासर्ग ही हैं। मनुष्य के विभिन्न स्वभावों तथा भावनाओं के नियमन और स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व के नियंत्रण के लिए भी इनका अधिक महत्व है।

गलग्रंथि

मनुष्य के गले में न्यासर्ग (हारमोन) पैदा करने वाली एक ऐसी ग्रंथि है जिसे गलग्रंथि (थायरायड) कहते हैं। साधारणतः इसके रस का प्रधान काम है विश्राम के समय प्राणी की शारीरिक क्रियाओं को निरन्तर संचालित रखना। थायरायड के रसों की कमी से बच्चे पूरे नहीं बढ़ते। उनका व्यक्तित्व कभी कभी पूरा नहीं होता। वे प्रायः चिड़चिड़े और रोने वाले होते हैं। बुद्धि मंद होती है, शरीर छोटा और भद्दापन लिए हुए मोटा होता है। सचमुच जन्तुओं से अधिक व्यक्तित्व ऐसे बच्चों को नहीं मिलता। थायरायड के रसों की कमी से मिक्सोडीमा का रोग प्रौढ़ों को हो जाता है। उससे व्यक्तित्व पर क्या आघात होता है वह साथ में दिए गए चित्र से सिद्ध है।

जिस प्रकार थायरायड के रसों की कमी हानिकारक है उसी प्रकार उनके रसों का अत्याधिक्य भी। इससे शरीर दुबला होता है, वजन कम होता है, चमड़ा पतला और नर्म होता है, भूख अधिक सताती है, मन चंचल होता है, स्नायविक दुर्बलता इन्हें बेचैन कर देती है और यह प्रकोपी के शिकार हो जाते हैं। रस का अत्याधिक्य एक शांत और सुलझे हुए पुरुष को मानसिक रोगी बना देता है। इस प्रकार थायरायड के रस की कमी अथवा अत्याधिक्य बात की बात में अनियमित घटनाओं का कारण बन सकता है।

पोषग्रन्थि

पोष-ग्रन्थि (पिट्युइटरी बाडी) एक प्रमुख ग्रन्थि है जो अपने रसों के प्रभाव के लिये प्रसिद्ध तो है ही परन्तु यह दूसरे अन्तरासर्गी अंगों पर भी अपना अधिपत्य रखती है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के स्वभाव तथा व्यक्तित्व

दोनों से है। वास्तव में यह एक अंग है जिसे मानव आत्मा के वास का स्थान कहा जा सकता हैं। इसके प्रभाव भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं जिनमें से कुछ तो अभी तक रहस्यमय एवं अनिश्चित है। इस ग्रंथि की अतिक्रिया शीलता से शरीर बहुत बड़ा हो जाता है। ऐसे मनुष्यों में प्रजनन अङ्ग भी शीघ्र ही प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर लेते हैं। मुटापा भी इसी से होता है। इसी प्रकार इसकी क्रिया हीनता के कारण मनुष्य बौने होते हैं और ऐसे भी होते हैं जिनमें प्रजनन अंग क्रियाहीन हो जाते हैं। साथ में दिए गए चित्र में एक साढ़े तेरह वर्ष का बालक दिखलाया गया है।

पोष-ग्रंथि की दया से यह कितना लम्बा हो गया है इसका अनुमान उसके पांच फुट साढ़े छः इंच लम्बे पिता से लगाया जा सकता है जो उसके बगल में खड़ा है। उसका नववर्षीय भाई भी चित्र में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मस्तिष्क के एक छोटे से भाग में स्थित पोष-ग्रंथि अपनी अतिकार्यशीलता से अनायास ही राक्षसी शरीर उत्पन्न कर सकती है। बौनापन पोष-ग्रंथि की क्रियाहीनता का फल है।

'थायमस' नामक ग्रंथि के रसों का रहस्य अथवा फल अभी तक अनिश्चित है। ज्यों-ज्यों मनुष्य युवावस्था को पहुंचता है यह लुप्त होती जाती है इसीलिए इसे योवनलुप्तग्रंथि कहते हैं। ऐसा विचार किया जाता है कि इसका सम्बन्ध शरीर की परिपक्वता से है। कुछ लोगों का मत है कि यदि यह शरीर में बराबर रहे तो मनुष्यों की प्रजनन शक्ति जाग्रत न हो। ऐसा विचार इसीलिए किया गया है कि जिनमें यह शक्ति देर में पैदा होती है उनमें यह ग्रंथि भी देर तक रहती है। कुछ लोगों का मत है कि ओस्कर वाइल्ड प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक, का बुद्धि-चापल्य तथा मौजी जीवन इसी ग्रंथि की अति-कार्यता का फल है।

गुर्दा (वृक्क) के ऊपर भी एक ऐसी ग्रंथि पाई जाती है जिसे उपवृक्कय ग्रंथि (एड्रीनल) कहते हैं। इससे कई प्रकार के रस उत्पन्न होते है उनमें प्रमुख है 'एड्रीनलीन' यह बड़े काम का रसायन है। यह विशेष आपत्तियों के समय हमें उनका सामना करने की शक्ति देती है। मान लीजिये कि अचानक किसी के सामने शेर आ जाय तो उस समय एड्रीनलीन उत्पन्न होती है और रक्त में मिल कर उसके शरीर को सामना करने योग्य बनाती है। इससे रक्त का बहाव मस्तिष्क की ओर अधिक हो जाता है, हृदय की गति बढ़ जाती है और रक्त की शर्करा का प्रमाण बढ़ जाता है। इससे मनुष्य के शरीर में फुर्ती आ जाती है और वह अधिक योग्यता से काम करने लगता है। चेहरे का चमकना, शरीर पर बालों का अत्यधिक होना, मांश पेशियों का बहुत बढ़ना और कभी कभी रक्त के दबाव में अत्याधिकता होना आदि सब एड्रीनलीन की अति क्रियाशीलता से होते हैं। मनुष्य की बुद्धि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

एड्रीनल बाडी

एड्रीनल बाडी से और भी अन्य प्रकार के रस निकलते हैं जो लैंगिक विकास के लिए आवश्यक है। इसलिए एड्रीनल का बढ़ना या उसमें विशेष रोग होना हानिकारक होता हैं। यदि बचपन में ही किसी बच्चे के एड्रीनल में 'ट्यूमर' हो जाय तो उसके कुछ अनोखे फल देखे गए हैं। स्त्रियों के यदि ऐसे ट्यूमर हो जाय तो उनका शरीर मोटा हो जाता है और उनके डाढ़ी और मूंछ निकल आती है। और अपने हाव भाव में वह पुरुषत्व दर्शाने लगती है। यह चित्र ऐसी स्त्री का है जो छः वर्ष की अवस्था तक ठीक थी। उसके कुछ ही दिनों बाद उसकी आवाज भारी होने लगी, तब उसके होठों पर मूंछ उगने लगी और ६ वर्ष की अवस्था प्राप्त करते करते उसके शरीर पर हर स्थान पर बाल उग आये और डाढ़ी मूंछ पूरी निकल आई, जांच के बाद ट्यूमर का पता चला और ट्यूमर निकलने के बाद ही वह बिलकुल ठीक हो गई।

ऐसे ही एक प्रौढ़ पुरुष का भी उल्लेख मिलता है। यह महाशय एक बच्चे के पिता थे फिर भी ३२ वर्ष की अवस्था में इनके शरीर पर स्त्रीत्व के चिन्ह दिखलाई देने लगे। वजन में कमी हो गई और पुरुषत्व के चिन्ह मिटने लगे। जांच पर बाईं ओर ट्यूमर निकला इसको निकालने के कुछ ही दिनों पश्चात् वह अच्छे होने लगे।

पृथ्वी के नीचे क्या है ?

पृथ्वी अंगूर की भाँति है। जिसके चारों तरफ हरे रंग का वातावरण है, इसके बाद पतले पानी की एक परत और तब अंगूर के पतले छिलके की भाँति पृथ्वी की परत। इस पृथ्वी की परत के बाद चट्टानों की मोटी परतें शुरू हो जाती हैं और धीरे धीरे पृथ्वी के केन्द्र बिन्दु तक पहुँचते पहुँचते ये अत्यन्त ठोस होती जाती हैं और केन्द्र बिन्दु पर पहुँच कर तो ये कच्चे रांगे और लोहे का रूप ग्रहण कर लेती हैं।

इस प्रकार पृथ्वी पत्थर की चट्टानों और धातुओं से मिल कर बनी है। गोकि हम पृथ्वी को अन्दर से नहीं देख सकते कि क्या है फिर उन चीजों का पता लगाने के लिए हमारे पास कुछ साधन हैं। अन्य ग्रहों पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का पता लगाने के बाद हम पृथ्वी के भार का अनुमान कर सकते हैं। ऐसा करने से पता लगता है कि पृथ्वी ऊपनी ऊपरी सतह की चट्टानों से कहीं अधिक भारी है। और इसलिए यह जरूरी है कि पृथ्वी का केन्द्र बिन्दु बहुत भारी हो ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस राँगे और लोहे के केन्द्र बिन्दु का व्यास ४,४०० मील है। यह पृथ्वी की हल्की और भारी सभी चट्टानों का केन्द्र बिन्दु है। इस केन्द्र बिन्दु में राँगा और लोहा है इसका प्रमुख कारण यह है कि आसमान से गिरने वाली बिजली इन्हीं धातुओं की बनी होती है जो पृथ्वी पर गिरने पर सीधी इसी केन्द्र बिन्दु में समा जाती है। सभी ग्रहों में लगभग इतनी ही मात्रा में ये धातु होती है। हम जानते हैं कि यह धातु २,००० मील गहरी पृथ्वी के अन्दर ऊपरी सतह की चट्टानों में बिजली की अपेक्षा अधिक नहीं होती। इसलिए हम मान लेते हैं कि ये धातुएँ अवश्य ही पृथ्वी के केन्द्र बिन्दु में ही एकत्रित होती रहती हैं।

हवा द्वारा पहाड़ों की ऊंचाई कैसे पता लगाई जा सकती है :-

जैसे जैसे हम पहाड़ों पर या हवाई जहाज द्वारा ऊपर उठते जाते हैं पृथ्वी पर वायुमंडल का दबाव भी कम होता जाता है क्योंकि पृथ्वी से ऊपर वायु बराबर हल्की होती जाती है। वायुमंडल के दबाव को नापने के लिए हमारे पास कई यन्त्र बैरोमीटर, मर्करी बैरोमीटर या एनीरायड बैरोमीटर हैं। मर्करी बैरोमीटर एक शीशे का ट्यूब है, जिसके अन्दर से हवा निकाल कर सिर्फ एक पारे की छोटी सी कटोरी छोड़ कर कर पूरा मुँह बन्द कर दिया जाता है। जैसे जैसे वायु का दबाव इस पारे की कटोरी पर पड़ता है, ट्यूब के अन्दर का पारा ऊपर चढ़ता जाता है। इस प्रकार ट्यूब के ऊपर बने हुए स्केल द्वारा हम हवा के दबाव को नाप लेते हैं। बहुत से हवाई जहाजों में ऊँचाई नापने के लिए एनीरायड बैरीमीटर का प्रयोग होता है। यह बैरोमीटर एक बहुत ही लोचदार पतली धातु का बक्स है। इस बक्स के अन्दर से हवा बिल्कुल निकाल ली जाती है ताकि अन्दर से हवा उसकी दीवालों को जरा सा भी न दबा सके। अब बक्स की पतली दीवालें बाहर की हवा के दबाव से अन्दर की ओर दबती हैं और

हवा का दबाव कम होने पर फिर पहले जैसी हो जाती है। वक्स के इस प्रकार दबने और उठने की क्रिया को लिख कर हवा के दबाव का अनुमान होता है। जैसे जैसे हवाई जहाज ऊपर चढ़ता जाता है यह दबाव कम होता जाता है और जहाज के ऊपर से नीचे की ओर उतरते ही दबाव बढ़ने लगता है। पहाड़ की ऊँचाई पता लगाने का सबसे आसान तरीका यही है। बैरोमीटर के स्कैल में सबसे नीचे और सबसे ऊपर की नाप ले लेंगे। पहाड़ जितना ऊँचा होगा हवा का दबाव उतना ही कम होता जायेगा और इस प्रकार सबसे कम और सबसे अधिक नापों के बीच के अन्दर द्वारा हम पहाड़ की ऊँचाई ज्ञात कर सकते हैं।

सूर्य क्यों चमकता है?

कोई नहीं जानता कि सूर्य का जन्म कब और कैसे हुआ पर हजारों वर्षों से यह इसी शान से चमक रहा है। आदि युग के मनुष्यों ने कथा कहानियों से ले कर आज आधुनिक युग के भौतिक शास्त्रियों तक ने अनेक सिद्धान्त बनाये हैं। पर सूर्य क्यों चमकता है यह "न्यूक्लियर फिजिक्स" की उन्नति के बाद ही सिद्ध हो सका। लगभग ५० वर्ष पूर्व रेडिओऐक्टीवीटी की खोज से वैज्ञानिकों को यह ज्ञात हो गया कि विभिन्न अणु पदार्थों में केन्द्रित शक्ति, साधारण रसायनिक पदार्थों के जलाने से जो शक्ति पैदा होती है, इससे कई हजार गुना अधिक शक्ति छुपी रहती है। कोई नहीं जानता कि किस प्रकार एक छोटे लोहे के टुकड़े, एक पत्थर के टुकड़े या पानी की एक बूंद में केन्द्रित अपार शक्ति को प्रयोग में लाए। इस शक्ति को ग्रहण करना बड़ा कठिन है। सिर्फ कुछ ही कीमती पदार्थों जैसे यूरेनियम और रेडियम में इस शक्ति के कणमात्र का अभास हुआ। सभी जानते हैं कि इसे किस प्रकार वैज्ञानिकों ने बड़ा कर, अणु बम के द्वारा एक शक्तिशाली विस्फोट पैदा कर लिया है।

कई अन्य तत्वों की केन्द्रित शक्ति को जलाने के लिये हम पृथ्वी पर उपयुक्त ताप-क्रम नहीं पैदा कर सकते। पर सूर्य में पृथ्वी पर पाये जाने वाले लगभग सभी तत्व हैं और इन तत्वों की केन्द्रित शक्ति को जलाने के लिये एक करोड़ से कई सौ करोड़ डिग्री का ताप-क्रम भी है। कुछ और गणित के अनुमान द्वारा और कुछ प्रयोग शालाओं के प्रयोग द्वारा वैज्ञानिकों ने सूर्य की क्रिया के विषय में अत्यधिक जानकारी प्राप्त कर ली हैं। उनके अनुसार सूर्य में स्वयं एक अणु बिस्फोट यन्त्र है जो चार रसायनिक तत्व हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन और हेलियम की केन्द्रित शक्ति को प्रतिक्रियात्मक रूप से मिला कर सूर्य के निश्चल तेज गर्म प्रकाश को निरन्तर प्रकाशित करता रहता है।

यह प्रतिक्रियात्मक केन्द्रित शक्ति छः अवस्थाओं का एक वृत्त बनाती है जिसमें सर्व प्रथम हाइड्रोजन की केन्द्रित शक्ति क्रमशः सूक्ष्म और घनीभूत हो कर अन्त में हेलियम की केन्द्रित शक्ति में परिवर्तित हो जाती है। यह चक्र ६,५००,००० वर्षों तक चलता रहता है और पूरा होने पर फिर हाइड्रोजन आ कर नई शक्ति प्रदान कर देता है। यह चक्र तब तक चलता रहेगा जब तक कि सूर्य में हाइड्रोजन है। यह हाइड्रोजन कभी खत्म नहीं होगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सूर्य में हाइड्रोजन की मात्रा इतनी अधिक है जो कि सूर्य को दस बिलियन वर्षों तक निरन्तर प्रकाशित करने के लिये पर्याप्त होगी।

(एक बिलियन दस खरब संख्या १०००,०००,०००,०००, के बराबर होता है।)

क्या वीनस (ग्रह) में भी जीवित पदार्थ हो सकते हैं?

सबसे ज्यादा चमकदार और खूबसूरत ग्रह 'वीनस' को बादलों की एक मोटी तह से घिरे रहने के कारण वैज्ञानिक अभी तक नहीं पता लगा पाये कि इन बादलों के नीचे क्या है। अगर वहां जीवित प्राणी होंगे भी तो निरंतर बादलों से घिरे रहने के कारण उन्होंने सूर्य नहीं देखा होगा। कोई नहीं जानता कि वीनस का यह बादल किन तत्वों का बना है। इन बादलों के प्रकाश के विश्लेषण से तो ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि ये बादल पानी से बने हैं क्योंकि इनमें पानी द्वारा बने हुए भाप का कहीं पता

नहीं। इस प्रकार जैसा हम जानते हैं कि पानी के बिना किसी भी जीवित पदार्थ का जीवित रहना असम्भव है। यहां भी जीवित प्राणी का होना असम्भव ही प्रतीत होता है। पर एक आधुनिक विशेषज्ञ विल्डट (Wildt) का कहना है कि ये बादल एक रासायनिक पदार्थ फोरमेल्डी-हाइड (Formaldehyde) के बने हो सकते हैं जिसके नीचे वातावरण बिलकुल विपरीत हो सकता है और इस प्रकार बादलों के नीचे के वातावरण की अनिश्चिता के कारण हम वीनस पर जीवित पदार्थ होने की सम्भावना को बिलकुल ही खत्म नहीं कर सकते।

पुच्छलतारा और उल्के में क्या अन्तर है?

उल्का (टूटता हुआ सितारा) पत्थर का या एक धातु का बहुत ही छोटा टुकड़ा होता है। आम तौर से यह छोटी कंकड़ी से थोड़ा सा बड़ा होता है। पर कभी-कभी इतना बड़ा हो जाता है कि इसका भार कई टन के बराबर होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुछ उल्के पुच्छलतारे के टूटे हुए टुकड़े होते हैं। हम इन उल्काओं को तभी देख पाते हैं जब कि पृथ्वी के वायुमन्डल की विभिन्न गैसों के सम्पर्क में आकर इनमें आग लग जाती है। इनमें से बहुत से हवा में ही जल जाते हैं पर कभी कभी पृथ्वी तक भी आ जाते हैं और तब हम इन्हें उल्कापात (Meteorites) कहते हैं।

पुच्छल तारा लम्बी पूँछ के एक तारे की तरह होता है और यह सूर्य के चारो ओर लम्बे अंडाकार ग्रह पथ (Oval orbiit) में ही घूमता रहता है। एक पुच्छल तारे के तीन भाग होते हैं न्यूक्लिअस, कोमा, और पूँछ। न्यूक्लिअस बीच का भाग कई उल्काओं के एक प्रकार के गुच्छे से बना होता है। कोमा न्यूक्लिअस के चारो ओर सितारों की धूल (Star dust) और पतली गैसों का एक परदा है। चमकती हुई लम्बी पूँछ सूर्य की रोशनी से वापस किए हुए बादल के छोटे छोटे कण हैं। कुछ पुच्छल ताराओं के एक से अधिक पूँछ होती है।

पुच्छल तारों को सूर्य से रोशनी मिलती है और जैसे जैसे ये सूर्य के पास होते जाते हैं ये और भी तेज चमकने लगते हैं। इन पुच्छलताराओं का चक्र इतना लम्बा है कि ये पचास वर्ष सौ वर्ष या कभी कभी दो सौ वर्षों में एक बार दिखाई पड़ते हैं। उल्के आकाश में एक ओर से दूसरी ओर तेजी से जाते हुए दिखाई देते हैं पर ये पुच्छल तारे चांद से अधिक तेज घूमते हुए नहीं मालूम पड़ते।

सबसे ज्यादा चमकदार सितारा

आकाश में सबसे चमकदार सितारा केनिसमेजर (Canis Major) नक्षत्र मन्डल से कुत्ते की शक्ल का सितारा सीरस (Sirins) है। यूनान और रोम के धार्मिक विश्वासों के अनुसार सीरस, ओरिअन नामक एक प्रसिद्ध शिकारी का स्वामिभक्त कुत्ता था अब यही सितारा उस बड़े शिकारी कुत्ते के गले से पड़ा हुआ एक गहने की भांति चमकता है। कुछ ऐसे सितारे हैं जिन्हें देखने पर ऐसा मालूम होता है कि वह एक ही सितारा चमक रहा है पर दूरदर्शक यंत्र (Telescope) से देखने पर वह एक दूसरे के बहुत ही पास दो सितारे दिखाई देते हैं। और ये दो सितारे बिनेरी (Binary) कहलाते हैं। सीरस और उसके साथी मिलकर बहुत ही मनोरञ्जक बिनेरी बनाते हैं। सीरस सूर्य से २७ गुना अधिक चमकदार है। और अपने अन्य साथियों से १०,००० गुना अधिक चमकदार है। इसका तापक्रम २०,००० फैरनहाइट है। इसके अन्य सितारे पानी से हजारों गुना अधिक घनत्व के हैं और ये सितारे जिस गैस के बने हैं पृथ्वी पर इस गैस से अधिक घनत्व का एक पदार्थ भी नहीं। सीरस यूनानी शब्द है जिसका मतलब है झुलसा देने वाली चमक। यह पृथ्वी से सिर्फ ९ लाइट वर्ष दूर है (Light years)

आकाश गंगा में कितने सितारे हैं?

आकाश गंगा (Milky way) आकाश के चारो ओर एक पेटी की तरह फैली हुई है, इसमें कितने सितारे हैं, यह अनुमान से बाहर की बात है क्योंकि अधिक दूर होने की वजह से ये इतने धीमे हो गये हैं कि बड़े से बड़े दूरदर्शक यंत्र से भी बड़ी कठिनाई से दिखाई पड़ते हैं। जिस स्थान से यह आकाश गंगा नहीं गुजरती उस जगह

आस पास के सितारे गिने जा सकते हैं पर इसके किनारे या ठीक बीच में तो असंख्य सितारे हैं जिनमें धुँधले सितारों की संख्या सबसे अधिक है। इन धुँधले सितारों के बारे में हम यही कह सकते हैं कि ये बहुत दूर हैं।

इन सितारों की दिशा या गति विधि देख कर हमने एक आकाश गंगा की कल्पना कर ली है। इसकी बनावट एक लेन्स की भाँति है। यह बहुत ही पतला असंख्य तारों का बना है, जिन्हें गिनने बैठें तो कई युग बीत जायेंगे। इसलिये वैज्ञानिकों ने सिर्फ इतना ही किया है कि पहले आकाश गंगा को छोड़ कर सभी जगह तारों को गिन लिया और फिर अनुमान द्वारा यह निकाल कर कि इतने तारे और हो सकते हैं—उनका कहना है कि आकाश गंगा में कम से कम १००,०००,०००,००० तारे होंगे।

हम आकाश गंगा के बीच में नहीं रहते। हमारी पृथ्वी या हमारा स्थान आकाश गंगा की एक तरफ, किनारे से सिर्फ आधी दूर पर ही है। इसलिये जब हम इसके बीच में सेगीटेरिअस (Sagittarius) नक्षत्र मंडल की ओर या स्कौर्पिअस (Scorpius) की पूंछ की ओर देखते हैं तब हमें सितारों की संख्या बहुत अधिक दिखाई देती है और इसीलिये वह भाग बहुत ही चमकीला दिखाई पड़ता है। जब हम ठीक सामने विपरीत दिशा की ओर देखते हैं तब भी बीच भाग से अधिक सितारों की संख्या नहीं दिखाई पड़ती। जब हम लेन्स के पतले भाग से ऊपर या नीचे की ओर देखते हैं तब हमें आकाश का वह भाग दिखाई पड़ता है जहाँ "आकाश गंगा" नहीं है और यहाँ भी सितारों की वह मोटी तह नहीं है। इसलिए अधिक सितारे नहीं दिखाई देते।

सितारों का यह क्रम बहुत ही विस्तृत है जिसके एक किनारे से दूसरे किनारे तक की अवधि १००,०००(Light-years) वर्ष है। हम लोग इसके केन्द्र से ३०,००० लाइट वर्ष दूर हैं। इसके बाहर खाली जगह है पर अन्दर तो और भी खाली जगह हैं क्योंकि हर दो सितारों के बीच बहुत सी खाली जगह है। एक बड़े से कमरे में अकेला एक बहुत बारीक धूल का कण अपने चारो ओर जितना स्थान रखता है उसी अनुपात से एक बड़ा सितारा भी आकाश में बहुत बड़ी जगह खाली रखता है। इन्हीं सितारों में सूर्य भी एक सितारा है जिसके चारो ओर इतनी जगह है कि पृथ्वी तथा सभी ग्रह और नक्षत्र इत्यादि बड़ी आसानी से घूमते हैं। ग्लैक्सी (Glaxy) के बाहर से देखने पर सूर्य जैसे ही अन्य सितारों के बीच में सूर्य तो पता भी नहीं चलेगा।

इन सितारों को काफी दूर से देखने पर ये एक गुच्छे की भांति एक ही स्थान पर एकत्रित दिखाई पड़ते हैं। आकाश गंगा में भी इसी प्रकार एक सितारों का गुच्छा है इसलिये इसे (Galactic cluster) कहते हैं। परन्तु एक ही जगह बराबरी से सितारों के गुथें हुए न होने के कारण इन्हें एक छिटका हुआ गुच्छा कहना ही अधिक उपयुक्त है। इन्हीं में से एक छिटका हुआ सात तारों का गुच्छा "सप्तऋृषि" के नाम से प्रसिद्ध है। खुली आंखों से तो सिर्फ छः सितारे ही दिखाई देते हैं पर एक अच्छे दूर दर्शक यन्त्र से देखने पर २०० दिखाई देते हैं।

मूंगफली की नई किस्म का विकास

कल्याणकारी कार्यों के लिए अणुशक्ति का उपयोग होने के फलस्वरूप कुछ ही दिनों में अमेरिकी किसान पहले से कहीं उत्तम कोटि की मूंगफलियाँ उगाने में समर्थ हो जायेंगे। ये मूँगफलियां पहले से अधिक मोटे दाने की होंगी और इनमें रोग सहारने की अद्भुत क्षमता होगी।

वैज्ञानिकों का कथन है कि यह पहला परीक्षण है जब विकिरण की सहायता से पौधे की नस्ल और पैदावार की कोटि में एक साथ सुधार करने में सफलता प्राप्त हुई है।

यह परीक्षण उत्तरी कैरोलाइना स्टेट कालेज के परीक्षण-केन्द्र के एक डाक्टर वाल्टर सी० ग्रिगोरी द्वारा १९४९ में शुरू किया गया था। उन्होंने लगभग ५० पौन्ड मूँगफली के दानों को ओकरिज परीक्षणशाला (टेनेसी) में विकिरण से प्रभावित किया और इन विकिरण-प्रभावित बीजों को रौकी पर्वत श्रेणी में स्थित कृषि परीक्षण-केन्द्र में उगाया। उनका यह परीक्षण सफल रहा और मूंगफलियों की कई नई किस्मों का यहां पर विकास हुआ। सबसे अन्तिम और सुधरी हुई किस्म का नाम 'एन० सी० ४ एक्स' रखा गया है। यह आशा है कि १९६० तक अमेरिकी किसानों को मूंगफली की नई किस्म खेतों में उगाने के लिए सुलभ हो जाएगी।

डा० ग्रिगरी का कथन है कि इसी नस्ल की मूंगफली उगाने में सामान्य तौर पर कई हजार वर्ष लग जाते, लेकिन विकिरण की सहायता से यही कार्य कुछ मिनटों में ही हो गया। डा० ग्रिगरी को यह परीक्षण पूरा करने में १० वर्ष लग गये।

दर्द हरने वाली नई औषधि

अमेरिका में वैज्ञानिकों ने एक नई दर्द नाशक औषधि का विकास किया है, जो अफीम से कई गुना अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई है। अमेरिकी स्वास्थ्य शिक्षा और जन-कल्याण-विभाग के सेक्रेटरी डा० आर्थर एस० फ्लेमिंग ने उक्त खोज को एक महत्वपूर्ण आविष्कार बताया है।

यह औषधि अभी परीक्षण अवस्था में ही है और इसका नाम 'एन-आई-एच-७५१९' है। यह अफीम से नहीं बल्कि कोलतार में पाए जाने वाले एक नए प्रकार के रासायनिक द्रव से तैयार की जाती है।

इस औषधि की खूबी यह है कि यह 'मार्फिया' से कम हानिकारक और उससे कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई है। गठिया रोग के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले संस्थान के डा० एवर्टे ने डा० नाथान बी० एडी के सहयोग से उक्त औषधि का विकास किया है।

डा० आर्थर एस० फ्लेमिंग ने बताया है कि विदेशों में इस औषधि को तैयार कराने का अधिकार सम्भवतः विश्व स्वास्थ्य संघटन को सौंप दिया जाए ताकि सभी राष्ट्रों को यह प्रभावशाली औषधि सुलभ हो सके।

एक बार चाभी देने से घड़ी २०० वर्षों तक निरन्तर चलती रहेगी।

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक आणविक घड़ी तैयार की है जो रेडियो सक्रिय सिसियम १३७ की आधे ग्राम वजन की गोली के बल पर २०० वर्षों तक बराबर चलती रहेगी। इसमें इस बीच में चाभी भरने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

यह आणविक घड़ी चेज मैनहटल बैंक भवन की आधार शिला में फिट की गई है और मिनट, घन्टे, दिन तथा वर्ष सूचित करेगी।

न्यूयार्क नगर के मेयर रौबर्ट वेगनर ने एक बटन दबा कर यह घड़ी चालू कर दी है। यह घड़ी गामा विकिरण के कम्पन से चलती है।

बैंक का भवन १९६० तक बन कर तैयार हो जाएगा। इसमें इस प्रकार की दो घड़ियां और लगेंगी।

शल्य चिकित्सा द्वारा रक्त-संचार पुनः शुरू

ह्यूस्टन (टैक्सास राज्य) के एक शल्य-चिकित्सक ने यह बताया कि शल्य चिकित्सा द्वारा शरीर के निचले अङ्गों के रुके हुए रक्त प्रवाह का पुनः संचार करने में ९० प्रतिशत तक सफलता प्राप्त कर ली गई है। यह रक्त संचार पुनः जारी करने के लिए उन धमनियों की शल्य-चिकित्सा की जाती है, जिनमें खून किसी खराबी के कारण जम जाता है।

उक्त डाक्टर ने कहा कि उक्त चिकित्सा-विधि ९५७ रोगियों पर सफलतापूर्वक आजमाई जा चुकी है। पिछले ५ वर्षों से इस सम्बन्ध में परीक्षण जारी है।

डा० डिवेरी ने उक्त विधि का वर्णन करते हुए कहा कि पहले एक्स-रे की सहायता से यह पता लगा लिया जाता है कि कौन से पैर की किस धमनी में रक्त के संचार में रुकावट पड़ रही है। इस एक्स-रे जांच से यह भी पता चल जाता है कि उस स्थान की धमनी बिलकुल काटनी पड़ेगी या समान्य शल्यचिकित्सा से ही रुकावट दूर हो जाएगी। इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के बाद शल्य-चिकित्सक ठीक स्थान पर धमनी को चीर कर उस की खराबी दूर कर देता है और यदि आवश्यक हुआ तो खराब हिस्से को काट कर उसके स्थान पर नया हिस्सा जोड़ देता है।

आणविक विस्फोटों की सहायाता से तेल-भन्डारों का पता लगाया जाएगा

अमेरिकी वैज्ञानिक एक ऐसी योजना का अध्यन कर रहे हैं जिस के अन्तर्गत तेल के असीम भन्डार को सुलभ करने के लिये आणविक विस्फोट का उपयोग किया जाएगा।

अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन ने अभी हाल में प्रकाशित अपनी अर्द्ध वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है कि भूमिगत आणविक विस्फोटों का उपयोग बन्दरगाहों का निर्माण करने, जहाजरानी के मार्ग में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने, खानों में खनिज पदर्थों की खुदाई करने और विद्युत-शक्ति तथा रेडियो-आइसोटोप का उत्पादन करने के लिए किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त तेलयुक्त चट्टानों को तोड़ने के लिये भी आणविक विस्फोटों का उपयोग हो सकता है।

अमेरिकी पेट्रोलियम उद्योग के अनुसार कोलोराडो राज्य तथा यूटा और वायमिंग राज्यों में तेलयुक्त चट्टानों के विशाल भन्डार हैं और इस विधि द्वारा उन से तेल निकालना सम्भव हो सकता है।

नए ताप-निरोधक पदार्थ का विकास

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने एक नए ताप-निरोधक पदार्थ की खोज की है। इस पदार्थ का उपयोग करने से इंजन आग की तरह लाल हो जाने पर भी अपना कार्य अच्छी तरह करता रहेगा। वेस्टिंग हाउस कार्पोरेशन के वैज्ञानिकों का कथन है कि मानव-चालित उपग्रहों के भीतर मोटर-इंजनों को सुरक्षित रखने में यह पदार्थ बहुत सहायक सिद्ध होगा। यह अनुमान है कि मानव-चालित उपग्रहों और प्रक्षेपणास्त्रों का तापमान पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करने पर लगभग १२०० डिग्री फारेनहाइट तक पहुँच जाता है।

पृथ्वी का आकार नासपाती से मिलता-जुलता है

उपग्रहों से अब तक जो सूचना प्राप्त हुई है, उसके आधार पर अमेरिकी वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पृथ्वी का आकार नारंगी जैसा नहीं बल्कि नासपाती जैसा होना चाहिए।

यह रहस्योद्घाटन न्यूयार्क में 'अमेरिकन फिजिकल सोसाइटी' की बैठक में किया गया है।

विशालकाय यान्त्रिक कान का निर्माण

अमेरिकी वैज्ञानिक आज कल एक ऐसा विशालकाय यान्त्रिक कान (रेडिलो टैलिस्कोप) के निर्माण में संलग्न हैं, जो पृथ्वी से काफी ऊँचाई पर उड़ने वाले उपग्रहों, मंगल इत्यादि ग्रहों की ओर अग्रसर राकेटों तथा अन्य अन्तरिक्ष यानों द्वारा प्रेषित रेडियो संकेतों को सुन सकेगा।

यह यान्त्रिक-कान शीघ्र ही ४ लाख मील की दूरी पर उड़ने वाले अन्तरिक्ष यान द्वारा भेजे जाने वाले रेडियो-संकेतों को ग्रहण करने में समर्थ हो जाएगा। १९६२ तक यह ४ अरब मील की दूरी से आने वाले रेडियो-संकेत पकड़ सकेगा। अन्तरिक्ष में उड़ान भरने वाले यानों की स्थिति का पता लगाने में यह कान बहुत सहायक सिद्ध होगा।

सूर्य-शक्ति की सहायता से खारा जल मीठा बनाया जायेगा

अमेरिका वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सास्ता यन्त्र तैयार किया है, जो सूर्य शक्ति की सहायता से खारे जल को बिना किसी खर्च के मीठे जल में बदल देगा। उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित देशों के लिये यह यन्त्र विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

एक छोटे से टैंक में एक ओर से खारा पानी जाने की व्यवस्था रहेगी। टैंक के ऊपर आठ फुट चौड़ा कांच का ढक्कन रहेगा जो इस प्रकार ढालू रूप में फिट होगा कि काँच के अंदरूनी भाग पर एकत्र होने वाले जल-कण फिसल कर ढकन से जुड़ी एक नाली में चले जायें और इस प्रकर बूंद-बूंद मिल कर पानी में परिणत हो जायें। कांच को भेदती हुई सूर्य किरणें टैंक में भरे खारे जल पर पड़ती है। पानी गर्म हो कर वाष्प के रूप में परिणत होता है। यह वाष्प काँच के अन्दरूनी भाग पर एकत्र हो कर जल-कणों के रूप में परिणत हो जाती है और ढक्कन से जुड़ी हुई नाली के द्वारा यह पानी बाहर चला जता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह यन्त्र २५०० वर्ग फुट स्थान में स्थित रहेगा और लगभग ३०० गैलन मीठा जल प्रति दिन तैयार कर सकेगा।

पेट्रोलियम गैस से रेशम

ले० जी० सिदोरोव

रसायन विज्ञान क्या-क्या चमत्कार कर सकता है, इसका एक उदाहरण यह है कि सोवियत वैज्ञानिकों ने पेट्रोलियम गैस से रेशम तैयार किया है। इस रेशम का नाम है लावसोन जो उस कारखाने के नाम के पहले अक्षरों के आधार पर पड़ा है। इस कारखाने का हिन्दी नाम होगा उच्च आणविक मिश्रण की प्रयोगशाला।

इस वैज्ञानिक संस्थान ने जो नया रेशा तैयार किया है, वह किसी भी प्राकृतिक रेशे से अधिक सुन्दर तथा टिकाऊ है। अखिल संघ कृत्रिम रेशा संस्थान इस सिलसिले में अनुसन्धान कार्य कर रहा है। वैज्ञानिक प्रयोगशाला के अलावा संस्थान का प्रयोगिक कारखाना भी है। इस कारखाने में आधुनिकतम यंत्र हैं। और लावसोन सम्बन्धी प्रयोग पूर्णता की मंजिल पर पहुँच रहे हैं।

नियमित उत्पादक शुरू हो गया है। लावसोन के वस्त्र ऊन की अपेक्षा पांच गुना अधिक मजबूत तथा गरम होते हैं। उनमें शिकन नहीं पड़ती तथा हल्के होते हैं। उत्पादन व्यय भी ऊनी वस्त्रों के उत्पादन से कम होता है।

मास्को में अभी हाल में एक प्रदर्शनी हुई जिसमें इस भावी वस्त्र की अनेक चीज़ें देखने को मिलीं। लावसोन की बनी कमीजें, सूट, ओवरकोट यहां थे।

अद्भुत शल्य-चिकित्सा

एक यूक्रेनी बालिका पिछले बीस वर्षों से अपने चेहरे पर पट्टी बांध कर जन्मजात काले निशान को छिपाये रखती थी क्योंकि इस निशान से उसका चेहरा बहुत भद्दा दिखता था। यूक्रेन के टर्नोपोल-चिकित्सा-संस्थान के सहायक प्राध्यापक सेम्योन-शामरायेव्स्की ने बीस मिनटों के अन्दर हमेशा के लिए उस निशान को मिटा दिया। डाक्टर ने जेवक्रिय-इलेक्ट्रोड का प्रयोग किया जिसका उसने स्वयं आविष्कार किया था। चर्म-कैंसर तथा अन्य बीमारियों की चिकित्सा में भी इलेक्ट्रोड का प्रयोग किया जाता है। जेवक्रिय इलेक्ट्रोड का पूर्ण परीक्षण किया जा चुका है और अब उनका व्यापक रूप में प्रयोग किया जाएगा।

मंगल ग्रह की यात्रा
सिर्फ २०० मीटर गति और चाहिये

मास्को, १२--१--५६ (तास) :

अन्तरिक्ष राकेट अब बाह्य अकाश में ३ करोड़ किलोमीटर पर है।

राकेट ने ११२०० मीटर प्रति सेकेन्ड का वेग पकड़ा, यह पृथ्वी के उपग्रह को कक्ष में पहुंचाने के लिए वांछनीय ८००० मीटर व्योमगति से ४० प्रतिशत अधिक है।

गणना से पता चला है कि इसी अनुपात में इंधन भी अधिक लगता है।

यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यह कृत्रिम ग्रह सबसे बड़े, तीसरे सोवियत स्पुत्निक से कोई १५० किलोग्राम अधिक वजनी है। इसका वजन कोई डेढ़ टन है।

गणना से यह भी पता चला है कि क्षिप्र वेग प्राप्त करने के लिए राकेट के अन्तिम भाग में १६०,००० किलोवाट शक्ति होनी चाहिए। यह शक्ति उतनी ही है जितनी किसी बड़े बिजलीघर में होती है।

अगर २०० मीटर प्रति सेकेन्ड की और गति मिल जाए, तो सोवियत अन्तरिक्ष राकेट मंगल ग्रह तक जा सकता है।

यह कठिन नहीं जान पड़ता कि सोवियत राकेट शुक्र और मंगल तक पहुँच सकेंगे।

ड्यूटेरियम--भविष्य में प्रयुक्त होने वाला इन्धन

मास्को, १६-१-५६ (तास):

पारमाणविक विद्युत् इंजीनियरिंग का भविष्य विशुद्ध ड्यूटेरियम (भारी उद्जन) इस्तेमाल करने वाले रियेक्टरों पर निर्भर करता है। सोवियत अकादमिशियम इगौर कुचोतोव की स्थापना कल 'टेकनीका मोलोदेभी' (प्रविधि और नौजवान) नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई है। इस पत्रिका ने अकादमिशियन कुचोतोव के उसी निबन्ध का जो उन्होंने चीन लोक गणतंत्रमें पढ़ा था संस्करण प्रकाशित किया है।

प्रकृति में प्रभूत परिमाण में ड्यूटेरिम विद्यमान है। सामान्य गणनाएं बताती हैं कि विद्युत इन्जीनियरिंग का अत्यन्त शक्तिशाली विकास होने पर भी ड्यूटेरियम और ईन्धन लाखों वर्षों के लिए पर्याप्त होंगे। ईन्धन के रूप में इसका मूल्य कोयले की अपेक्षा एक प्रतिशत कम है। फिर भीपानी से ड्यूटेरियम निकालने में बहुत खर्च बैठता है।

अकादमिशियन कुचोतोव कहते हैं कि यदि एकबार पारमाणविक शक्ति का रूपांतरण सीधे विद्युत् शक्ति में होने लगे तो भीमकाय स्टीम व्वायलरों और टर्वोजिनेरेटरों की कोई आवश्यकता नही रह जाएगी। विद्युत् इंजीनियरिंग के एक नये युग का सूत्रपात होगा जिसमें पारमाणविक विद्युत् स्टेशनों के विकास पर खास जोर दिया जाएगा।

अकादमिशियन कुचोतोव पारमाणविक शक्ति-संस्थान में नियंत्रित पारमाणविक प्रक्रियाओं के शोध के बारे में बताते हैं और आन्द्रेई साखारोव और इगौर ताम्म के कार्य पर टिप्पणी करते हैं जो चुम्बकीय क्षेत्र के

द्वारा गर्म प्लाजमा की तापरोधकता में और प्लाजमा में प्रवहमान गर्म तरंग द्वारा उसे गर्म करने में विश्वास करते है।

इगोर कुचोतोव कहते हैं कि सोवियत वैज्ञानिक यथासम्भव व्यापकतम पैमाने पर परीक्षण करना आवश्यक समझते हैं जिनमें 'ओगा' जैसे बृहत् प्रायौगिक साज-सामानों को स्थापित करना शामिल है।

गामा किरणों से कपास की फसल बहुत अच्छी होती है

उजबेक विश्वविद्यालय के प्रायोगिक खेत में उन बीजों से उगायी कपास की बहुत अच्छी फसल हुई है जिन्हें बोने से पहले कोबाल्ट के आइसोटोपों की गामा-किरणों से प्रभावित कर दिया गया था।

अनुसन्धान से पता चला है कि तेजस्क्रिय-पदार्थ के विकिरण से प्रभावित बीजों में नये गुण प्रकट होते हैं। उनकी जीवनी शक्ति बढ़ जाती है। उनकी उगने की शक्ति शत-प्रति-शत हो जाती है, पौधे बहुत तेजी से बढ़ते हैं। फसल सामान्य स्थिति से सात से दस दिन पहले पक जाती है।

कोबाल्ट के आइसोटोपों की गामा-किरणों के प्रभाव से कपास के जो पौधे उगे, उनमें औसतन पांच डांडियां अधिक लगीं और प्रत्येक डांडी डेढ़ से दो ग्राम अधिक वजनी थी।

स्वयंचालित ट्रैक्टर

पाव्लोदार इलाके की इर्तिश्की राज्य कृषिशाला के ट्रैक्टर ड्राइवर आई० लोगीनोव ने स्वयंचालित ट्रैक्टर का अनुसन्धान किया है।

इस मशीन को चलाने के लिये आदमी की जरूरत नहीं पड़ती। उसे बस पहले चला देना पड़ेगा। इसके बाद वह अपने आप जुताई का काम करती रहेगी। यह काम ट्रैक्टर में एक विशेष व्यवस्था के द्वारा सम्पन्न होता है। परीक्षणों से पता चला है कि सिर्फ जुताई के लिए नहीं, बल्कि हेंगा फेरने, बुआई तथा अन्य कुछ कामों में भी स्वयंचालित ट्रैक्टर काम दे सकते हैं। मौसम चाहे जैसा हो और चाहे जो समय हो, वे इसकी परवाह किये बिना काम करते रहते हैं।

शीघ्र ही स्वयंचालित ट्रैक्टर सोवियत संघ के देहातों में दिखलायी पड़ने लगेगें। विद्यमान मशीनों में स्वयं-चालित नियंत्रण व्यवस्था करने का भी इरादा हैं। इससे किसानों का काम और हलका हो जाएगा तथा खेतों के काम में गुणगत सुधार होगा।

सम्पादकीय

नया कदम

इंडियन साइंस कांग्रेस के अवसर पर विज्ञान-परिषद्-इलाहाबाद के तत्तवावधान में, दिल्ली विश्वविद्यालय में २३ जनवरी १६५६ को विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की एक गोष्ठी हुई। उसमें विविध वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में अनुसंधान निबंध पढ़े गये और उन पर विचार विनिमय किया गया। यह गोष्ठी भारत की वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से एक ऐतिहासिक महत्व रखती है। यह पहला अवसर है जब देश के विद्वानों ने विचारों के आदान प्रदान और वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के लिये देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी का माध्यम अपनाया।

संसार के सभी प्रगति शील देश वैज्ञानिक ज्ञान के आदान प्रदान के हेतु अपनी देश भाषा का ही उपयोग करते हैं। स्नात कोत्तर शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य के लिये भी राष्ट्र भाषा का ही उपयोग किया जाता है। अभी तक भारत वर्ष का सारा वैज्ञानिक कार्य मुख्यतः अंगरेजी के माध्यम द्वारा ही होता रहा है। आज से एक वर्ष पूर्व विज्ञान-परिषद्-इलाहाबाद ने हिन्दी में विज्ञान-परिषद-अनुसंधान पत्रिका नाम की एक मासिक पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका में विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर अनुसंधान लेख और उनके सारांश हिन्दी में प्रकाशित होते हैं। परिषद् ने यह पत्रिका प्रकाशित करके भारत के वैज्ञानिकों का मार्ग दर्शन किया है। उन्हें स्पष्ट बता दिया है कि वैज्ञानिक विषयों में अनुसंधान निबन्ध तक हिन्दी में प्रकाशित हो सकते हैं फिर वैज्ञानिक विषयों की उच्चतम शिक्षा को हिन्दी के माध्यम से देना और भी सरल है।

अभी देश में हिन्दी के माध्यम से विश्वविद्यालय की उच्चतम कक्षाओं में शिक्षा देने के लिये उपयुक्त आचार्यों का अभाव है। परिषद् द्वारा आयोजित दिल्ली की इस गोष्ठी की भांति ही अन्य बैठकें हिन्दी द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार के हेतु बड़ी लाभदायक सिद्ध होंगी और अधिकांश विद्वानों के मन में घुसे हुये इस भय को बाहर निकाल फेंकेंगी कि वे हिन्दी में अपने विचार प्रकट करने में असमर्थ हैं। केवल अभ्यास की आवश्यकता है। जब अभ्यास के कारण हम एक विदेशी भाषा में सफलता पूर्वक अपने विचार दूसरों के सम्मुख रख सकते हैं तो थोड़े से परिश्रम और अभ्यास से हम अपनी मातृभाषा और राष्ट्र भाषा में यह कार्य अधिक सरलता और सफलता पूर्वक कर सकेंगे। दिल्ली में हुई गोष्ठी में कई वैज्ञानिक विषयों पर निबन्ध पढ़े गये थे। विद्वानों के उत्साह और अध्यवसाय के फलस्वरूप आगे की गोष्ठियां और भी अधिक सफल होंगी। वह दिन दूर नहीं जब प्रत्येक वैज्ञानिक विषय के हेतु अलग अलग गोष्ठियों का आयोजन हो सकेगा।

—:०:—

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

फरवरी १९५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ९३ चक, इलाहाबाद—३।

भाग ८८ संख्या ६

मार्च १९५९ मीन २०१५ वि० फाल्गुण १८८० शा०

वार्षिक मूल्य ४ रुपए] [इस अङ्क का मूल्य ४० नए पैसे

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निर्दिष्ट नियमों के अनुसार साधारण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधान मन्त्री, दो मन्त्री एक सम्पादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशनों में उपस्थित रहने का, अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित परिषद् की सब पुस्तकों, पत्र, तथा विवरण इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ हो—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकर राव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के बी० माथुर	२ रुपया
१०—कमल पैवन्द—श्री शंकर राव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० नये पैसे
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपये
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपये
१९—घरलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपये
२०—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रुपये ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रुपये ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपये
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्रनाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपये
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवान्तविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ८८ | कुम्भ २०१५ विक्र०; माघ १८८० शाकाब्द; मार्च १९५९ | संख्या ६

अणुशक्ति के कल्याणकारी प्रयाग

चिकित्सा, कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों में अद्भुत प्रगति

१९५८ में संसार के सभी भागों में रहने वाले अणु-वैज्ञानिक इस दिशा में सफलतापूर्वक निरन्तर कार्य करते रहे हैं कि विद्युत्-उत्पादन, चिकित्सा, कृषि और उद्योग के क्षेत्रों में अणु के कल्याणकारी प्रयोगों को बढ़ाया जाये।

१९५८ के सितम्बर मास में जेनीवा (स्विटजरलैण्ड) में अणुशक्ति के कल्याणकारी उपयोगों के सम्बन्ध में संयुक्तराष्ट्र-संघ का जो द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था, वह गत वर्ष की एक अत्यन्त उल्लेखनीय घटना है। १९५५ में जो प्रथम सम्मेलन हुआ था, उसके बाद कल्याणकारी कार्यों में अणुशक्ति के प्रयोगों के सम्बन्ध में प्रगति की गई है उसके सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने के लिए ६९ राष्ट्रों के लगभग ५ हजार वैज्ञानिकों ने इस महत्वपूर्ण सम्मेलन में भाग लिया।

सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रों के प्रमुख वैज्ञानिकों ने अणु के सम्बन्ध में कहा है कि इनका जिन अनेक कल्याणकारी कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है उनमें समुद्री बस्तियों को बिजली उपलब्ध करना, जहाजों के लिए बिजली सुलभ करना, अधिक पैदावार देने वाले पौधों को उत्पन्न करना, कारखानों के उत्पादन व्यय को कम करना, औद्योगिक सामग्री में सुधार करना, अंगुलियों के चिन्हों का पता लगाना, इस्पात को जंग लगने के सम्बन्ध में अध्ययन करना और समुद्र के खारे जल को पीने योग्य बनाना आदि कार्य सम्मिलित हैं।

आणुविक बिजलीघर

सम्मेलन के अवसर पर अमेरिकी अणुशक्ति-कमिशन द्वारा किये गये एक पर्यवेक्षण से पता चला कि बिजली उत्पन्न करने के उद्देश्य से स्थापित किये गये १३ आणुविक बिजलीघर सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे, जब कि अन्य ६० आणुविक बिजलीघर निर्माणाधीन थे अथवा उनके सम्बन्ध में योजनाएं तैयार हो रही थीं।

इस समय जो आणुविक बिजलीघर कार्य कर रहे हैं, उनमें से ८ अमेरिका में हैं, ३ ब्रिटेन में हैं एक फ्रांस और एक रूस में है।

आणुविक बिजलीघर का एक सबसे अधिक लाभ है भारी मात्रा में बिजली पैदा करने के लिए अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी मात्रा में ईंधन की आवश्यकता।

आणुविक द्रवण से बिजली

प्रथम तथा द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के बीच के ३ वर्षों में अणुशक्ति से बिजली उत्पन्न करने के सम्बन्ध

में वैज्ञानिकों के चिन्तन एवं दृष्टिकोण में बड़े परिवर्तन हुए हैं।

प्रथम सम्मेलन में वैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से उन बिजलीघरों के सम्बन्ध में विचार प्रगट किये, जिनमें आणुविक विस्फोटन द्वारा ताप उत्पन्न किया जाता है। इस विधि द्वारा यूरेनियम जैसे भारी तत्वों को विखंडित किया जाता है। १९५८ के सम्मेलन में न्यष्टि-ताप द्रवण प्रक्रिया द्वारा उद्जन शक्ति के उत्पन्न करने में सबसे अधिक दिलचस्पी ली गई।

१९५८ में न्यष्टि-ताप के मध्य द्रवण प्रक्रिया की निष्पत्ति के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षण किये गये, विशेष रूप से अमेरिका और ब्रिटेन में द्रवण सम्बन्धी प्रक्रिया के विकास के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया गया।

जेनीवा सम्मेलन में अमेरिका और ब्रिटेन ने उन न्यष्टि-ताप यन्त्रों के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी प्रदान की, जो दोनों देशों में प्रयोग में आ रहे हैं और दोनों देशों द्वारा प्राप्त की गई सफलताओं के बारे में भी प्रकाश डाला गया। इसका उद्देश्य अन्य देशों के वैज्ञानिकों के लिए यह सम्भव बनाना था कि वे भी कुछ ऐसे अनुसन्धान के केन्द्रों में अध्ययन कर सकें जिनमें न्यष्टि-ताप के मध्य उत्पन्न उद्जन शक्ति के नियन्त्रण के विषय में कार्य हो रहा है।

न्यष्टि-ताप द्रवण से यह संभावना दिखाई पड़ती है कि इससे संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईंधन का रास्ता और अक्षय भण्डार उपलब्ध हो सकेगा। न्यष्टि-ताप द्रवण प्रक्रिया में काम में आने वाली ड्यूटेरियम समुद्र के सामान्य जल में पर्याप्त मात्रा में मौजूद है।

चिकित्सा-क्षेत्र में अणु के प्रयोग में प्रगति

अन्वेषियों के रूप में रेडियो-सक्रिय आइसोटोप के प्रयोग ने चिकित्सा के क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया है, और इससे रोगों का निदान और उपचार करने के नये नये तरीके सम्भव हो गये हैं। रेडियो-आइसोटोप सामान्य रासायनिक तत्व हैं, जो आणुविक भट्टियों द्वारा रेडियो-सक्रिय बनाये जाते हैं। जैसे जैसे वे मनुष्यों के शरीर में, पौधों में, तथा पशुओं के शरीर में घूमते हैं, उनका विकिरण द्वारा पता चला रहता है। यह कार्य गाइगर काउन्टर नामक यन्त्र अथवा विकिरण का पता लगाने वाले किसी अन्य यन्त्र द्वारा किया जाता है।

इस समय अमेरिका में २ हजार से अधिक चिकित्सा-संस्थाएं और गैरसरकारी चिकित्सक रोगों का निदान एवं उपचार करने के लिए रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग कर रहे हैं। १९५८ में १० लाख से अधिक रोगियों का रेडियो-आइसोटोपों से निदान और उपचार किया गया। अमेरिकी अणुशक्ति-कमिशन द्वारा क्रियान्वित किये जाने वाले वितरण के वे विश्वव्यापी कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप अब उनका प्रयोग समस्त संसार में होने लगा है।

आइसोटोपों द्वारा जिन रोगों का अब उपचार किया जा रहा है, उनमें मस्तिष्क की रसौलियां, विभिन्न प्रकार के कैन्सर, हृदयरोग, पुराना ल्युकेमिया, तथा रक्त सम्बन्धी अनेक रोग सम्मिलित हैं।

उद्योगों में अणुशक्ति का प्रयोग

कारखानों में यन्त्रों के पुर्जों की मोटाई गहराई आदि जानने तथा तरल पदार्थों को मापने में रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग किया जा रहा है।

वस्तुओं को योंही नष्ट होने से बचाने तथा मूल औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में एकरूपता लाने के लिए भी आइसोटोपों का प्रयोग किया जा रहा है। अमेरिकी अणुशक्ति-कमिशन के अनुमान के अनुसार रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग करके अमेरिकी उद्योग ५० करोड़ डालर की वार्षिक बचत करते हैं। कमिशन का अनुमान है कि १९६५ तक यह बचत १० गुना अधिक हो जायेगी।

रेडियो-आइसोटोपों के औद्योगिक उपयोग इतने अधिक हैं कि उनका विस्तृत उल्लेख करना बड़ा कठिन है।

उदाहरण के तौर पर पैट्रोलियम उद्योग में नलिकाओं में तेल के प्रवाह का पता लगाने आदि अनेक कार्यों के

लिए रेडियो-आइसोटोप प्रयोग में लाये जाते हैं। वातानुकूलित यन्त्रों के निर्माता इनकी सहायता से छिद्रों का पता लगाते हैं और कांच के निर्माता क्षरण सम्बन्धी अध्ययनों के लिए उनका प्रयोग करते हैं। इसके अलावा रासायनिक खादों के निर्माता रासायनिक खादों की जांच के लिए इनका प्रयोग करते हैं।

१९५८ में रासायनिक उद्योगों में आणुविक विकिरण के नये नये उपयोगों के सम्बन्ध में विस्तृत अनुसन्धान किये गये थे। अमेरिकी अणुशक्ति-कमिशन ने हाल में बताया है कि इस क्षेत्र में आणुविक विकिरण एक चौथी रासायनिक क्रिया सिद्ध हो सकेगी।

जहाजों तथा वायुयानों के लिए आणुविक शक्ति

अणुशक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में एक सबसे बड़ी सफलता अमेरिकी पनडुब्बियों में अणुशक्ति से संचालित इन्जनों का सफल प्रयोग है। अमेरिका, ब्रिटेन और जापान आदि अनेक देशों में व्यापारी जहाजों के लिए अणुशक्ति से चालित इन्जनों के विकास एवं निर्माण की योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं।

१९५८ के जुलाई मास के अन्त में तथा अगस्त के प्रारम्भ में अमेरिका की 'नौटिलस' नामक पनडुब्बी ने उत्तरी ध्रुव से होकर हवाई से इंग्लैन्ड तक की ४:४६ मील की ऐतिहासिक यात्रा की। 'नौटिलस' ने इस यात्रा में आणुविक ईंधन यूरेनियम का प्रयोग किया है, जो आकार में कोयले के एक छोटे से टुकड़े के बराबर था।

नौटिलस की यात्रा के एक सप्ताह बाद, अणुशक्ति से चालित पनडुब्बी स्केट ने उत्तरी ध्रुव के नीचे एक अन्य मार्ग से यात्रा की। स्केट एटलांटिक सागर से हो कर उत्तर को गई, और हिम के नीचे यात्रा करती हुई उत्तरी समुद्र से होकर एटलांटिक लौट गई। यात्रा के दौरान में गैर सैनिक वैज्ञानिकों ने उत्तरी ध्रुव के सम्बन्ध में काफी मात्रा में वैज्ञानिक आंकड़े एकत्र किये थे।

अक्टूबर में उस समय अणुशक्ति से चालित इन्जनों की अधिक दूर तक यात्रा करने की क्षमता का और अधिक प्रदर्शन किया गया जब 'सी वुल्फ' नामक पनडुब्बी ने ६० दिन तक जल के नीचे यात्रा की। इस यात्रा में 'सी वुल्फ' ने १५,७०० नौटिक मील फासला तय किया।

मई १९५८ में उस समय व्यापारी जहाजों ने एक नये युग में प्रवेश किया, जब अमेरिका में प्रथम अणुशक्ति-चालित व्यापारी जहाज का निर्माण प्रारम्भ किया गया। आशा है कि 'एन० एस० सवाना' नामक यह जहाज १९५९ में समुद्र में उतार दिया जाएगा।

एक ऐसे अणुशक्ति चालित व्यापारी जहाज की योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं जिसमें एक आणुविक गैस टर्बाइन इन्जन को प्रयोग में लाया जाएगा। व्यापारी जहाजों के लिए एक अत्यन्त सस्ता और व्यवहारिक ढङ्ग का अणुशक्ति प्लान्ट तैयार करने की योजना में यू० यस० मेरिटाइम एडमिनिस्ट्रेशन और अणुशक्ति कमिशन सहयोग से कार्य कर रहे हैं।

वायुयानों के लिए अणुशक्ति का प्रयोग करने के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान की आवश्यकता है। १९५८ में इस सम्बन्ध में अनेक परीक्षण किये गये हैं।

जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी मनुष्य-चालित वायुयान के लिए एक आणविक भट्टी और जेट इन्जन तैयार कर रही है। यह कहा गया है कि यह इन्जन ऐसे इन्जनों के समान है जो आज कल प्रयोग में आ रहे हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह सामान्य ईंधन को जला कर ताप हासिल करने की बजाय एक आणविक भट्टी से ताप प्राप्त करेगा।

लौकहीड एयर क्राफ्ट कार्पोरेशन एक ऐसा अणुशक्ति चालित वायुयान तैयार कर रहा है, जो आकार में वर्तमान वायुयानों से भिन्न है।

अणुशक्ति तथा कृषि

१९५८ में अमेरिका की ब्रुकहैवन नेशनल लेबोरेटरी के वैज्ञानिक अधिक अच्छे, रोगों का अधिक मुकाबला करने वाले तथा अधिक उत्पादन करने वाले पौधे उत्पन्न करने के लिए आणविक विकिरण का प्रयोग करते रहे

हैं। यह प्रयोगशाला इस प्रकार का अनुसन्धान करने वाला सबसे बड़ा केन्द्र है और इसके वैज्ञानिकों का मूल उद्देश्य समस्त देशों के किसानों को अपना उत्पादन बढ़ाने में सहायता दे कर संसार की खाद्य उपलब्धि में वृद्धि करना है।

परम्परागत विधियों द्वारा पौधों की नस्लों में सुधार करना बड़ा कठिन एवं खर्चीला कार्य है और इच्छानुसार पौधों की नई किस्मों को उत्पन्न करने में कई-कई वर्ष लग जाते हैं। किन्तु आणविक विकिरण द्वारा यह कार्य बहुत जल्दी हो जाता है। ब्रुकहैवन प्रयोगशाला में इस सम्बन्ध में अनेक परीक्षण होते रहते हैं। कई अन्य देशों और अमेरिका के सभी भागों के वैज्ञानिक बीज, टहनियां तथा समूचे पौधे इस कार्यक्रम के लिए ब्रुकहैवन भेजते रहते हैं।

इस सम्बन्ध में अनेक ऐसे उत्साहवर्धक परिणाम हासिल किये जा चुके हैं, जिनसे यह पता चलता है कि सब्जियों तथा फलों की किस्मों में काफी सुधार किया गया है।

क्या आप जानते हैं ?

१. देश भर में आकाशवाणी के २८ केन्द्र और ५५ ट्राँसमीटर हैं। इनसे भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं और ये देश भर में दो-तिहाई भाग में सुने जा सकते हैं।

२. तीन अक्टूबर १९५७ से 'विविध-भारती' नामक एक मनोरंजक कार्यक्रम आकाशवाणी से प्रसारित किया जाने लगा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत रोज सरल संगीत, नाटिकाएं, प्रहसन आदि सुनवाये जाते हैं। यह कार्यक्रम इतवार और छुट्टी के दिनों को छोड़कर बाकी दिनों में ६ घन्टा ४५ मिनट तक प्रसारित किया जाता है। इतवार तथा छुट्टियों के दिन यह कार्यक्रम ९ घन्टा ३० मिनट तक प्रसारित किया जाता है। इसमें रोज डेढ़ घन्टे का कर्नाटक संगीत का कार्यक्रम भी शामिल है।

३. आकाशवाणी, देश के लिए १६ प्रमुख भाषाओं, ४८ बोलियों और २९ आदिम जातीय बोलियों में कार्यक्रम प्रसारित करता है।

४. यहां से देश के लिए रोज ९ घन्टे ३६ मिनट तक भारत की १६ प्रमुख भाषाओं में ४७ समाचार बुलेटिन प्रसारित किये जाते हैं और विदेशों के लिए १६ भाषाओं में ३० समाचार बुलेटिन प्रसारित किये जाते हैं। यह कार्यक्रम ४ घन्टे ५४ मिनट का होता हैं।

५. गांवों में पंचायती रेडियो लगाने में जो खर्च बैठता है, उसका ५० प्रतिशत खर्च आकाशवाणी राज्य सरकार को देता है। यह सहायता, गांवों में रेडियो का प्रचार करने के उद्देश्य से दी जाती है।

६. आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक ३४ नाटक, १५ गीतिनाट्य और २० रूपक प्रसारित किये जा चुके हैं। इसमें हर बुधवार को भाषण का और शनिवार को संगीत का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। अच्छे नाटक या रूपकों का प्रादेशिक भाषाओं में रेडियो रूपांतर किया जाता है और उन्हें विभिन्न केन्द्रों से एक साथ प्रसारित किया जाता है।

७. आकशवाणी के पास एक अपना वाद्य-वृन्द है और इसमें २७ प्रकार के—जैसे सितार, सरोद, बांसुरी, तबला, पखावज बेला आदि बाजे शामिल हैं। आकाशवाणी वाद्यवृन्द में नये-नये प्रयोग कर रहा है और उसने कालिदास के 'शाकुन्तलम्' और 'मेघदूत' आदि काव्यों के आधार पर वाद्यवृन्द की रचना की है।

८. आकाशवाणी साहित्य, संगीत और नाटक आदि के विकास के लिए हर साल संगीत सम्मेलन, कवि सम्मेलन, साहित्य समारोह, सरदार पटेल स्मारक भाषणमाला, विश्वविद्यालय वादविवाद प्रतियोगिता तथा रेडियो सप्ताह आदि आयोजित करता है। देश के विभिन्न भागों में होने वाले संगीत सम्मेलनों का कार्यक्रम भी रेडियो से रिले किया जाता है।

तैरती हुई यह दुनिया

तैरती हुई दुनिया—शायद आप इस नाम को सुन कर चकित हो यह सोचने लगें कि सौरमण्डल में यह कौन सा नया ग्रह मनुष्य ने खोज निकाला है। परन्तु विश्वास रखिए कि यह कोई नया ग्रह नहीं। यह वही पुरानी जानी-पहचानी दुनिया है, जहां आप और हम जन्म लेते हैं, जीवन के चारों सोपानों का भोग करते हुये पुनः वहीं पंच तत्व में तिरोहित हो जाते हैं। न जाने कितने युगों से हम और आप इस दुनिया को वसुन्धरा, धरा, धरती, पृथ्वी आदि अनेक नामों से जानते आये हैं। सुनते हैं कि अब वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य अन्तरिक्ष में प्रवेश कर चन्द्रमा और मंगल आदि ग्रहों की यात्रा कर सकेंगे। भविष्य में जब कभी पहला मनुष्य मंगल की भूमि पर पैर रखेगा तो अपनी जननी जन्म-भूमि के दर्शन कर शायद विस्मय से चकित रह जाए। विशाल महासागरों की गोद में तैरती हुई यह धरती उसे सम्भवतः प्रिय का परस पा लाज से सिमटी नवोढा जैसी प्रतीत होगी। अनन्त जलराशि के मध्य डूबते उतराते भूमि-खण्डों को देख कर तब सहज ही मानव हृदय में यह कौतूहल उठेगा कि क्या इस दुनिया का नाम, जहाँ तीन चौथाई जल और केवल एक चौथाई भूमि है, पृथ्वी, वसुन्धरा इत्यादि क्यों रखा गया? सत्य तो यह है कि अभी बहुत कम लोगों ने यह अनुभव किया है कि पृथ्वी पर पनपने और फलने-फूलने वाली मानव-सभ्यता वस्तुतः महासागरों की दया पर निर्भर है, क्योंकि हमें इस विशाल और अनन्त जलराशि के गर्भ में छिपे हुये अनन्त भेदों की कोई जानकारी नहीं है। हम ने इस सम्भावना पर भी बहुत कम विचार किया है कि सम्भवतः पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व का इतिहास इन महासागरों के विशाल गर्भ में ही छिपा हो।

महासागरों का महत्व

मानव सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक चरणों में पृथ्वी की खोज करने के लिए मनुष्य ने महासागरों को चीरते हुये अनेकों साहसपूर्ण और दिल दहला देने वाली यात्राएं कीं। पहले मनुष्य का लक्ष्य समुद्रों की परिधि का ज्ञान प्राप्त करना था। कुछ समय बाद मनुष्य ने समुद्र के गर्भ में प्रवेश करना शुरू किया और जीव-शास्त्रियों ने समुद्र के गर्भ में विद्यमान जीवन का अध्ययन किया। समुद्रों के गर्भ में पनपने वाले पौधों और प्राणियों के नमूने एकत्र किए गए और नवीन उपकरणों की सहायता से वैज्ञानिक गण समुद्र-तल तक की खोज करने की ओर प्रवृत हुए। इस खोज के सिलसिले में उन्हें समुद्र के गर्भ में एवरेस्ट से भी अधिक ऊँचे पर्वत, शिखर और गहरे से गहरे गह्वर मिले और विचित्र आकार-प्रकार के जलचरों के अस्तित्व का पता चला। अब वैज्ञानिक इस से भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं और समुद्रतल में छेद कर पृथ्वी के उस भीतरी भाग के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे हैं, जो अत्यधिक गर्म और पिघली हुई अवस्था में बताया जाता है।

लेकिन इन प्रयत्नों के बाद भी हमें महासागरों के गर्भ में होने वाली हलचलों का पता नहीं चल पाया है। इस का कारण समुद्र की गहराई नहीं बल्कि उसका असीमित विस्तार है।

अब यह आवश्यक है कि विज्ञान महासमुद्रों के रहस्यों का उद्घाटन करने पर पूरा ध्यान केन्द्रित करे। समुद्र पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए भूतकाल में न जाने कितनी लड़ाइयां लड़ी गईं, परन्तु उन का कोई परिणाम नहीं निकला और आज भी समुद्रों पर किसी का अधिकार नहीं है, क्योंकि किसी अकेले राष्ट्र के पास इतने विशाल साधन नहीं है कि उन पर अपना नियन्त्रण रख सके। अतएव एक बात स्पष्ट है कि समुद्रों के गर्भ में छिपे हुये साधन-स्रोतों का उपयोग केवल पारस्परिक सहयोग द्वारा ही सम्भव है और इस प्रकार का सहयोग

स्थापित करने के लिए प्रभावशाली कानूनों और नियमों की आवश्यकता है। लेकिन इसके पूर्व भी हमें समुद्रों के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है।

महासागरों में अनुसन्धान

पिछले १०० वर्षों में जहाजरानी के क्षेत्र में अग्रणी राष्ट्रों ने समुद्रों के पर्यवेक्षण और अनुसन्धान की दिशा में बहुत सीमित प्रयत्न किए हैं। १९२५ के उपरान्त ही समुद्रों के अनुसन्धान के लिए वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग होना शुरू हुआ है। आज भी समुद्रों के अनुसन्धान में रत वैज्ञानिक उपकरणों के सज्जित जहाजों की संख्या ६० से अधिक नहीं है। सामुद्रिक-विज्ञान के विशेषज्ञों की संख्या भी अभी १ हजार से अधिक नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक कार्यक्रम के सिलसिले में पहली बार वह परस्पर विचार-विमर्श करने में समर्थ हुये हैं। निश्चय ही इस विचार-विनिमय के लाभजनक परिणाम होंगे।

अनेक कठिनाइयां

समुद्र-विज्ञान के अध्ययन में वैज्ञानिकों के समक्ष अनेकों कठिनाइयां हैं। अनुसन्धान-कार्य के लिए प्रयुक्त जहाज बहुत छोटे हैं, मौसम की ठीक जानकारी नहीं है, पर्याप्त धनराशि सुलभ नहीं होती, इत्यादि। फिर भी, पिछले कुछ वर्षों में काफी सूचना एकत्र की गई है।

अभी कई वर्षों तक समुद्र के अन्दर बहने वाली धाराओं के कारणों की असली जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं प्राप्त हो सकेगी। अभी तक यह अनुमान था कि हवाओं के कारण ही समुद्र के गर्भ में धाराओं का उद्भव होता है। लेकिन साथ में यह बात भी विचारणीय है कि उष्ण कटिबन्ध और विषुवत रेखा क्षेत्र का समुद्र जल काफी गर्म हो जाता है, जबकि शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित समुद्र का जल बहुत ठन्डा हो जाता है। अतः विज्ञान के नियमों के अनुसार समुद्र के अन्दर स्वतः ही वेगवती धाराओं का निर्माण होता है। यह बताना बहुत कठिन है कि अमुक धारा वायु प्रेरित है या भौतिक प्रक्रिया प्रेरित। समुद्र के अन्दर जारी इस प्रक्रिया और हलचल के कारण नीचे का जल ऊपर और ऊपर का जल नीचे आता रहता है। लेकिन कोई भी यह नहीं बता सकता कि यह प्रक्रिया किस रफ्तार से पूर्ण होती है।

कोई समय वह भी था जब कोई भी विचारशील मनुष्य यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। लेकिन अब यह मान्यता इतनी व्यापक हो गई है कि लोग यह भी भूल गए प्रतीत होते हैं कि पृथ्वी द्वारा अपनी धुरी पर घूमने की प्रक्रिया में किन शक्तियों का सृजन होता है। पृथ्वी के वायु-मण्डल और समुद्रों के अन्दर होने वाली हलचलों पर इन शक्तियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। इन्हीं हलचलों का पृथ्वी के मौसम पर इतना प्रभाव पड़ता है कि कोई भी ऋतु विशेषज्ञ यह नहीं बता सकता कि पृथ्वी के किसी भाग में उठने वाले तूफान की तेजी और अधिक बढ़ेगी या घट जायेगी।

जीवन और वनस्पति का विकास

दूसरा प्रश्न यह है कि समुद्रों में जीवन और वनस्पति का उद्भव और विकास किस प्रकार होता है। यदि समुद्र के गर्भ में उथल-पुथल की प्रक्रिया तेज हो तो समुद्र के अन्दर जीवन का अधिक अस्तित्व हो सकता है। समुद्र जल की ऊपरी सतह पर, जहाँ तक सूर्य की प्रखर किरणें प्रवेश पा सकती हैं, पोषण तत्वों का पूर्ण अभाव रहता है। लेकिन अधिक गहराई में रसायनिक पदार्थ बहुत असीमित मात्रा में मौजूद रहते हैं और उनका अनुपात घटने के बजाय निरन्तर बढ़ता ही जाता है। इसके अलावा न जाने कितने जलचर समुद्र के गर्भ में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं और सड़-गल कर जल में ही मिल जाते हैं। सूर्य-रश्मियों के संयोग से ये रासायनिक तत्व पुनः सक्रिय हो उठते हैं और उनकी रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप जीवन का वहाँ विभिन्न रूपों में विकास होता है। वस्तुतः समुद्र तल में रासायनिक पदार्थ और खनिज इतनी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं कि यदि समुद्र का

मंथन करना सम्भव हो, तो कृषि के लिए कृत्रिम खाद जुटाने की कोई आवश्यकता ही न रह जाए।

इस समय वैज्ञानिक समुद्रों का तीन प्रकार से अध्ययन करने में संलग्न हैं। प्रथम तो वह जहाजों की सहायता से समुद्रों की गहराई और विस्तार नाप रहे हैं। इस कार्य में संलग्न वैज्ञानिक समुद्रों से सम्बन्धित सभी समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं। यह एक बहुत विशाल कार्य है, जिसे पूरा करने में अभी कई वर्ष लगेंगे। समुद्रों का पर्यवेक्षण पूर्ण हो जाने पर हमें पहली बार समुद्रों के बारे में प्रमाणिक जानकारी सुलभ होगी, लेकिन इस जानकारी के साथ हम यह भी जानना चाहेंगे कि समुद्रों में कोई परिवर्तन हो रहा है या नहीं और यदि हो रहा है तो यह परिवर्तन किस प्रकार का है और किस गति से हो रहा है। उदाहरणार्थ समुद्रों के गर्भ में गर्मी बढ़ रही है या घट रही है, या कहीं ऐसा तो नहीं है कि बढ़ती हुई गर्मी के कारण वर्तमान हिमनद पिघल रहे हों और एक दिन ऐसा आ जाए जब संसार का बहुत सा समुद्र तटवर्ती क्षेत्र समुद्र के गर्भ में समा जाए। इन सब प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए एक नहीं बल्कि अनेक बार पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता पड़ेगी।

एक दूसरा ढंग, गणित पर आधारित सिद्धान्तों का सहारा ले कर समुद्रों का अध्ययन करना है। इस विधि के अन्तर्गत पृथ्वी और समुद्रों के नमूने तैयार कर और यह मान कर कि शक्ति का मूल स्रोत वायु धाराएं हैं; विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अमेरिका, स्कैंडिनेविया आदि देशों में बहुत से वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील भी हैं, परन्तु इस में विशेष सफलता नहीं मिली है। वस्तुतः समुद्रों के अध्यन में सब से बड़ी बाधा यह पड़ती है कि सभी समुद्र आपस में मिले हुए हैं। हम विभिन्न भूखण्डों से मिले समुद्रों को भले ही भिन्न नामों से पुकारें, परन्तु यथार्थ में ये सब समुद्र एक ही विशाल और असीमित जलराशि के भिन्न भिन्न नाम है और इस के गर्भ में रहने वाले जलचरों के लिए एक समुद्र से दूसरे समुद्र में जाने में कोई बाधा नहीं।

समुद्रों के गर्भ में कितनी मछलियां हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, क्योंकि खुले समुद्र के गर्भ में विचरण करने वाली मछलियों की संख्या का अन्दाजा लगाने का उपाय ही हमारे पास नहीं है। मछलियां किस प्रकार एक समुद्र से दूसरे समुद्र में प्रवेश करती हैं, यह भी एक रहस्य ही बना हुआ है। जब तक हमें समुद्र के उथल-पुथल के कारणों की पूरी जानकारी न हो जाए, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता।

वैज्ञानिकों को यह ज्ञात हो चुका है कि मीठे पानी तथा खारे पानी में ध्वनि-तरंगें समान रूप से प्रवेश पा सकती हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर कई उपयोगी उपकरण भी तैयार किए गये हैं परन्तु जहाज के हिलने-डुलने के कारण इन का प्रभावशाली ढंग से उपयोग नहीं हो पा रहा है। अतएव समुद्र-तल की बनावट इत्यादि के बारे में अभी कुछ भी निश्चित रूप से बता पाना सम्भव नहीं है। यदि समुद्र-तल और समुद्र-गर्भ में छिपे हुए पर्वतों और घाटियों तथा वहाँ एकत्र अन्य वस्तुओं का ठीक ठीक अध्ययन कर पाना सम्भव हो जाए तो पृथ्वी के जन्म का इतिहास बहुत कुछ मालूम किया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह है कि पृथ्वी पर जो भी वर्षा होती है, उस के मूल कारण ये समुद्र ही हैं। यदि मनुष्य मौसम पर नियन्त्रण पाना चाहता है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह समुद्रों के जल के वाष्पीकरण से ले कर पृथ्वी पर जल-वर्षा होने तक की प्राकृतिक प्रक्रियाओं की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर ले।

संक्षेप में, पृथ्वी से सम्बन्धित रहस्यों की खोज करने और उसके उद्भव का इतिहास मालूम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस असीम जलराशि के गर्भ में छिपे रहस्यों की पूरी जानकारी कर लें, जो हमारी इस दुनिया के तीन-चौथाई भाग में लहरा रही है और जो किसी भी समय किसी भी भूखण्ड को निगल जाने की क्षमता रखती है।

———

मानव निर्माण कला को चुनौती देने वाला जन्तु शिल्पकार : बीवर

श्री चैतन्य कश्यप

प्रकृति के खेल विचित्रताओं से परिपूर्ण हैं। जिनको देख कर विस्मित हो जाना पड़ता है। उत्तरी एशिया तथा अमेरिका में पाया जाने वाला एक स्तनपायी जन्तु, बीवर, इसका एक अद्भुत उदाहरण है, जिसकी शिल्पकारिता का परिचय आपको इस लेख से मिलेगा। और आपको यह जानकार आश्चर्य हुए बिना न रहेगा कि मानव निर्माण-कला को चुनौती देने वाला यह जन्तु शिल्पकार मनुष्य की ही भांति सुन्दर और सुरक्षित घर या किलेबन्दी का निर्माण कर सकता है, बांध बनाकर नदी की धारा को रोक सकता है तथा काफी लम्बी नहरें तैयार कर सकता है।

—संपादक

बीवर छोटे आकार के स्तनपायी जन्तु है, जो सुन्दर तथा सुरक्षित घर, बांध और नहरों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। आधुनिक इंजिनियरिंग की प्रणाली को भी मात करने वाली इनकी निर्माण-कला को देख कर सचमुच विस्मित हो जाना पड़ता है। ये बीवर उत्तरी एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में पाए जाते हैं। ये पहले यूरोप में भी पाये जाते थे, किन्तु अब पता चला कि यूरोप में ये लुप्तप्राय हो चुके हैं।

ये जन्तु शिल्पकार लकड़ी, टहनियों, मिट्टी व पत्थर आदि के जरिये नदियों में बांध बनाते हैं, जिससे कि शांत जल का क्षेत्रफल बढ़ जाय। ऐसे बांधों की लम्बाई प्रायः पांच सौ फीट होती हैं और ऊँचाई बारह या तेरह फीट। तली में बांध की चौड़ाई बीस फीट होती है, परन्तु ज्यों ज्यों बांध ऊपर उठता जाता है, उसकी चौड़ाई कम होती जाती है और इसीलिए वह सिरे पर केवल एक गज चौड़ा ही रह जाता है। कभी कभी तो इन्होंने एक मील लम्बे बांध भी बनाए हैं। धीरे धीरे बहने वाली नदी की धारा के ऊपर ये सीधा बांध बनाते हैं—पर यदि नदी तेज बहने वाली हुई तो ये बांध को कंगूरेदार बनाते हैं। ठीक उसी तरह जिस तरह वे पुराने रोम के कुछ प्रसिद्ध पुल बने हैं।

कनाडा के बीवर अच्छे शिल्पकार माने जाते हैं। वे बड़े बड़े पेड़ अपने दांतों से काट काट कर गिरा देते हैं। तने को काटना वह जड़ से लगभग एक फुट की ऊँचाई पर प्रारम्भ करते हैं और इसके लिए वे प्रायः ऐसे वृक्षों को चुनते है जो नदी की धार की ओर झुके हों जिससे कि कटने पर वे ठीक स्थान पर गिरें और इस प्रकार बांध बनाने में उन्हें सुविधा हो।

गिलहरी, चूहे व खरगोश जैसे अन्य कृन्तक (रौडेन्ट) जन्तुओं की भांति बीवर के सामने दांत रुखानी की भांति तेज होते हैं और वे सदैव बढ़ते रहते हैं, जिस से कि लगातार कतरते रहने पर भी वे कभी छोटे न हों। बीवर की पूंछ भी निराली होती है। वह कारीगर की करनी की भांति चपटी होती है। इसीलिए पहले लोगों का मत था कि वह बांध व घर में पलस्तर करने के काम आती है। परन्तु यह बात सत्य नहीं। शायद उसका प्रयोग बीवर को जल में शीघ्रता से ऊपर लाने में होता है, जिससे कि वह पानी के बाहर आकर सांस ले सके अथवा काम कर सके। प्रायः मकान बनाने के समय वह सीधा दो पैरों पर खड़ा हो जाता है। उसकी पूंछ उस समय भी उसे सहारा देती है।

बांध के ऊपर शान्त जल एक झील के रूप में

परिणत हो जाता है। यह झील शताब्दियों तक ज्यों की त्यों बनी रहती है, यहां तक कुछ समय के बाद कीचड़ व वनस्पति के सड़सड़ कर भरने के कारण यह समतल होने लगती है और शताब्दियों के बाद यह केवल पूर्णतया समतल ही नहीं हो जाती वरन् घास आदि भी इसमें पैदा हो जाती है। ऐसे मैदान को 'बीवर-मैडो' कहते हैं। कनाडा में कई 'बीवर-मैडो' का पता लग चुका है।

कनाडा के बीवर झुन्ड में रहते हैं। इसलिए किसी भी एक स्थान पर इनके 'गांव' के 'गांव' बस जाते हैं। प्रत्येक गांव 'लोजिस' (निवास स्थान) का एक समूह होता है। ये जल में बने होते हैं ! प्रत्येक 'निवासस्थान' में लगभग छः प्राणी होते हैं—माता, पिता और चार बच्चे। जब यह बड़े होते हैं और घरों में रहने की जगह नहीं रहती तब नए गृहों के निर्माण का प्रश्न उठता है। इनका निवासस्थान गुम्बदाकार होता है और उसके नीचे एक बिल होता है। घर में जाने का एक रास्ता जल में बना रहता है, जिससे कि संकट के समय वे जल में निकल जायं या जल में यदि कोई खतरा दिखाई दे तो वे अपने निवासस्थान में आ जायें। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि यह द्वार सदा जल में रहे और इसीलिए वे बांध बना कर जल को रोक देते हैं।

मकान या किलेबन्दी ?

बीवर के मकान केवल घर ही नहीं है बल्कि किले-बन्दी के समान है। आराम व सफाई से जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त वे सुरक्षा का भी साधन प्रस्तुत करते हैं। पुराने व अच्छे ढङ्ग से बने हुए बीवर के मकान को आसानी से खोदना मनुष्य के लिए भी सम्भव नहीं फिर जानवरों की क्या मजाल कि वे उसे खोद डालें ! यदि कोई व्यक्ति बीवर की तलाश में वहां पहुँच जाय और मकान खोदना शुरू भी करे तो इसमें काफी समय लग जायगा और इस बीच बीवर अपने बाल बच्चों समेत न जाने कहां से कहां निकल जायगा !

गृह-निर्माण प्रारम्भ करने से पहले बीवर उपयुक्त स्थान ढूंढ़ते हैं। इसके लिए वे कभी तो किनारे से काफी दूर जल में पांच छः फीट से भी अधिक गहराई में स्थान चुनते हैं और कभी नदी व झील के तट पर। किन्तु वे इस बात का ध्यान हमेशा रखते हैं कि मकान का एक द्वार जल के भीतर इतना नीचे रहे कि यदि शीत काल में बर्फ भी जम जाय तो दरवाजे के सामने का जल न जमने पाए।

वे सबसे पहले जलद्वार बनाते हैं, उसके बाद छिलकों को खाने के बाद बची हुई लकड़ी को वे जल की सतह से नीचे गिरा देते हैं। वे इधर-उधर से लकड़ियां एकत्र करके उन्हीं पर तब तक गिराते जाते हैं जब तक इन लकड़ियों का ढेर एक टापू सा न बन जाय। जल द्वार के चारों ओर वे छिली छिलाई लकड़ी एकत्र करते हैं और टापू की परिधि के ऊपर दीवार खड़ी करना प्रारंभ करते हैं। इसके लिए पेड़ भी गिरा दिए जाते हैं और उनकी टहनियों व शाखाओं से दीवारें बनाई जाती हैं। जब दीवार दो या तीन फीट ऊँची हो जाती है उसके बाद ज्यों ज्यों दीवारें ऊँची होती जाती है त्यों-त्यों शिरोभाग का छेद छोटा होता जाता है और मकान गुम्बदाकार। जाड़ा प्रारम्भ होते-होते ये कीचड़ और मिट्टी भी जल की तली से ले आते हैं और दीवारों पर उसे जमाते हैं उनका वह कार्य कई वर्ष जारी रहता है और यह तब मोटी दीवार वाला सुरक्षित घर बन पाता है।

पहले लोगों का विचार था कि बीवर के मकान के अन्दर कई कमरे होते हैं किन्तु यह भी सत्य नहीं है। उसमें केवल एक ही कमरा होता है। यह प्रायः दो या तीन फीट ऊँचा होता है और तीन से पांच फीट चौड़ा-यह गोलाकार होता है अथवा ऐसा ही किसी और शक्ल का उसका आकार भी अन्दर रहने वाले प्राणियों की संख्या पर आधारित है। यदि रहने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है तो दीवारों को खोद कर रहने योग्य स्थान बना लिया जाता है। घर में कई प्राणी एक साथ रहते हैं, इसलिए आवश्यक है कि अन्दर हवा का आवागमन ठीक हो। अतः ठोस से ठोस मकानों में भी हवा जाने के लिए प्रबन्ध होता है प्रायः

ऊपर रोशनदान की भांति छेद होता है जिससे लोगों ने जाड़े के दिनों में भाप निकलते देखा है।

बीवर गृह-निर्माण कार्य हमेशा रात्रि के समय करते हैं इसलिये इन्हें काम करते देखने के लिए वैज्ञानिकों को बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ी है। कभी कभी सायंकाल को काफी देर में या तड़के पौ फटने के पहले इन्हें पेड़ काटते अथवा उन्हें घसीटते देखा जा सकता हैं। ये अपने दांतों की मदद से लकड़ी के लट्ठों तक को घसीट कर दीवारों पर चढ़ा लेते हैं।

नहर निर्माण

बीवर की निर्माण कला में नहर सबसे महत्वपूर्ण है। इसकी बनावट इतनी दोष रहित होती है कि इस जन्तु शिल्पकारी का सबसे अच्छा उदाहरण मानना ही पड़ता है। मोन्टाना में पाई गई एक बीवर की नहर अपनी छोटी शाखाओं समेत १.१४५ फीट लम्बी थी। मुहाने पर यह ६ फीट चौड़ी थी और जल की गहराई १ फीट ८ इन्च थी।

ऐसा कहा जाता है कि बीवर की इस निर्माण कला में उनकी अन्तर्जात प्रवृत्ति का विशेष हाथ है। किन्तु छोटे कारीगर प्रायः परम्परा से प्राप्त अपनी प्रकृति प्रेरणा का प्रयोग नहीं करते। वे अपने आपके विषय में सोंचते हैं, स्थिर परम्परा से अपने आपको दूर ले जाने का प्रयत्न करते हैं और ऐसी मानसिक स्थिति प्रकट करते हैं जिनसे यह संकेत मिलता। वे अपना विकास करने में पूर्णतया समर्थ हैं। परिवार के वृद्ध सदस्य अपने बच्चों को निर्माण-कला की शिक्षा देते हैं। यदि सारा काम केवल अन्तर्जात प्रकृति की प्रेरणा से होता तो उसमें शिक्षा की क्या आवश्यकता थी? इससे सिद्ध होता है कि बीवर अपनी बुद्धि और अनुभव का प्रयोग करते हैं।

विषाणु ही कैंसर रोग का कारण है;

(शेष पृष्ठ १७ का)

इस सिलसिले में डा० बर्टन ने ताहिती नामक बस्ती का जिक्र किया। वहां पिछले ७ वर्षों में मच्छरों के विनाश के साथ-साथ हैट्राजन का प्रयोग करके फिलेरिया-सिस को फैलने से प्रायः पूरी तरह रोक दिया गया है। ऐसा इसलिए हो सका, क्योंकि एक तो मालिकों की ओर से बहुधा यह कह दिया गया कि जो लोग इस दवा के प्रयोग से बिमार पड़ेंगे उन्हें बीमारी के दिनों का भी वेतन मिलेगा, और दूसरे लोग स्वयं भी इस भयानक रोग से बचना चाहते थे। उन्होंने मच्छरों के स्थानों को खत्म करने में मदद दी और दवा के कारण होने वाली परेशानी के बावजूद उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दिमाग का काम करने वाली मशीनें

ले०—प्रोफेसर के० चन्द्रशेखरन्

क्या मशीनें सोच सकती हैं ? क्या ये कुछ सीख सकती हैं ? क्या ये बुद्धि पूर्वक काम कर सकती हैं ? क्या ये मनुष्य के दिमाग की बराबरी कर सकती हैं ? ये प्रश्न दर्शन के विद्यार्थियों को सालों से परेशान करते आये हैं। आज इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए हम भी उत्सुक हो रहे हैं, क्योंकि अब हम सुनते हैं कि ऐसी मशीनें बन गयी हैं, जो गाना सुनाती हैं, कई भाषाओं में अनुवाद कर लेती हैं, चिट्ठी पत्री कर लेती हैं, आदमी के साथ खेल लेती हैं और इतना ही नहीं, गोली भर के निशाना भी साध लेती हैं। ये तेजी से काम करने वाली स्वाचालित इलेक्ट्रोनिक मशीनें हैं। इन्हें देख के सोचना ही पड़ता है कि क्या मशीनें सोच भी सकती हैं ?

आज से २० साल पहले ब्रिटिश अर्थशास्त्री, श्री ए० एम० ट्यूरिंग ने इस विषय पर विचार किया। उन्होंने इस प्रश्न को इस तरह बताया—'क्या मशीन भी आदमी की ही तरह सोच सकती है ? उन्होंने जवाब देने वाली एक मशीन बना डाली। यह इलेक्ट्रोनिक से चलती थी। एक आदमी दूरमुद्रक (टेलीप्रिन्टर) द्वारा मशीन को संवाद भेजता था और वह उसी से उसको जवाब दे देती थी। यह खेल बड़ा मनोरंजक था। कुछ सवाल और जवाब देखिये—

प्रश्न—२१ और २३ को जोड़ो ?

उत्तर—(एक सेकण्ड से भी कम में) ४४

प्रश्न—१२३४५६ को इसी संख्या से गुणा करो ?

उत्तर—(एक मिनट या इससे कुछ अधिक में) १५ १२६ १२ १२ १२ (गलत)

प्रश्न—एक कविता बनाओ ?

उत्तर—आप जानते हैं, मैं यह नहीं बना सकती, कुछ और पूछिये।

प्रश्न—आपको क्या खाना पसन्द है ?

उत्तर—मछली और कतले (चिप्स)

यदि आदमी ठीक तरह से सवाल न पूछ सके या पूछने में काफी समय ले या दूरमुद्रक में कोई गड़बड़ी आ जाए तो मशीन ठीक जवाब न दे पायेगी। पर अब प्रश्न यह है कि क्या ऐसी भी मशीन बनायी जा सकती है, जो ठीक-ठीक जवाब देती हो ?

इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर (गणित यंत्र)

अब इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर नामक इस मशीन पर विचार किया जाय। इसकी तुलना मनुष्य के मस्तिष्क से की जा सकती है। इसके तीन भाग होते हैं—संचय, संचालक और नियंत्रक। संचय में सूचनाओं का भंडार रहता है। इसमें भी तीन भाग होते हैं। एक भाग उस कागज के समान होता है, जिस पर मनुष्य लिखता और रखता है। दूसरा भाग उस प्रणाली के समान है, जिसके अनुसार मनुष्य हिसाब लगाने का काम करता है और तीसरा भाग इसकी स्मरण शक्ति का काम करता है। इसी तरह मशीन का संचालक भाग भी जोड़ने घटाने, गुणा करने और भाग देने के सभी कार्य (जैसा कि उसे बताया गया हो) करता रहता है। नियंत्रक भाग बताता है कि मशीन ठीक चल रही है और सही जवाब दे रही है।

यह मशीन केवल संख्याओं में काम करती है। इसमें आंकड़े लगा दिये जाते हैं। ये कागज में छोटे-छोटे छेद करके बनाये जाते हैं और वह उपर्युक्त तरीके से अंको में ही जवाब दे देती है, जिसे बाद में दूर मुद्रक यन्त्र शब्दों का रूप दे देता है।

मशीन से काम लेना

इलेक्ट्रोनिक कम्पूटर अकेले कुछ नहीं कर सकता, उसे आंकड़े देने पड़ते हैं और उससे एक विशेष तरीके

से काम लेना पड़ता है। इस काम लेने को यांत्रिक भाषा में 'प्रोग्रामिंग' कहते है। इसे केवल आदमी ही कर सकता है। जहां एक बार मशीन को प्रोग्राम मिला, वह कितना ही बड़ा और परिश्रम का काम क्यों न हो, मशीन इसे मिनटों में कर डालेगी, पर उसका संचय विभाग पर्याप्त रहना चाहिए। बिना मनुष्य की सहायता के प्रोग्राम लेने वाली मशीन अभी नहीं बनी है। इसके लिए नये ढंग से सोचना होगा और नये उपकरण ईजाद करने होंगे। इसकी सफलता भविष्य पर निर्भर है।

यांत्रिक प्रज्ञा

यदि किसी मशीन को प्रौढ़ व्यक्ति के दिमाग की तरह काम करना हो तो पहले ऐसी मशीन बनानी होगी, जो बच्चे के दिमाग की तरह काम करे और जैसे बच्चे का दिमाग बढ़कर प्रौढ़ होता है, उसी प्रकार नये पुरजे जोड़कर इसे भी प्रौढ़ करना होगा। कुछ काम तो वह आदमी से अच्छा करेगी-जैसे किसी पाठ को याद करना। फिर भी वह मशीन आदमी के दिमाग की बराबरी कर सकेगी यह कहना कठिन है। क्योंकि मशीन को जैसा प्रोग्राम मिलेगा, वह वैसा काम करेगी, पर आदमी तो अपनी शिक्षा, दीक्षा, अध्ययन, स्मृति और संस्कारों के आधार पर काम करता है। मशीन के पास ये सब नहीं हो सकते। वैसे भी हर आदमी की बुद्धि में फरक होता है, क्योंकि कहा है-'मुन्डे मुन्डे मतिर्भिन्ना'। इसी तरह मशीन से अलग-अलग जवाब नहीं मिल सकता। वह वही जवाब देगी, जिसका उसके पास संचय होगा।

हम कह सकते हैं कि यांत्रिक प्रज्ञा व्यवहारिक प्रज्ञा की बराबरी नहीं कर पायेगी, क्योंकि यह मशीन गणित के सिद्धांतों के अनुसार बनती है और इसे प्रोग्राम देना कुशल गणितज्ञों का काम है। यह प्रश्न का उत्तर दे सकती है, पर एक उत्तर का दूसरे से सम्बन्ध नहीं जोड़ सकती। यह नया विचार नहीं दे सकती है। इसमें कितने ही शक्तिशाली इलेक्ट्रोन क्यों न लगे हों, उत्तर गलत होने की सम्भावना बनी रहती है और कभी कभी मशीन जवाब ही नहीं देती। मनुष्य की प्रज्ञा पर सबसे अधिक प्रभाव पुरानी याद का पड़ता है, जिसका मशीन के पास अभाव है।

अद्भुत शक्ति

इतना होने के बावजूद इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर की कार्यक्षमता मनुष्य की शक्ति से कई गुना अधिक है। यह आदमी से कई लाख गुना अधिक तेजी से काम करती है, और लाखों और करोड़ों तरह के हिसाब, जिसे एक कर्मचारियों का पूरा जत्था जीवन भर न लगा पाता, मिनटों में कर डालती है। मौसम की भविष्यवाणी करने, हवाई मार्ग को नियंत्रित करने और नये तरह के विमानों और राकेटों की डिजाइन में यह मशीन अद्वितीय होगी। हमारे कार्यों-व्यापार और उद्योग में यह क्रांति ला सकती है। इसने स्वचालित यंत्र युग का श्रीगणेश कर दिया है।

स्वचालित यन्त्र युग

औद्योगिक क्रांति के बाद मनुष्य के हाथों का काम मशीनें करने लगीं। अब इसी तरह मनुष्य के दिमाग का काम भी मशीनें करने लगेंगी। यह विचार एक अमेरिकन गणितज्ञ श्री नौबर्ट वीनर ने प्रकट किया है। इन मशीनों के आने से आदमियों को काम देने की नयी समस्याएं उठ खड़ी होंगी। आदमी की जगह मशीनें लेने लगेंगी। इससे बेकारी बढ़ेगी। इसलिए यह काम धीरे-धीरे करना होगा अर्थात् आदमी और मशीन में मेल मिलाना होगा और इसे करने में समय लगेगा।

इस मशीन की तुलना मनुष्य के दिमाग से की जा सकती है। जिस प्रकार दिमाग का नियन्त्रण संवाहिकाओं (नर्व या रगें) द्वारा होता है, उसी तरह मशीन का नियंत्रण विद्युत प्रवाहिकाओं द्वारा किया जाता है। फिर भी मशीन दिमाग की बराबरी नहीं कर सकती, क्योंकि मस्तिष्क या दिमाग की जो बनावट है, वह मशीन से कई लाख गुना जटिल या पेचीदा है। मस्तिष्क या दिमाग प्रणाली की संवाहिका नाड़ियों का वजन कठिनाई से एक पौंड होता है। पर मशीनों में इतने तारों का जाल बिछाने से वह पचासों मन भारी हो जाएगी। मस्तिष्क में प्रवाहिकाओं से जो खून जाकर वापस आता है, उसकी गर्मी बहुत थोड़ी ही बढ़ती है, पर मशीन सौ किलोवाट बिजली पचा जाती है, और गर्म हो जाती है। हो सकता है, इसका कारण हमारे ज्ञान की कमी हो, पर मशीन का अध्यन करते-करते एक दिन हम मस्तिष्क की क्रिया को भी समझ लेंगे।
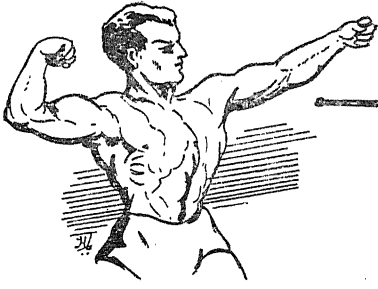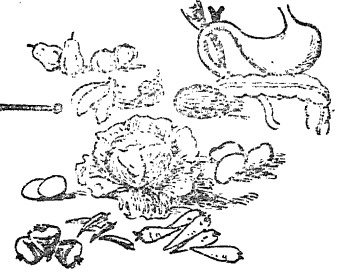
विषाणु ही कैन्सर रोग का कारण है;

ले० — नेट हैजेल्टाइन

हो सकता है, विषाणु के कारण ही मनुष्य कैन्सर रोग के आखेट बनते हों।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस तथ्यमय सम्भावना पर हाल ही में बैथिस्डा (मैरिलैन्ड) स्थित अमेरिकी स्वास्थ्य-विभाग की एक अनुसन्धानात्मक शाखा 'नैशनल इन्स्टिट्यूट औव हैल्थ' में सम्पन्न अध्ययनों के मध्य पुनः प्रकाश डाला गया। अनवरत रूप से १० वर्ष तक पशुओं की रसौलियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के उपरान्त ही उक्त जानकारी उपलब्ध की गई है। मानव-कैन्सर के इस मायावी कारण का पता लगाने के उद्देश्य से ही उक्त अनुसन्धान-कार्य का आयोजन किया गया।

नवीनतम परीक्षणों से यह पता चला है कि यदि वास्तव में विषाणु ही कैन्सर की उत्पत्ति के कारण हैं, तो इस तरह के विषाणु से केवल मनुष्य को ही कैन्सर हो सकता है। हाल के परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि कैन्सर-ग्रस्त पशु के विषाणुओं से केवल उसी प्रकार के विशिष्ट पशुओं को ही कैंसर होता है, अन्यथा अन्य प्राणियों पर उनका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है।

इन परीक्षणों से यह भी पता चला है कि जिन विषाणुओं के कारण मनुष्य को कैन्सर होता है, वे उनके अन्य रोगों, जैसे शिशु-पक्षाघात, कनपेड़े या जुकाम, के विषाणुओं से भिन्न जाति के होते हैं। संक्रामक रोगों के ये विषाणु जब एक बार मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं तब वे व्यापक रूप से बढ़ते और फैलते हैं। मनुष्य में यदि कैन्सर के विषाणु हों, तो वे अपेक्षाकृत निष्क्रिय अवस्था में ही रहते हैं और ये संवेदनशील व्यक्तियों को छोड़ कर शेष सभी मनुष्यों में जीवित रह सकते हैं।

नैशनल कैन्सर इन्स्टिट्यूट में अनुसन्धान-विभाग के अध्यक्ष, सहायक निदेशक डा० जी० ब्रारोज माइडर ने बताया कि विषाणुओं के बारे में हुई नई खोजों के फलस्वरूप यह धारणा बन गई है कि 'कैन्सर के कारण के रूप में विषाणु कैन्सर सम्बन्धी अनुसन्धान में एक तथ्यपूर्ण सम्भावना है।' वे इस संदर्भ में नैशनल कैन्सर इन्स्टिट्यूट के शरीर-विज्ञान शास्त्री डा० डब्ल्यू० के० ब्रायन का उल्लेख कर रहे थे, जिन्होंने चूजों में रसौली रोग को जन्म देने वाले विषाणुओं के सम्बन्ध में १४ वर्षों तक अनुसन्धान किया है।

१९५७ के अन्त में श्री ब्रायन ने अपनी खोजों का विवरण 'टैक्साल रिपोर्ट्स औन् बायोलौजी एन्ड मैडिसन' पत्रिका में प्रकाशित किया। इस पत्रिका को मुख्यतः अनुसन्धानकर्त्ताओं में ही वितरित किया जाता है।

श्री ब्रायन के अध्यनों से यह पता लगा है कि प्रयोगशाला में तैयार हुये मुर्गी के बच्चे विषाणुओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील और फलस्वरूप प्रतिरोधक-शक्ति रखने वाले होते हैं। अनुसन्धानकर्त्ता ने यह रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि सामान्य चूजों की अपेक्षा इन चूजों में

रसौली (ट्यूमर) के विकसित होने के लिए १०,००० गुना अधिक विषाणु चाहिये।

यदि यह खोज कैन्सरग्रस्त मनुष्यों के बारे में भी लाभकारी सिद्ध हुई, तो इससे सामान्यतया प्रमाणित इस सिद्धान्त की सफल विवेचना की जा सकेगी कि कैन्सर एक संचारी रोग के रूप में पिता से अथवा माता से पुत्र अथवा पुत्री को प्रभावित करता चला जाता है। उदाहरणार्थ, छाती के कैन्सर से ग्रस्त महिला की पुत्री को परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा छाती में कैन्सर होने की सम्भावना अधिक रहेगी।

श्री ब्रायन के परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि यदि शुरू में चूजों को अधिक मात्रा में विषाणु की खुराकें दी जायें, तो चाहे उन का वंश भले ही कैन्सर रोग से मुक्त रहा हो किन्तु उन्हें कैन्सर फिर भी हो सकता है। इस से यह पता चलता है कि चाहे किसी परिवार में पहले कैन्सर न भी हो, तो भी उसे कैन्सर हो सकता है। निरन्तर अनुसन्धान करने के बाद, श्री ब्रायन ने यह दावा किया कि संभवतः यह सिद्ध हो सके कि कैन्सर—संक्रमण का अनुपात अर्थात् उस के फैलने की गति शुरू की खूराक या विषाणुओं के प्रारम्भिक प्रभाव पर ही निर्भर करती है। हो सकता है कि इस तरह के अनुसन्धान कार्य से उन पुष्टिकारक तथा प्रन्शवक तत्वों का भी ज्ञान हो जाये, जो कैन्सर रोग की वृद्धि अथवा ह्रास में सहायक सिद्ध होते हैं।

यदि इस तरह का परीक्षण मनुष्य पर किया जा सका, तो निष्कर्षों से सम्भवतया यह पता लग सके कि अत्यधिक धूम्रपान करने वाले व्यक्ति कैन्सर के शिकार क्यों बन जाते हैं, जब कि यह भी देखा गया है कि अपेक्षाकृत उन से भी अधिक सिगरेट पीने वाले व्यक्ति कैन्सर से मुक्त रहते हैं।

भविष्य में यदि यह सिद्ध हो गया कि विषाणुओं के कारण ही मनुष्य को कैन्सर होता है, तो उक्त खोज अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी। अन्य भयंकर रोगों के विषाणुओं के आक्रमण से बचने के लिए मनुष्य ने पहले ही कई तरह के टीके तैयार कर लिए हैं। इसलिए मानव को आतंकित करने वाले कैन्सर रोग के विषाणुओं को प्रथमतः तो यदि अलग किया जा सका और पुनः यदि इस बात की पुष्टि हो गई कि वे ही कैन्सर रोग के कारण हैं तो मानव की रक्षा के हेतु कुछ उन्हीं विषाणुओं को प्रयुक्त किया जा सकेगा।

'नैशनल कैन्सर इन्स्टिट्यूट' अमेरिका के 'नैशनल इन्स्टिट्यूट ऑव् हैल्थ' की उन सात शाखाओं में से एक है, जहां विषाणुओं के बारे मे अनुसन्धानात्मक विशद अध्ययन किया जाता है।

फिलेरियासिस रोग के प्रसार की रोकथाम

भारतीयों के स्वास्थ्य और उन की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालने वाले मच्छर-जनित संक्रामक रोगों में मलेरिया के बाद सब से अधिक विनाशक रोग फिलेरियासिस है।

इस देश में यह रोग सब से अधिक केरल के तटवर्ती प्रदेशों में होता है। वहां इस भयानक रोग ने लाखों लोगों को अपंग कर डाला है। अनेक अन्य राज्यों, मुख्यतः उड़ीसा में भी यह रोग काफी पाया जाता है।

अपंग कर देने के अलावा, यह रोग उन लोगों के लिए सामाजिक अभिशाप भी है, जिन्हें बीमारी के बढ़ जाने पर फीलपांव हो जाता है। अनेक क्षेत्रों में इस रोग का शिकार होने वाली लड़कियों का विवाह तक नहीं हो पाता।

डा० एन० जी० एस० राघवन के नेतृत्व में, दिल्ली की मलेरिया इन्स्टिट्यूट के फिलेरियासिस-डिवीजन के मातहत पिछले पांच वर्षों से राष्ट्र भर में नियन्त्रणकारी कार्यवाहियों का विस्तार किया जा रहा है। किन्तु फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छरों के सम्बन्ध में कुछ आधार भूत बातों का अभी तक पता नहीं चला है। इस के अलावा, इस रोग के निदान सम्बन्धी कुछ पहलुओं का भी अभी पता लगाना बाकी है। उदाहरण के तौर पर, केरल के तटवर्ती इलाकों तथा अन्य प्रदेशों में फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छरों की आयु और प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में अभी विस्तारपूर्वक पता लगाना होगा, हालांकि

कुछ वर्ष पहले कुछ भारतीय अनुसन्धान-कर्त्ताओं ने इस विषय में महत्वपूर्ण प्रारम्भिक खोजबीन की थी।

मलेरिया इन्स्टिट्यूट के फिलेरियासिस-डिविजन को इस खोजबीन में इन दिनों दो अमेरिकी विशेषज्ञ सहयोग दे रहे हैं। इन दोनों विशेषज्ञों की सेवाएं भारत-स्थित अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन द्वारा प्रदान की गई हैं।

डाक्टरी कीट-विद्या विशारद डा० जौर्ज जे० बर्टन जुलाई, १९५८ में और जन-स्वास्थ्य चिकित्सक डा० पीटर जी० कौन्टेकौस अक्टूबर, १९५८ में इस देश में आये थे। इन दोनों विशेषज्ञों ने अपना कुछ समय दिल्ली की मलेरिया इन्स्टिट्यूट में और कुछ समय एर्नाकुलम (केरल) स्थित मलेरिया इन्स्टिट्यूट के फिलेरियासिस प्रशिक्षण-केन्द्र में बिताया।

रोग का पूरा विवरण

हाल में मद्रास पहुंचने पर, इन विशेषज्ञों ने लेखक को इस रोग का पूरा विवरण दिया।

संक्रमण-चक्र मोटे तौर पर इस प्रकार-चलता है: जिस व्यक्ति को यह बीमारी लगती है, उस के शरीर में पतले और लम्बे कीड़े पलने लगते हैं। ये कीड़े रोगी के रक्त में आम तौर पर रात के ८ बजे से ले कर प्रातः ४ बजे तक गतिशील रहते हैं।

फिलेरियासिस फैलाने वाला मच्छर इस अवधि के दौरान रोगी मनुष्य को काट कर उसके शरीर से भ्रूण ग्रहण कर लेता है। ये भ्रूण एक से दो सप्ताह के भीतर मच्छर की छाती में पल कर छूत फैलाने वाले डिम्भ का रूप धारण कर लेते हैं। जब यह मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो मच्छर के मुख के आगे बढ़े हुए भाग से यह डिम्भ निकल कर उस व्यक्ति की त्वचा से होकर शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। एक साल या उससे कम समय में, डिम्भ बढ़ कर कीड़े बन जाते हैं। ये कीड़े मनुष्य की लसिका वाहिनियों और ग्रन्थियों में रहते हैं।

शुरू में फिलेरियासिस का रोगी अक्सर ज्वर तथा अन्य तकलीफों से पीड़ित रहता है। यदि रोग बढ़ जाये तो फीलपांव हो जाता है। रोग की इस उग्र अवस्था में शरीर के अंग असाधारण रूप से फूल जाते हैं। ऐसा कीड़ों के शरीर से निकले स्राव द्वारा उत्पन्न अवरोध से होता है।

८० से ९० प्रतिशत तक यह रोग घरों में पलने वाले साधारण मच्छरों द्वारा फैलता है। मिट्टी के तेल को छोड़, सामान्य कीटमार दवाएं इन मच्छरों को मारने में सफल नहीं होतीं। दस से बीस प्रतिशत तक यह रोग मैन्सोनिया नामक एक अन्य किस्म के मच्छर से फैलता है। ये मच्छर जलीय वनस्पतियों में पैदा होते हैं।

'राष्ट्रीय फिलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम' के अन्तर्गत मुख्यतः फिलेरियासिस फैलाने वाले मच्छरों को नष्ट करने तथा पीड़ित क्षेत्रों में रोगियों के उपचार का प्रयत्न किया जाता है। अभी तक इस रोग की रोकथाम करने वाली कोई दवा नहीं निकली है।

हैट्राजन की प्रतिदिन २ गोलियाँ

फिलेरियासिस-उपचार आन्दोलनों में लोगों को 'हैट्राजन' नामक दवा की २ गोलियां प्रतिदिन के हिसाब से पांच दिन तक दी जाती हैं। ख्याल है कि दवा की इस मात्रा का प्रभाव एक वर्ष तक रहता है। इस विधि द्वारा नये रोगियों में रोग बढ़ने की संभावना कम हो जाती है, क्योंकि यह विश्वास किया जाता है कि यह दवा शरीर में घूमने वाले माइक्रोफिलेरिया नामक सब कीड़ों को मार डालती है। इस लिए मनुष्य का रक्त चूसते समय मच्छर इन कीड़ों को ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार रोग का प्रसार भी रुक जाता है।

अमेरिकी टैक्निकल सहयोग मिशन ने बहुत बड़ी मात्रा में यह दवा प्रदान की है। पीड़ित इलाकों में यह दवा लोगों को मुफ्त दी जाती है।

इस दवा के सेवन से, रोगी को अक्सर एक से तीन दिन तक चारपाई पर पड़े रहना पड़ता है। यही वजह है कि सभी लोग इस दवा का सेवन करने को तैयार नहीं होते, क्योंकि अधिकांश व्यक्ति बिना कमाये घर पर नहीं पड़े रह सकते।

(शेष पृष्ठ १२ पर)

ध्रुव क्षेत्र की प्रकाश धारायें

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में अनेक राष्ट्रों के वैज्ञानिक उन ध्रुव क्षेत्रीय प्रकाशधाराओं के सम्बन्ध में नया ज्ञान प्राप्त करने में सहयोग प्रदान कर रहे हैं, जो सुदूर उत्तर और सुदूर दक्षिण में दृष्टिगत होती है।

ये प्रकाशधारायें प्रायः दूरगामी रेडियो-संचारों में बाधा डालती हैं। यह संभव है कि इन प्रकाशधाराओं के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त कर ऐसी विधियां खोजी जा सकें, जिनसे इस प्रकार की बाधाएं समाप्त हो जायं।

इन प्रकाशधाराओं द्वारा जो बधाएं उपस्थित होती हैं, उनसे रेडियो-संदेश कभी कभी विकृत और अस्पष्ट बन जाते हैं। कभी कभी ये रेडियो लहरियों को इतना अधिक अपने में सोख लेती है कि ये संदेश अपने निश्चित लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते।

उत्तरी आकाश में इन प्रकाशधाराओं को देखने पर साधारण दर्शक इस बात को नहीं समझ सकता कि उत्तरी एटलान्टिक में उड़ रहा कोई चालक इनके फलस्वरूप गम्भीर संकट में पड़ सकता है या उसके रेडियोसैट के संचालन में बाधा उपस्थित हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में दक्षिणी तथा उत्तरी ध्रुव प्रदेश में इन प्रकाशधाराओं के विधिवत् अध्ययन एवं निरीक्षण की व्यवस्था की गई है। ध्रुवीय क्षेत्रों में समय का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने की दृष्टि से एक मुख्य प्रयत्न किया जाएगा। यदि यह बात सिद्ध की जा सके कि प्रकाश की धारायें एक साथ ही सर्वत्र फैलती हैं, तो वैज्ञानिक सूर्य से आने वाले उन कणों के उद्गम और स्वरूप के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जिनके फलस्वरूप ये प्रकाशधाराएं उत्पन्न होती हैं। साथ ही पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्रकाश की ये धाराएं तथा विद्युत युक्त लहरियाँ सूर्य से आने वाले विद्युत कणों के अन्तरिक्ष में बमबारी करने पर निर्मित होती हैं। अन्तरिक्ष में इन कणों के चमकते हुये चिन्ह ही वास्तव में ये प्रकाशधाराएं हैं।

ज्यों-ज्यों ये कण भूमि के निकट आते हैं, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव के फलस्वरूप वे उत्तर और दक्षिण के भू-चुम्बकीय छोरों की ओर मुड़ जाते हैं। ज्यों-ज्यों वे इन छोरों के अधिकाधिक निकट पहुंच जाते हैं, वे उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों में प्रविष्ट हो जाते हैं तथा हवा में विद्यमान् गैसों को उत्तेजित कर उन में वह चमकीलापन उत्पन्न कर देते हैं, जिनके फलस्वरूप हमें प्रकाश धाराओं के दर्शन होते हैं। इसी का यह कारण है कि ये प्रकाशधाराएं उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के निकट क्षेत्रों में ही प्रायः दिखलाई देती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में वैज्ञानिक इन सब से अधिक उपयोगी विधियों का उपयोग करेंगे, उन में से एक समस्त आकाश का निरीक्षण करने वाला कैमरा है। इस कैमरे से एक छोर से दूसरे छोर तक सारा आकाश देखा जा सकता है तथा प्रकाश की धाराओं का ऐसा फिल्म उतारा जा सकता है, जिसमें इन धाराओं के उपस्थित होने के बाद से उनके समस्त परिवर्तनों को चित्रित किया गया हो।

प्रकाश की धारा उत्पन्न करने वाले कणों की ऊँचाई पट्टक्रम (एनर्जी स्पैक्ट्रम) तथा इनफ्रा-रेड और अल्ट्रा वायलेट प्रकाश के हल्केपन अथवा गूढ़ता की जानकारी स्पैक्ट्रोग्राफों तथा स्पैक्ट्रोमीटरों द्वारा प्राप्त की जाएगी। निश्चित रंगों के प्रकाश की विविधताओं को माप कर, विविध ऊंचाइयों और अक्षांशों में प्रकाश के वितरण का पता लगा कर तथा अल्पकालिक प्रकाशधाराओं की प्रकृति का अध्ययन कर भू-चुम्बकीय और अयनमण्डीय गड़बड़ी

तथा ब्रह्माण्ड किरणों जैसी अन्य बातों के बारे में भी सम्बन्धित अध्ययन किए जा सकते हैं।

जब इन प्रकाशधाराओं को आंखों से देख सकना अथवा उन के चित्र उतारना वैज्ञानिकों के लिए संभव नहीं होगा, तब इन प्रकाशधाराओं के ज्ञान हेतु वे रेडार यन्त्रों का उपयोग करेंगे। रात्रि में बादल होने पर अथवा दिन में इस प्रकार का अध्ययन महत्वपूर्ण होगा क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में ये प्रकाशधाराएँ आंखों से दिखाई नहीं देतीं।

इन प्रकाशधाराओं का रेडियो-खगोल-विज्ञान द्वारा भी अध्ययन किया जाएगा। सामान्य रेडियो ट्रान्समेशन में इन प्रकाशधाराओं के फलस्वरूप जो बाधायें उत्पन्न होती हैं उस के आधार पर तथा दूर के नक्षत्रों से पृथ्वी तक पहुँचने वाली रेडियो लहरियों के आधार पर वैज्ञानिक इन प्रकाशधाराओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भू-भौतिक वर्ष में वैज्ञानिक जो निरीक्षण करेंगे, उनके फलस्वरूप इन प्रकाशधाराओं की प्रकृति के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएं एकत्रित की जा सकेंगी। इन के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में प्रकाशधाराओं का वितरण किस प्रकार होता है इस सम्बन्ध में मानचित्र तैयार किए जा सकेंगे तथा साथ ही एक ही समय में विभिन्न स्थानों में दीखने वाली प्रकाशधाराओं के तुलनात्मक रूप उपस्थित किए जा सकेंगे।

क्या आप जानते हैं ?
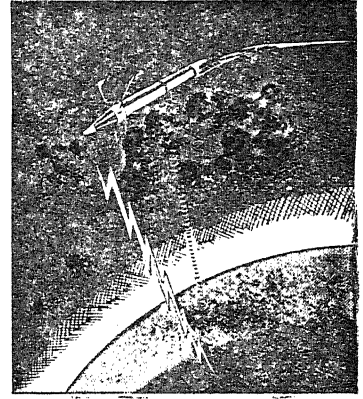
मछली जब कांटे में फंसती है तो वह केवल आपत्ति ही महसूस करती है उसको दर्द नहीं होता। ऐसा इस लिये है कि उसका स्नायु संस्थान कम विकसित है।

तितली के बच्चे (कैटरपिलर) के ३ या ४ जोड़ा आंखे होती है फिर भी वह इतना निकट दर्शी होता हैं कि उसको अपने भोजन की खोज सूंघ कर करनी पड़ती है।

अमरीकी कृत्रिम ग्रह तृतीय में एक यंत्र था जिसके द्वारा एक टेप रिकार्डर पर वह अपने संदेश रिकार्ड करता जाता था।

सहकारी-कृषि

[डा० शिवगोपाल मिश्र, प्राध्यापक, कृषि रसायन प्रयाग विश्वविद्यालय]

कुछ दिनों से समाचार पत्रों में सहकारी कृषि को लेकर अनेक वाद-विवाद छिड़ गये हैं। विशेषतया कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के पश्चात् जनता के भी कान खड़े होने लगे हैं। इस अधिवेशन में भूमि और कृषि सम्बन्धी निम्न प्रस्ताव रक्खे गये :—

"१. ग्राम के सभी स्थायी निवासियों को, चाहे उनकी अपनी जमीन हो या न हो, ग्राम सहकारिता समिति के सदस्य होने का अधिकार होना चाहिये और ग्राम सहकारिता समिति को चाहिये कि वह खेती के नये और बेहतर तरीकों और कृषि की उन्नत प्रविधियों का इस्तेमाल करते हुये पशुपालन और मत्स्य पालन का विकास करके और साथ ही ग्रामोद्योगों को बढ़ावा देकर अपने सदस्यों का कल्याण साधन करें।...

२. कृषि का भावी ढांचा संयुक्त सहकारिता कृषि का होना चाहिये जिसमें खेतों को संयुक्त करके खेती के लिये इकट्ठा कर लिया जायगा, हांला कि खेतों पर मिलकियत किसानों की रहेगी और अपने अपने खेत के हिसाब से उन्हें मुनाफे में हिस्सा मिलेगा। इसके अलावा, जो खेतों पर खुद काम करने वाले हैं, उनकी अपनी जमीन हो या न हो, उन्हें उस संयुक्त खेत में अपने अपने काम के मुताबिक हिस्सा मिलेगा।

संयुक्त खेती की शुरूआत के पूर्व, पहले कदम के रूप में, सारे देश में सेवा-सहकारी समितियों को संगठित कर देना चाहिये। यह काम तीन साल के अन्दर पूरा हो जाना चाहिये। पर इस दौरान भी जहां मुमकिन हो और किसान आमतौर पर तैयार हों, संयुक्त खेती शुरू कर दी जा सकती है।

३—भूमि सुधारों के बारे में अनिश्चितता दूर करने और किसानों की जिन्दगी में पायदारी कायम करने की दृष्टि से, आज की और बाद की भी जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जानी चाहिये और साथ ही मध्यवर्तीयों का उन्मूलन करने के लिये सभी राज्यों द्वारा १९५९ के अन्त तक कानून बनाने का काम पूरा कर दिया जाना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि आमदनी की कोई सीमा बांध दी जायगी क्योंकि उम्मीद की जाती है कि सघन खेती और अतिरिक्त धन्धों की वजह से गांवों की आमदनी में वृद्धि होगी। इस प्रकार की अतिरिक्त भूमि पर पंचायतों का अधिकार होना चाहिये और उनका प्रबन्ध खेतिहरों की सहकारिता समितियों के हाथ में रहना चाहिये।

४—काश्तकार को उचित मुनाफा दिलाने की दृष्टि से हर फसल का उसकी बुवाई के मौसम से काफी पहले, अल्पतम मूल्य तय कर देना चाहिये और वक्त जरूरत के लिये उस पैदावार को सीधे खरीद लेने की व्यवस्था करनी चाहिये।

५—खाद्यान्नों के थोक व्यापार राज्य के हाथ में दे दिये जाने का स्वागत है और इस पर पूरा अमल होना चाहिये।

६—खेती के लायक जो जमीन खाली पड़ी है उस पर और ऊसर जमीन पर खेती के लिये हर तरह की कोशिश की जानी चाहिए। इस तरह की जमीन का उपयोग करने की दृष्टि से उचित कदम उठाने के लिये केन्द्रीय सरकार की एक समिति नियुक्त करनी चाहिये।

कांग्रेस का भरोसा है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें जल्द ही ऊपर बताये गये कदम उठायेगी और कांग्रेस संगठन भी दूसरी संस्थाओं के सहयोग से इन कदमों के लिये देश के लाखों करोड़ों किसानों के अन्दर सामूहिक रुप से उत्साह पैदा करने और उनमें स्वतः आगे बढ़ने और खुद अपनी मदद करने की भावना जगाने में हर तरह मदद करेगा।"

सहकारी कृषि के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण दूसरा प्रस्ताव है। किन्तु अधिकांश राजनीतिक नेताओं को यह रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ क्योंकि उसके पश्चात् शीघ्र ही उत्तर प्रदेश के भूत पूर्व राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी तथा भारत के सर्व प्रथम गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने इस प्रस्ताव की तीव्र आलोचनाये की। मुन्शी जी का कहना है कि चूंकि सहकारी कृषि के पूर्व प्रयोग पंजाब आदि प्रान्तों में असफल सिद्ध हुये हैं अतः ऐसी कृषि पद्धति का पूरे देश में प्रयोग ठीक नहीं। उसके द्वारा नवीन सामन्तशाही सूत्रपात होगा। इसके प्रत्युत्तर में प्रधान मन्त्री नेहरू ने कई अवसरों पर भाषण देते हुये सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार सहकारी कृषि को अत्यन्त उपादेय बताते हुये यह स्पष्ट किया है कि यह पद्धति किसानों पर सरकार की ओर से लादी न जाकर उनकी इच्छाओं के अनुसार ही कार्यान्वित की जायगी। जनता में सहकारी कृषि के उद्देश्यों को प्रसारित करने के लिये कांग्रेस नेताओं ने अपनी पदयात्राओं में ततसम्बन्धी अनेक भाषण दिये हैं। सबोंने एक स्वर से सहकारी कृषि को उपयोगी एवं कल्याणकारी बताया है। अभी हाल ही में संसद में प्रस्ताव रखते हुये स्वतन्त्र उम्मीदवार मीनू मसानी ने सहकारी कृषि की कटु आलोचना करते हुये प्रधान मन्त्री का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि ऐसी पद्धति के सूत्रपात से देशव्यापी जन युद्ध प्रारम्भ होने की आशंका है। यह कांग्रेस की चाल है जिससे साम्यवाद को जामा बदल कर भारत में प्रविष्ट कराया जा रहा है। नेहरु जी ने इसके प्रत्युत्तर में फिर यही कहा है कि हमारे देश में जो सहकारी कृषि का रूप होगा वह शक्ति के प्रयोग द्वारा न होकर कृषकों की सहमति से ही होगा। इस कार्य के लिये वे खेत खेत में जाकर किसानों से सहयोग की भीख तक मांगने के लिये तैयार हैं।

ज्ञात हो कि सहकारी कृषि के पूर्व से उत्तर प्रदेश तथा अन्य राज्यों में चकबन्दी योजना कार्यान्वित की जा रही है। चकबन्दी के द्वारा कृषकों के खेतों की चकें तैय्यार हो रही हैं। जिससे उनको खेतों की रखवाली, करने जोतने तथा अन्य कार्यों में सुविधा होगी। इस योजना में किसानों के पास जितनी भूमि है उसका केन्द्रीकरण ही किये जाने की रूपरेखा है किन्तु इसके साथ ही एक बड़ा भारी प्रश्न उठा करता है कि जिसके पास भूमि नहीं है क्या उन्हें भी भूमि दी जाय। समानता की भावना के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि किसी को भूमि विहीन न रखे। ऐसा करने के लिये आवश्यक है कि जिनके पास अधिक जमीन है उनसे कुछ भूमि लेकर भूमि विहीनों में वितरित कर दी जाय। किन्तु फिर दूसरा प्रश्न उठता है—क्या सबों को समान भूमि दी जाय अथवा भूमि की कोई सीमा निश्चित कर दी जाय। समान वितरण असम्भव है। हां, भूमि की सीमा निश्चित कर देना सरकारों के लिये सहज सम्भाव्य है।

इस दिशा में सर्व प्रथम प्रयास जमीदारी उन्मूलन है। प्रायः जमीदारों के पास इतनी भूमि होती है कि वे उसको अपनी इच्छनुसार जिसे चाहते, जोतने को दे देते और जिसे चाहते न देते। यही नहीं सीमित भूमि से जितना लाभ चाहते किसानों को दबाकर उठा लेते। सरकार और जनता के बीच जमीदार एक ऐसी शृंखला थी जिससे जनता का शोषण होता था और सरकार तक जनता की फरियाद भी न पहुंचती। लगान वृद्धि अथवा कमी पर बड़े नियन्त्रण थे। साधारण से साधारण दर्शन के अनुसार भूमि पर किसी भी प्रकार का कर या लगान न लगना चाहिये। किसानों की कमाई से अर्जित अन्न ही भूमि का श्रेष्ठ लगान हो सकता है, परन्तु कभी ऐसा नहीं हुआ कतिपय अग्रगामी राष्टों ने सर्व प्रथम ऐसी परिस्थितियों पर विचार किया और इस मत पर पहुंचे कि भूमि का स्वामी वही है जो जोते अथवा समस्त भूमि पर से सभी प्रकार का स्वत्व समाप्त करके उस पर सबों का समान अधिकार समझा जाय। यह दूसरा रूप रूस जैसे अग्रणी देश में पाया जाता है।

पता नहीं कांग्रेस सरकार के मस्तिष्क में सहकारी समिति की महत्वपूर्ण योजना कहां से आई किन्तु भारत के अनेक अर्थ शास्त्री इस प्रकार की योजना का आज से १४ वर्ष पूर्व भी प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं। अर्थ-

शास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक दया शंकर दुबे सन् १९४५ में अपनी पुस्तिका "Our Agricult ıral plan" के पृष्ठ २९ से ३४ तक देहातों की सहकारी विकास समितियों का उल्लेख करते हुये लिखते हैं:—

'जब किसी देहात में उसके विकास के लिये सहकारी समिति की स्थापना हो जायेगी तो विभिन्न खेतों की सीमायें स्वयमेव अदृश्य हो जायेंगी और तब 'एक गांव एक फार्म योजना सचल हो जायेगी। भारतवर्ष में प्रायः ५ लाख गांव हैं और खेती योग्य क्षेत्र २० करोड़ एकड़ है अतः प्रत्येक समिति के जिम्मे ४०० एकड़ का एक फार्म अ येगा। यह इतना बड़ा क्षेत्र फल है जिसमें आधुनिक रीतियों से कृषि की जा सकेगी।...सहकारी कृषि से निश्चित रूप से कृषि-उत्पादन में प्रचुर वृद्धि हो सकेगी।'

चौधरी चरणसिंह ने 'Abolition of Zamin dari' नामक कृति में रूस की सहकारी कृषि का विस्तृत अध्यन प्रस्तुत करते हुये सहकारी फार्मों के विषय में निम्न अभिलाषा प्रकट की थी:—

The path of Collective farm is the path of Socialism and is the only true path for the working peasants to follow. The land occupied by the artels remains the property of the State. It cannot be sold nor bought nor leased.

अर्थात् "सहकारी फार्म का मार्ग समाजवाद का मार्ग है और कार्य करने वाले कृषकों के लिए एकमात्र सत्य मार्ग। आर्टेल (सहकारी संस्था) द्वारा अधिकृत भूमि राज्य की सम्पत्ति होती है। वह न तो बेची जा सकती है, न खरीदी जा सकती है और न किराये पर उठायी ही जा सकती है।"

आगे चल कर बड़े बड़े खेतों का समर्थन करते हुये वे अपनी पुस्तक "उत्तर प्रदेश में कृषि क्रान्ति" में लिखते हैं—

"भूमिहीनों अथवा गरीब किसानों में बड़ी तादाद में जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों का बंटवारा करने से कृषि का अलाभकर संगठन पैदा होगा और कृषि की दशा जो पहले से ही खराब है और भी खराब हो जायगी। इससे जो परिस्थिति पैदा होगी उसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन के तरीके और भी आसानी के साथ जारी हो सकेंगे क्योंकि नये कङ्गाल भूस्वामित्व प्राप्त किसान और अधिक आसानी के साथ सामूहिककरण की नीति को मानने के लिये तैयार हो जायेंगे।"

यदि उपरोक्त कथन को और ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इसमें चौधरी जी बड़े तर्क के साथ सहकारी कृषि का विरोध करते प्रतीत होते हैं। अब उन्होंने उत्तर प्रदेश में जोतों की निम्नतम सीमा ५० एकड़ स्थिर करने की घोषणा भी की है। उन्होंने अपनी पुस्तक में कुछ आँकड़े भी दिये हैं जिनसे स्पष्ट है कि ७५ तथा २५० एकड़ के बीच वाली जोतों की संख्या सर्वाधिक है जिनको विशृंखलित करना होगा।

जोतों का आकार, संख्या और क्षेत्रफल

आकार	संख्या	क्षेत्रफल
५०—७५ एकड़	५३७४	३,३५,४८५
७५—१०० ,,	२२७४	१,७२,५७२
१००—२५० ,,	३००१	४,५३,७०५
२५०—५०० ,,	५८०	१,९६,४०५
५००—१०००,,	२२१	१,५१,८५०
१००० एकड़ से अधिक	९४	१,७७,३१९

स्पष्ट है कि एक ओर जहां सहकारी कृषि जैसा क्रांतिकारी कदम उठाने की बात है वहीं राजनीति की गहरी छाया भी उसे तोपे है। आज भी अनेक तहसीलों या जिलों में चकबन्दी की योजना चालू है। यह सहकारी कृषि की स्थापना में सहायक होगी अथवा बाधक, इस पर भी राजनितिज्ञों के विभिन्न मत हैं। कुछ का मत है कि जब अन्ततः सहकारी रीति से कृषि होनी है तो चकबन्दी में होने वाले व्यय को क्यों किया जा रहा है जबकि दूसरों का कहना है कि चक बन जाने से फार्मों की स्थापना सुगम हो जायेगी। निश्चित रूप से चकबन्दी

योजना सहकारी कृषि का प्रथम चरण है, किन्तु उसमें होने वाले व्यय को कृषकों से न लेकर राज्य सरकारों को वहन करना चाहिये।

सहकारी कृषि के सम्बन्ध में योजना कमीशन के सदस्य श्री मन्नारायण जी का एक लेख 'लीडर' में प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने जनता का ध्यान सहकारी कृषि की आवश्यकता, उसके भेदों एवं उसकी पूर्वपीठिका की ओर आकर्षित किया है। उनका कथन है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही सहकारी कृषि की ओर राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया था कि वे ततसम्बन्धी योजनायें प्रस्तुत करें किन्तु वे वैसा न कर सके। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अब यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि इस योजना के अंत तक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया जाय जिससे तृतीय योजना में सहकारी कृषि के लागू करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। और १० वर्षों में कृषि योग्य भूमि का अधिकांश सहकारिता पद्धति से व्यवस्थित किया जा सके।

सहकारी कृषि के तीन रूपों की चर्चा करते हुये उन्होंने १—सहकारी संयुक्त कृषि २—सहकारी संयुक्त समितियां तथा ३—सेवा सहकारिता के नाम गिनाये हैं। सहकारी संयुक्त कृषि वह है जिसमें अनेक किसानों की जमीनों को मिलाकर खेती की जाती है। केवल लाभों का वितरण होता है, भूमि स्वामित्व स्थायी रहता है। सहकारी संयुक्त समितियों के द्वारा न केवल भूमि का एकीकरण किया जाता है वरन् अन्य समस्त आमदनी के स्त्रोतों को सम्मिलित कर दिया जाता है। भूमि का स्वामित्व खत्म हो जाता है और होने वाले लाभों का ही वितरण कार्य क्षमताओं के अनुसार किया जाता है। तृतीय प्रकार की सहकारिता में कृषि सम्बन्धी अनेक सहयोगों की गणना की जाती है जो समय समय पर दूसरे कृषक अपने ही वर्ग के कृषकों को दे सकते हैं। इसी लिये इन्हें 'सर्विस सहकारिता' कहा गया है।

अभी भारतवर्ष के लिये उक्त प्रकारों में से एक या कई प्रकारों की सहकारिता को प्रोत्साहन दिया जाएगा और प्रयोगों द्वारा यह निश्चित किया जायगा कि किस भूभाग के लिये कौन सा प्रकार हितकर सिद्ध होगा। ऐसा करने के लिये किसानों पर किसी प्रकार का दबाव न डालते हुये उन्हें सहकारिता की महत्ता मात्र बताई जायेगी। यही नहीं, रूस के विपरीत यहाँ अपेक्षाकृत छोटे फार्मों के संगठन पर बल दिया जायगा। श्री मन्नारायण जी का मत है कि २५, ५० या १०० परिवारों को संयुक्त करके एक इकाई बनाई जाय तो अच्छा होगा। रूसके फार्म १० से ३० हजार एकड़ तक विस्तृत होते हैं परन्तु भारत में ऐसा न होगा। यही नहीं, ऐसी कृषि की सफलता की चर्चा करते हुये वे यह अभिमत प्रकट करते हैं कि इन परिवारों में पारस्परिक बन्धुत्व होना अत्यावश्यक है। उन्होंने जनता का ध्यान गांधी जी के उस कथन की ओर आकर्षित किया है जो सन् १९४२ ई० के १५ फरवरी के 'हरिजन' में प्रकाशित हुआ था।

'मेरा दृढ़ विश्वास है कि कृषि का उचित लाभ तब तक उठाया नहीं जा सकता जब तक हम सहकारी कृषि की शरण न लेंगे। क्या यह सुन्दर न होगा कि गांव के सैकड़ों परिवार साथ मिल कर अपनी जमीनों पर खेती करते हुये उसमें होने वाली आय को ही आपस में बांटे न कि भूमि को सैकड़ों खन्डों में विभाजित कर दिया जाय। इससे देश का नक्शा बदल जायेगा किन्तु यह तभी सम्भव है जब सभी लोग एक ही परिवार के सदस्यों की भांति आचरण करें।

उपरोक्त के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में प्रचलित कृषि की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाकर ही लोक कल्याण किया जा सकता है। अगले अंक में हम रूस की सहकारी कृषि की चर्चा प्रस्तुत करते हुये उसकी वैज्ञानिक आधार भूमि पर अपने विचार व्यक्त करेंगे। आर्थिक दृष्टिकोण के साथ ही सहकारी कृषि की वैज्ञानिक विवेचना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होती है।

[क्रमशः]

क्या आकाश में सूराख है

आकाश में कहीं कहीं ऐसा मालूम होता है कि सितारे बिलकुल नहीं हैं। क्या ऐसी जगह आकाश में सूराख (खाली जगह) है। एक बार ज्योतिषी सर विलियम हर्शेल ऐसी ही जगह देख कर अपनी मात्र-भाषा जर्मन में कह उठा था "Hier ist wahrhaftig ein Loch in Himmel !" अवश्य ही यहां आसमान में सूराख है !

बहुत दिनों तक ये गहरे काले रंग की खाली जगह ही समझी जाती थी जहां सितारे बिलकुल क्षीण हो जाते हैं। पर अब हम ये जानते हैं कि गहरे काले रंग के छोटे छोटे बादल (Nebulae) इन तारों को हमारी दृष्टि से छुपा लेते हैं। यह बादल विभिन्न गैसों तथा धूल मिली हुई हवा की चादर का बना होता है। कुछ हल्के बादलों के कण एक (Pleiade) की भांति सितारों की तरह चमकते हैं। इसी प्रकार के अन्य बादल रोमन शिकारी ओरिन की तलवार की चमक की भांति एक क्रम के अनुसार जिसे (Fluorescence) कहते हैं चमकता है। इस प्रकार के बादलों में गैस का अत्यधिक भाग बहुत गर्म सितारे के पास होता है जो कि बहुत अधिक मात्रा में अल्ट्रा वायलेट प्रकाश एकत्रित कर प्रत्यक्ष प्रकाश के रूप में प्रकट करते हैं। कुछ बादलों के कण सितारों से दूर रहने के कारण नहीं चमकते, ये पृथ्वी के समीप बादलों की भाँति होते हैं, जो कि सितारों को अपनी धूल के कारण बिलकुल ही छुपा लेते हैं।

वायुमन्डल में इतने अधिक धूल के परिमाण होने के कारण अब यह सिद्ध हो गया है कि आकाश में खाली जगह नहीं है। और ये धूल के कण आकाश में चारो तरफ इतनी अधिक मात्रा में छिटके रहते हैं कि सितारे दिखाई नहीं देते। इस वायुमन्डल के ऊपर खाली जगह है और सम्भवतः इसके ऊपर फिर सितारों की एक परत है।

सप्तऋषि मंडल क्या है ?

प्रत्येक सप्तऋषि सात सितारों का होता है जिन्हें बिना दूरदर्शक यन्त्र के ही औसत तेज दृष्टि से देखा जा सकता है। पालेरिस "उत्तरी सितारा" जिसे उत्तरी ध्रुव कहते हैं छोटे सप्तऋषि के हैन्डिल के अन्त में है। ४०° उत्तरी अक्षांश में बड़ा सप्तऋषि कभी डूबता नहीं। इसे देखने पर उत्तरी ध्रुव तारे का पता लगा सकना बहुत आसान है इस सप्तऋषि के चौपाये के निचले सिरे से एक सीधी रेखा बांई ओर खींचने पर एक अकेला चमकता हुआ सितारा दिखाई पड़ेगा यही ध्रुव तारा है जो हमेशा एक ही जगह उत्तर दिशा की ओर स्थित रहता है। ये सप्तऋषि स्वयं नक्षत्र नहीं वरन् उसी मेजर और उसी माइनर नक्षत्र मंडल के एक हिस्से छोटे और बड़े दो नक्षत्र पुन्ज है। इंग्लैन्ड में यह बड़ा सप्तऋषि मंडल प्लो (Plow) के नाम से ज्ञात है।

किस ऋतु में पृथ्वी सूर्य के समीप रहती है ?

सूर्य के चारो ओर वर्षो की लम्बी यात्रा में पृथ्वी दिसम्बर के शुरू महीने में सबसे पास (९१,५००,००० मील) रहती है। और जुलाई के शुरू महीने में सबसे दूर (९४, ५००,००० मील) रहती है। उत्तरी गोलार्ध में रहने वालों के लिये यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जब पृथ्वी सूर्य के समीप होती है तब वहाँ सबसे ज्यादा ठंडक पड़ती है और गर्म ऋतु जब पृथ्वी सूर्य से दूर रहती है। दक्षिणी गोलार्ध में रहने वालों के लिये तो यह स्वाभाविक ही है कि जब पृथ्वी जुलाई के महीने में सूर्य से दूर हो तब ठंडक पड़े और दिसम्बर के महीने में पृथ्वी सूर्य के पास होने के कारण गर्मी पड़े। परन्तु इसके साथ ही प्रकृति में बहुत सी ऐसी चीजें है जो ऋतुओं पर प्रभाव डालती हैं। सर्व प्रमुख अन्तर तो पृथ्वी के एक खास हिस्से का सूर्य की ओर झुकाव या सूर्य से दूर होने के मार्ग में ही पड़ जाता है। जुलाई के महीने में जब पृथ्वी सूर्य से दूर होती है तब उसका उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर अधिक झुका होता है और दक्षिणी गोलार्ध सूर्य से दूर। इस कारण सूर्य की किरणें उत्तरी गोलार्ध पर सीधी और तेज पड़ती हैं क्योंकि उन्हें पृथ्वी पर वायुमंडल का बहुत कम रास्ता तय करना पड़ता है। इसलिए जुलाई के महीने में उत्तरी गोलार्ध पर अधिक गर्मी रहती है। उसी जगह दक्षिणी गोलार्ध पर सूर्य की किरणों का पृथ्वी के वायुमंडल का अधिक भाग पार करना पड़ता है इसलिये इन किरणों की आधे से ज्यादा गर्मी रास्ते में ही खत्म हो जाती है और इसीलिये दक्षिणी गोलार्ध पर जुलाई के महीने में ठंडक रहती हैं।

प्रचंड आँधी और तूफान में क्या अन्तर है ?

इन दोनों को ही विषुवत रेखा के पास दक्षिणी प्रशान्त सागर को छोड़ कर सभी बड़े बड़े समुद्रों से उठे हुए आँधी या तूफान कुछ भी कह सकते हैं। वेस्ट इन्डीज में ये तूफान Hurricanes कहलाते हैं। भारत वर्ष में करीब carib चीन और ईस्ट इन्डीज में ये टाइफून Typhoon हिन्दी महासागर में ये साइक्लोन (Cyclone) और आस्ट्रेलिया में विली-विलीज (willy-willies) कहलाते हैं। ऐसे तूफान प्रायः शरद ऋतु में ही उठते हैं। यह तूफान भीषण वर्षा ओलों और बिजली की कड़क के साथ ७५ मील की रफ्तार से चलता है। समुद्री जहाज तथा नाविकों को इस तूफान से बड़ा भय रहता है। कई दिनों पहले से ही ये मौसम की जाँच पड़ताल करते रहते हैं, और कभी तो कई कई दिन इन्हें समुद्र में ही इस तूफान का सामना करना पड़ जाता है। एक समय था जब कि इन तूफानों ने न जाने कितने नाविकों की जानें ले डाली होगीं, पर अब तो इसकी भीषण शक्ति का सामना करने के लिये भाप के जहाज और बढ़ते हुए तूफान की सूचना देने वाले बेतार के तारों का आविष्कार हो चुका है, जिसकी वजह से अब जहाज पहले से ही अपनी सुरक्षा का मार्ग ढूँढ़ निकालते हैं।

नक्षत्रों की कहानियां

प्राचीन ज्योतिषी सितारों को विभिन्न नामो से सम्बोधित करते थे। आकाश को भी उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों या विभागों (नक्षत्र मंडलों) मे बांट कर उसका नामीकरण कर दिया है। इनमें से कुछ नाम तो बिल्कुल व्यर्थ के हैं जैसा हम जानते हैं कि ये प्राचीन यूनान और रोम के देवी देवताओं, जानवरों या प्रसिद्ध वस्तुओं के हैं। पर अन्य नाम तो इतने प्रसिद्ध हैं कि वे अब भी उसी शान से चमक रहे हैं जैसे स्वयं सितारे।

नक्षत्र मंडल 'कैसिओपिआ का नाम इथोपिआ की महारानी के नाम पर पड़ा जो उतनी ही स्वाभिमानी और अहंकारिणी थीं जितनी कि खूबसूरत। उसकी इस अहंकारिता के कारण देवताओं ने उसे तथा उसके पति महाराजा केफियस को सजा दी थी। इसी कारण इनके ये नक्षत्र हैं पर इतने चमकदार नहीं। इनकी एक खूबसूरत लड़की राजकुमारी एन्ड्रोमीडा थी जिसे समुद्री राक्षस केटस ने ही भक्ष लिया होता यदि (Perseus) उसे बचाने न आ जाता। इस प्रकार (Perseus) एन्ड्रोमीडा और राक्षस केटस के भी अपने नक्षत्र हैं। एन्ड्रोमीडा के साथ ही एक परदार घोड़े "पीगेसस" का नक्षत्र है जो घोड़ों में सबसे ज्यादा खूबसूरत था। पीगेसस नक्षत्र का चक्र घोड़े के कन्धे का बना हुआ है। इस चक्र

का एक सितारा एन्ड्रोमीडा और पीगेसस दोनो के नक्षत्रों का है।

प्रसिद्ध शिकारी ओरिन के नक्षत्र मंडल को सभी जानते हैं। एक ही सीधी रेखा में भली प्रकार चमकते हुए तीन सितारे शिकारी ओरिन की पेटी के हैं। आकाश में सबसे जयादा चमकते हुए सितारे को उसके स्वामिभक्त कुत्ते का नाम दिया गया है जिसे सीरस "The dog star" कहते हैं। ये नक्षत्र मंडल केनिस मेजर का एक सितारा है। बहुत ही हल्के चमकते हुए सितारे प्लीएड (Pleiades) कहलाते हैं। ये "सात बहेनों' के नाम से भी ज्ञात हैं। ये सात सितारे स्वयं नक्षत्र नही हैं पर (Taurus) बैल के हिस्से हैं। फिर भी इनकी कहानी ओरिन से सम्बन्धित है। 'प्लीएड' एटलस और प्लीओन की सात लड़कियां थीं। ओरिन ने इनका पीछा किया और जुपिटर ने (रोम निवासियों के देवता इन्द्र) ने पहले इन्हें बत्तख बनाया और फिर सितारे बना दिये। अब जैसे जैसे रात अधिक होती जाती है ओरिन अब भी नक्षत्रमय आकाश में एक ओर से दूसरी ओर तक पीछा करता है। बिना किसी यंत्र की सहायता के इन तारों को देखने पर ये छः तारे ही दिखाई देते हैं।

जेमिनी नक्षत्र के केस्टर और पोलक्स दो जुड़ुआ सितारे हैं। ये दोनों सितारे जुपिटर और लैडा के पुत्र हैं। लैटिन की परिभाषा में ये दोनों सुनहरे भेड़ की बालों की तलाश में आरगोनाट की साहसपूर्ण जल यात्रा के वीर थे। सफेद और नीले रंग का खूबसूरत सितारा 'वेगा' औरफस की वीणा में एक साथ चमकता हुआ तारा है जो कि स्वर्ग के "लिटा नक्षत्र" में चमकता है। औरफस एक महान कुशल संगीतज्ञ था जिसके गाना गाने पर या वीणा बजाने पर संगीत की मधुर ध्वनि से मुग्ध होकर पक्षी या वन के पशु ही नहीं वरन देवता भी तन्मय होकर उस ध्वनि में लीन हो जाते थे। जब वह मरा तब देवताओं ने उसके सम्मान में तथा उसके संगीत के प्रति श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुये या उसका अपनी पत्नी Eurydice के प्रति अटूट प्रेम की प्रतिष्ठा में, उसकी वीणा आकाश में ही सुरक्षित रख दी। सिर्फ ये कुछ ही ऐसे नक्षत्र हैं जो पौराणिक कथाओं से विभूषित हैं। जब हम आश्चर्यचकित हो इन सितारों की ओर ध्यान पूर्वक देखते हैं तब ये कहानियां बीते युग में इन्हीं जैसे अनेक मनुष्यों के साहस और वीरता का अनुभव कराती हैं जिनके मूर्तिमान ये चमकते हुये सितारे हैं।

सितारे और वायुमन्डल के बीच की खाली जगह

वायुमन्डल तो पृथ्वी के ऊपर सिर्फ २०० मील तक ही है। सितारे इस वायुमन्डल से कहीं अधिक ऊँचाई पर हैं। अब वायुमंडल और सितारों के बीच खाली जगह (Space) कितनी लम्बी चौड़ी है इसका अनुमान कर सकना बहुत कठिन है पर इसकी भी एक सीमितता का अनुमान कर सकना कठिन नहीं है। पर है यह बहुत रोचक। हमको यह नहीं भूलना चाहिये कि हम विश्व के एक बहुत ही एकान्त छोटे भाग में रहते हैं। इस कारण हमारे विचार बहुत कुछ एक धूल के कण के समान हैं और सिद्धान्त सिर्फ अनुमानित। अगर यह खाली जगह असीमित है तो यह विश्वास कर लेना स्वाभाविक ही है कि सितारे भी चारों ओर काफी दूर तक छिटके हों। बड़े से बड़े दूरदर्शक यंत्र से कई ट्रिलयन के कई बिलियन मील दूर तक देखे जाने पर भी अभी तक ऐसा स्थान नहीं दिखाई दिया जिससे यह कहा जा सके कि अब तारे खत्म हो गये।

महान भौतिक शास्त्री एल्बर्ट आइन्स्टीन का यह एक बहुत ही मनोरञ्जक विचार है कि यह खाली जगह आगे चल कर घूमी हुई है। यह साधारण मनुष्यों के लिये जो गणित से अनभिज्ञ हैं समझना कठिन है। यह विचार आइन्स्टीन के रिलेटिवीटी के सिद्धान्त का एक भाग है और बिना गणित में विशेष योग्यता, 'विस्तृत-अध्यन' के इसे समझना कठिन है। फिर भी हमारे लिए इनका इस घूमी हुई खाली जगह (Curved space) से क्या तात्पर्य है जानना कठिन न होगा। यह हो सकता है कि खाली जगह एक बहुत बड़े गोल मंडल की भांति घूमी हुई हो। अगर ऐसा है तो हम इसे सीमित कह सकते हैं, परन्तु 'असीमित सीमित' के रूप में। अगर सचमुच ही यह खाली जगह इस प्रकार घूमी हुई है तब

तब यह मान लेना अनुपयुक्त न होगा कि सितारों के प्रकाश की किरणें भी घूम जाती हैं। और तब यह हो सकता है कि दूरदर्शक यन्त्र से हम जिन सितारों या बादलों का निरीक्षण करते हों वे प्रत्यक्ष सितारों या बादलों की परछाईं मात्र हों जो कि अपने स्थान से विपरीत दिशा में होने की वजह से हमारी दृष्टि के बाहर हो। इनको देखने से ऐसा मालूम होता है जैसे हम अपने सर के पिछले भाग को ही देखते हों।

खाली जगह के बढ़ने 'Expanding Universe' का भी एक बहुत ही मनोरञ्जक विचार है जो ऐसा अनोखा मालूम होता है जैसा कि Wonderland में Alice. इस विचार के प्रमुख प्रतिपादक महान अंग्रेज ज्योतिषी सर आर्थर एडिंगेटन द्वारा उनकी अपनी पुस्तक "The Expanding universe में ही प्रतिपादित हुआ। माउन्ट विलसन औब्जर्वेटरी के डाक्टर इडविन. पी. ध्यूबली ने यह पता लगाया कि सभी खाली जगह आइसलैन्ड युनीवर्स या स्पीरल नेब्यूली चाहे जिस नाम से कहें हमसे दूर भागती जाती हैं। फिर यह भी पता लगा लिया गया था कि ये जगह जितनी दूर है उतनी ही तेजी से भागती है। पृथ्वी से प्रत्येक नये एक करोड़ लाइट वर्ष दूरी पर इनमें भागने की रफ्तार एक सेकेन्ड में एक सौ मील बढ़ती जाती है। इस प्रकार सर्वप्रथम इस इतने काल्पनिक विचार के वर्णित तथ्य पर शायद ही किसी को विश्वास हो।

सर-आर्थर-एडिगंटन ने हम लोगों से एक गोल गुब्बारे की कल्पना करने को कहा जिसमें कि बराबर हवा भरी जा रही हो। जैसे जैसे इसमें हवा बढ़ती जायेगी वह भी अपने पिछले स्थान से बढ़ता जायेगा। इसी प्रकार यह खाली जगह भी बढ़ती जायेगी। इस प्रकार के बढ़ने में जो स्थान केन्द्र से जितना अधिक दूर है वह उतनी ही तेजी से बढ़ता जायेगा और यह देखने के लिए कि यह कैसे बढ़ता है सबसे अच्छा यह होगा कि हम एक गुब्बारा न लेकर एक बड़ा सा रबर का गेंद ले लें जिसमें तेजी से हवा भरने पर गेंद का बाहरी रबर जितनी तेजी से फूलेगा उतना केन्द्र के पास वाला नहीं।

बेल्जियम के एबी लिमेट्रू ने भी Expanding Universe के विचार से मिलता जुलता एक सिद्धान्त दिया। इनका कहना है कि जिस प्रकार ब्रह्मांड की सभी वस्तुयें पीछे हटती जा रही है— अवश्य ही एक ऐसा समय होगा जब कि ये सभी वस्तुयें एक छोटी सी जगह में ही एकत्रित हो जायेंगे। लगभग दो बिलियन वर्ष पूर्व सभी पदार्थ एक भयंकर अणु में ही केन्द्रित रहे होंगे और इस अणु के विस्फोट से सभी पदार्थ विस्फोट केन्द्र से दूर तेजी से चारो ओर भागे होंगे। इसी से ये सितारे खाली जगह, वायुमन्डल, सूर्य मन्डल और उसके चारो ओर के ग्रह, उपग्रह आदि तथा इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि हुई होगी। यही कारण है कि अब भी इस खाली जगह के पदार्थ जितनी दूर हैं उतना ही और तेजी से भागते जा रहे हैं। इस सिद्धान्त से ऐसा पता लगता है कि ये सारी सृष्टि उतनी पुरानी नहीं है जितना कि हम सोचते हैं।

एक और विचार है कि ये सभी पदार्थ एक क्रम के अनुसार घटते बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार ६००० वर्षों से जब कि हमने बहुत सी चीजों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है पर अब भी हमारा ज्ञान बहुत कुछ सीमित ही है।

खाली जगह में क्या है?

इस खाली जगह से यदि हम सितारे, ग्रह, उपग्रह, उल्के इत्यादि निकाल दें तो क्या सिर्फ एक वायु रहित शून्य स्थान रह जायेगा ? नहीं। वाशिंगटन के कारनेगी इन्स्टीट्यूट के ज्योतिषीयों ने यह पता लगाया कि सितारों के बीच खाली जगह के एक औसत क्यूबिक गज में।

20 000,000 free electrons—5 Sodium atom

20,000,000 Hydrogen atoms—1 Potassium atom

400,000 Photons or Light—darts है इसमें भी प्रत्येक दस क्यूबिक गज एक कैल्शियम एटम

जोड़ देना चाहिये और कई सौ हजार क्यूबिक गज में एक टीटेनियम एटम। एक बहुत बड़े धुयें को सितारों के बीच के प्रत्येक quintillion क्यूबिक गज खाली जगह से निकाला जा सकता है।

सर आर्थर एडिंगटन ने इसे संक्षेप में इस प्रकार कहा कि Interstellar space में वर्ष में एक बार एक एटम दूसरे एटम से मिल जाता है। डाक्टर इडविन पी ध्यूबली ने इस खाली जगह और इसमें इन रसायनिक तत्वों के अनुपात के विषय में कहा कि पृथ्वी के बराबर एक खाली स्थान में एक धूल के कण के समान ये तत्व हैं जिन्हें कौसमिक डस्ट या इन्टरस्टेलर डस्ट कहते हैं। इस प्रकार यह जगह खाली नहीं है।

सूर्य की गर्मी हमारे पास कैसे आती है?

यह गर्मी करोड़ों मील के खाली जगह को पार कर रेडिएशन के द्वारा हमारे पास आती है। रेडिएन्ट की गर्मी बिना बीच के तत्वों को गर्म किये हुए बाहर आ जाती है। सूर्य से रेडिएन्ट की गर्मी पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपरी सतह को बिना गर्म किये हुए उसके बीच से हो कर आती है। उदाहरण के लिए काँच सूर्य के रेडिएन्ट शक्ति की कुछ ही Short waves ग्रहण करता है, बड़ी बड़ी आग की तरह लपटों की तरह Longwaves को नहीं। अगर एक कांच का चौकोर टुकड़ा जलते हुए दिए के सामने रख दें तो वह बहुत जल्दी गर्म हो जायेगा क्योंकि दिए की लपक की सभी Short waves को कांच ने ग्रहण कर लिया। इसी भांति एक कांच के मकान में सूर्य की किरणें अन्दर जा सकती हैं परन्तु अन्दर की गर्मी बाहर नहीं जा सकती क्योंकि अन्दर की गर्मी की Short waves को कांच में ही समा जाती है और कांच गर्म हो जाता है। इसी प्रकार सूर्य की Short waves की किरणें वायुमंडल को तो पार कर जाती हैं पर पृथ्वी पर पड़ते ही वे उसी में समा जाती हैं और उसे गर्म कर देती हैं। पर पृथ्वी सूर्य की Long waves छोड़ देती है जिसे चारो ओर का वायुमंडल ग्रहण कर लेता है। अगर यह वायुमंडल न हो तो हम लोग दिन में सूर्य की तेज गर्मी से भस्म हो जांय और रात को ठंडक की वजह से बर्फ की तरह जम जांय।

सूर्य कितना गर्म है?

ऐसा अनुमान किया गया है कि सूर्य के ऊपरी भाग का तापक्रम ११,०००° फैरनहाइट है और अन्दरूनी भाग का तापक्रम ४०,०००,०००° फैरनहाइट है। इतने तापक्रम पर कोई भी दो परमाणु नहीं रह सकते। यहां तक कि अणु भी फूट जाते हैं और उनके हिस्से दूसरा अणु बना लेते हैं। गर्मीइस अणु विस्फोट के कारण होती है औरछोटे अणु प्रकाश और गर्मी में परिवर्तित हो जाते हैं। ये सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहुंचने से पहले ९३, ०००,००० मील का लम्बा रास्ता तय करके आती हैं लेकिन फिर भी १५ मिनट में आदमी को झुलसा देती हैं।
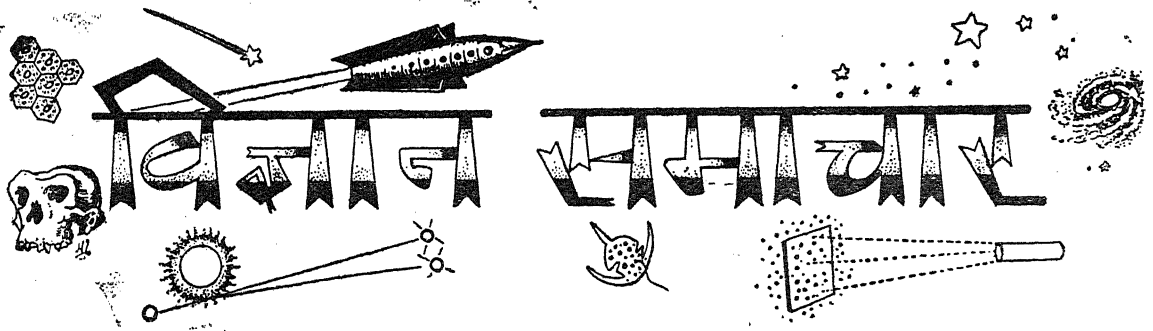
अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व मनुष्य की सुरक्षा

अमेरिकी राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन के निर्देशक ने घोषणा की है कि वाह्य अन्तरिक्ष के वातावरण के सम्बन्ध में पूरी सूचना एकत्र की जा रही है ताकि अन्तरिक्ष में भेजे जाने वाले मानव की सुरक्षा की पूरी व्यवस्था की जा सके।

उक्त एजेन्सी के निर्देशक श्री टी० कीथ ग्लेनन ने अन्तरिक्ष-अनुसन्धान को विज्ञान का एक नया क्षेत्र बताया और कहा कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों के महत्व का अनुभव देर से होता है। फिर भी अन्तरिक्ष अनुसन्धान के कुछ व्यवहारिक लाभ अब स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि हम इस बात का यकीन करने में कोई कोर कसर न उठा रखेंगे कि अन्तरिक्ष का अन्वेषण करने वाले मानव को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा।

आणविक बिजलीघर का निर्माण

'जनरल पब्लिक यूटिलिटी कार्पोरेशन की पेन्सिल्वेनिया विद्युत कम्पनी १ करोड़ डालर की लागत से एक आणविक बिजलीघर खड़ा कर रही है। इस आणविक बिजलीघर का निर्माण कार्य मई में शुरू हो जाएगा। यह आणविक बिजलीघर ५ हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न करने वाली आणविक भट्टी से सज्जित होगा। आणविक भट्टी का निर्माण वेस्टिंग हाउस इलैक्ट्रिक कार्पोरेशन द्वारा किया जाएगा। यह आणविक भट्टी पनडुब्बियों में प्रयुक्त आणविक भट्टियों के ढंग की होगी और १९६१ में काम करने लगेगी।

नया आणविक जेनरेटर

अमेरिका में एक ऐसा आणविक जेनरेटर तैयार हुआ है, जो बेकार रेडियो-आइसोटोप का उपयोग कर पर्याप्त विद्युतशक्ति का उत्पादन कर सकता है। इस यंत्र का वजन ५ पौन्ड है। अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन ने इसे एक महत्वपूर्ण आविष्कार बताया है। अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन के अध्यक्ष ने इस यन्त्र का एक नमूना ह्वाइट हाउस में प्रेसिडेन्ट को दिखाया। प्रेसिडेट के आदेश से यह नमूना साम्वाददाताओं को भी दिखाया गया।

इस जेनरेटर का व्यास कुल ४½ इंच और ऊंचाई ५½ इंच है। यह १३८ दिन तक ११,५०० किलोवाट बिजली उत्पन्न कर सकता है।

अमेरिकी अणुशक्ति कमिशन के एक अधिकारी ने कहा कि इतनी विद्युतशक्ति का उत्पादन १४५० पौन्ड वजन की बैटरियां २७६ दिन में कर सकेंगी।

मालोवीडिनम का टांका

वैज्ञानिकों ने पहली बार मालोवीडिनम से टाँका लगाने में सफलता प्राप्त की है। यह एक ऐसी धातु है जिस में अत्यधिक ताप सहारने की क्षमता रहती है। एक

अमेरिकी वैज्ञानिक ने बताया है कि इस खोज के फलस्वरूप राकेटों और उपग्रहों के निर्माण में आने वाली एक बड़ी बाधा दूर हो जाएगी। अन्तरिक्षगामी यान के विभिन्न प्रकार के ताप निरोधक पुर्जे तैयार करने में इस खोज से बड़ी सहायता मिलेगी।

अणुशक्ति-चालित वायुयान

संसार में अब तक कई अणुशक्ति-चालित पनडुब्बियों का निर्माण हो चुका है और शीघ्र ही उसके प्रथम अणुशक्ति-चालित जलयान के जलावतरण का अवसर आने वाला है। आणविक पनडुब्बियों के संचालन के फलस्वरूप जो महत्वपूर्ण जानकारी और अनुभव प्राप्त हुये हैं, उन से अणुशक्ति-चालित वायुयानों और अन्तरिक्षयानों के निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी, ऐसा अमेरिकी वैज्ञानिकों का दृढ़ विश्वास है।

मंगल और शुक्र ग्रह की यात्रा ४०० दिन में

ऐसे अन्तरिक्षगामी यानों के निर्माण के सम्बन्ध में अमेरिकी वैज्ञानिक गम्भीरतापूर्वक अनुसन्धान कर रहे हैं जो गुरुत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त होने के लिए आवश्यक प्रवेग से भी कुछ अधिक गति से उड़ सकेंगे और इस प्रकार अपेक्षाकृत कम समय में मंगल या शुक्र ग्रह की यात्रा कर सकेंगे। अमेरिका के एक प्रमुख वैज्ञानिक डब्ल्यू. ई. मोएकेल ने बताया है कि यदि अन्तरिक्ष-यान की गति ७ मील प्रति सेकेण्ड से बढ़ा कर १५ मील प्रति सेकेण्ड कर दी जाए तो मंगल ग्रह की यात्रा ४०० दिन में पूरी हो जाएगी। शुक्र ग्रह की यात्रा ३६० दिन में पूरी करने के लिए यान की गति में केवल १॥ मील प्रति सेकेण्ड की ही वृद्धि करनी पड़ेगी।

इस प्रकार की यात्रा पृथ्वी की वृत्ताकार परिक्रमा करने वाले स्टेशन से ही सम्भव हो सकेगी।

दूरमारक अस्त्र ध्वनि की गति से तेज

अमेरिकी वायु सेना ने एक्स–७ नामक एक नवीन दूरमारक अस्त्र का परीक्षण किया। प्रारम्भिक परीक्षण में इसने एक घन्टे में २६०० मील से अधिक का फासला तय किया। यह दूरमारक अस्त्र न्यूमैक्सिको से एक वायुयान द्वारा छोड़ा गया। वायुसेना की घोषणा के अनुसार अस्त्र की गति ध्वनि की गति से ४ गुनी अधिक थी। ध्वनि की गति ६६० मील प्रति घन्टा है। अब तक इससे अधिक तीव्र गति वाला दूरमारक अस्त्र अमेरिका में नहीं बना है।

अन्तरिक्ष मन्डल के भ्रमण का कार्यक्रम

अमेरिका की राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशाशन संस्था ने सौर मन्डल के लगभग सभी नक्षत्रों और ग्रहों की यात्रा करने के सम्बन्ध में एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार करने का कार्य हाथ में ले लिया है।

अन्तरिक्ष प्रशासन ने घोषणा की है कि एक वर्ष के अन्दर पृथ्वी से ३०० मील की ऊंचाई पर ७ परीक्षणात्मक उपग्रह स्थापित करने का प्रयत्न किया जायगा और लगभग २ वर्षों के अन्दर मनुष्य उपग्रहों में बैठकर पृथ्वी की परिक्रमा करने में सफल हो जायेगा। १० वर्षों के अन्दर चन्द्रमा और मंगल ग्रहों की वापसी यात्रा का प्रयत्न भी किया जाएगा।

अन्तरिक्ष युग में प्लास्टिक का उपयोग

ताप-निरोधक पदार्थों के रूप में प्लास्टिकों का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के वायुमन्डल में किसी वस्तु के पुनः प्रविष्ट होने पर जो प्रचन्ड ताप उत्पन्न होता है, उसे नियन्त्रित कर वस्तु को जलने से रोकने के लिए वैज्ञानिक यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। वह ऐसे पदार्थों की खोज और विकास में संलग्न हैं जो इस प्रचन्ड ताप को सहारने में समर्थ हों। इस सम्बन्ध में जो प्रारम्भिक परीक्षण हुए हैं, उन्होंने ताप-निरोधक पदार्थों के रूप में प्लास्टिक की उपयोगिता के महत्व को और भी अधिक प्रमाणित किया है। यह सिद्ध हो गया है कि विशिष्ट प्रकार के रसायनिक पदार्थों से तैयार की गई प्लास्टिक प्रचन्ड ताप को सहारने की क्षमता रखती है। इस की ताप-निरोधक क्षमता से प्रभावित हो कर राकेट की नाक और ब्लास्ट ट्यूब प्लास्टिक से बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह आशा है कि निकट भविष्य में राकेट के सभी महत्वपूर्ण पुर्जे प्लास्टिक से बनने लगेंगे।

दूध-उत्पादन का नया रिकार्ड

सिराक्यूज (न्यूयार्क) के एक स्थानीय कृषक के पास स्विटजरलैन्ड की एक गाय है, जिस ने एक वर्ष में ३४,८५० पौन्ड दूध दे कर विश्व में दूध-उत्पादन का नया रिकार्ड कायम किया हैं। इस तरह चार व्यक्तियों को ११ वर्ष तक प्रति दिन लगभग एक सेर दूध मिल सकता है। स्थानीय कृषक मेले में इस गाय को प्रदर्शित किया गया।

अधिक उत्तम रसायनिक खाद

सैंट लुई : स्थानीय 'मानसैण्टो कैमिकल कम्पनी' ने एक नई किस्म की उत्तम रसायनिक खाद तैयार की है, जो दीर्घ काल तक अपनी असली दशा में सुरक्षित रखी जा सकती है उक्त कम्पनी के अधिकारी ने बताया कि अमोनियम नाइट्रेट से तैयार हुई उक्त रसायनिक खाद का घनत्व चूंकि अधिक है, इस लिये प्रचलित रसायनिक खादों की अपेक्षा इसे रखने के लिये २० प्रतिशत कम स्थान की आवश्यकता पड़ती है।

समुद्र सम्बन्धी अध्ययन

वुड्सहोल (मैसाचूसेट्स) के ओशियनोग्राफिक इन्स्टिट्यूट (समुद्र विज्ञान सम्बन्धी संस्थान) ने यह सूचित किया है कि अनुसन्धानात्मक जहाज 'चेन' शीघ्र ही उत्तरी तथा दक्षिणी एटलान्टिक तथा भू-मध्य सागर का ६ महीने का अनुसन्धान शुरू करेगा। 'चेन' नामक जहाज चार प्रयोगशालाओं से सुसज्जित होगा। इस के चालक-मण्डल के सदस्यों की संख्या ३३ तथा अनुसन्धान-कर्ता वैज्ञानिकों की संख्या २८ होगी। यह जहाज २ जनवरी को दक्षिणी एटलान्टिक सागर के समुद्र-तल का अध्यन करने के लिए अपना ३॥ महीने का दौरा शुरू करने वाला था। भू-मध्य सागर के तल का अध्यन करने के लिए यह जहाज १ मई को तीन महीने का दौरा शुरू करेगा।

आणविक अनुसन्धान-कार्य

अमेरिका ने १९५८ में २२ अन्य देशों को आणविक भट्ठियों की स्थापना, आणविक अनुसन्धान, प्रशिक्षण और परीक्षण से सम्बन्धित कार्यों में सहायता प्रदान की।

उक्त सूचना सुलभ करते हुए 'एटामिक इन्डस्ट्रीज फोरम इन्कार्पोरेटेड' ने बताया है कि १९५८ में संसार में कल्याणकारी कार्यों के लिए स्थापित आणविक भट्ठियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है।

अमेरिका की ओर से १९५८ में २२ देशों में ४२ आणविक भट्ठियां स्थापित करने की व्यवस्था की गई थी। इन में से १४ भट्ठियां बन कर तैयार हो चुकी हैं तथा शेष २२ भट्ठियों का निर्माण-कार्य चल रहा है।

हिम-युग के सम्बन्ध में खोज

तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों का दल हिम-युग से सम्बन्धित तथ्यों की खोज करने के लिए चिली रवाना हो गया है। दल के सदस्यों को यह आशा है कि वहां के हिमनदों का अध्यन कर वे हिम-युग के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातों का पता लगा सकेंगे और संसार के जलवायु के बारे में भी आवश्यक तथ्य संग्रह कर सकेंगे।

इस अन्वेषी दल में डा० काल्विन जे० ह्यूसेर; डा० अर्नेस्ट एच० मिलर (कार्नेल विश्वविद्यालय) और डा० सोजी होरी (येल विश्वविद्यालय) शामिल हैं।

मानव चालित अन्तरिक्ष यान के निर्माण का ठेका

'नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' ने घोषणा की है कि अमेरिका की एक गैरसरकारी वायु-यान-निर्माता कम्पनी 'मिडोनेल एयरक्राफ्ट' ने अन्तरिक्ष यान के निर्माण का कार्य शुरू कर दिया है। यह वायु-यान मानव-चालित होगा और पृथ्वी की परिक्रमा करने के उपरान्त सही सलामत पृथ्वी पर वापस लौट सकेगा। इस योजना पर १ करोड़ ५० लाख डालर व्यय होने का अनुमान है। इस लागत से १२ अन्तरिक्ष यानों का निर्माण हो सकेगा। यह यान राकेट द्वारा अन्तरिक्ष में छोड़ा जाएगा।

———

सम्पादकीय

भारत और अंतर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष

अंतर्राष्ट्रीय भूभौतिक वर्ष, इस भूमण्डल और इसके वायु-मन्डल के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने का अनेक देशों का संयुक्त का और असाधारण प्रयास था, जो सन् १९५८ के अंतिम दिन समाप्त हो गया। अब हम देख सकते हैं कि भूभौतिक वर्ष के कामों में भारत के वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक संस्थाओं ने क्या योग दिया।

इस प्रयास में जो जो अनुसन्धान हुए हैं, उनका पूरा परिणाम सामने आने में अभी महीनों और वर्षों लगेंगे। क्योंकि विश्व के अनेक भागों में अलग-अलग जो कार्य हुआ है, उसको पहले इकट्ठा करना जरूरी है तभी सही परिणामों का पता चल सकता है।

इस वर्ष में ऋतु विज्ञान, ब्रह्मांड किरणों तथा उपग्रहों आदि १३ प्रमुख विषयों के बारे में नया ज्ञान उपार्जित करने का यत्न किया गया और हर विषय में भारत ने जो काम किया, वह बहुत मूल्यवान माना गया है।

भू-चुम्बकीय भूमध्य रेखा दक्षिण भारत से होकर गुजरती है, इस कारण इसके बारे में भारतीय वैज्ञानिकों के नये अनुसन्धान और अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वर्तमान प्रयोगशालाओं और वेधशालाओं के अलावा भू-भौतिक वर्ष सम्बन्धी भारतीय समिति ने देश के विभिन्न भागों में कई नये अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये।

सूर्य के धब्बों के बारे में भारत में जो अध्यन किया गया, वह वर्ष का उल्लेखनीय कार्य माना जायगा। हैदराबाद और कोदईकनाल की वेधशालाओं में सूर्य पर होने वाले विस्फोटों का रिकार्ड रखा गया। प्रति दिन कोदईकनाल की वेधशाला से सूर्य के विस्फोटों और धब्बों की ताजी जानकारी आकाशवाणी के जरिये भू-भौतिक वर्ष के अन्य केन्द्रों को प्रसारित की जाती थी। आकाशवाणी, ऋतु-कार्यालयों से तथा अन्य स्रोतों से मिलने वाली सूचनाओं को भी प्रसारित करता था।

नैनीताल में, भू-भौतिक वर्ष के सिलसिले में छोड़े जाने वाले उपग्रहों को देखने के लिए एक विशेष प्रकार का कैमरा लगाया गया था। भारत के सर्वेक्षण विभाग और राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला ने अक्षांश और देशान्तर रेखाओं के नापने में सहायता की।

समुद्राशास्त्र के बारे में भी भारत में मूल्यवान कार्य हुआ है। बीस बन्दरगाहों में स्वचालित ज्वार मापक यंत्र लगाये गये और खम्भात की खाड़ी में ३० जगह ज्वार की धाराओं को नापने का काम अब भी चल रहा है। भू-कम्पन के बारे में भी कई स्थानों पर अध्यन किया गया। आगरा में एक विद्युत चुम्बकीय भूकम्प मापक यंत्र लगाया गया था, जिसे भू-भौतिक वर्ष की अवधि के लिए कोलम्बिया के विश्वविद्यालय ने दिया था।

यद्यपि भू-भौतिक वर्ष समाप्त हो गया है, फिर भी इस अवधि में जो काम शुरू किये गये हैं, वे किसी न किसी रूप में जारी रखे जायेंगे।

लेखकों से निवेदन

१—रचना कागज के एक ही ओर स्वच्छ अक्षरों में पर्याप्त पार्श्व एवम् पंक्तियों के बीच में अन्तर देकर लिखी होनी चाहिये। यदि टाइप की हुई हो तो और भी अच्छा है।

२—चित्रों से सज्जित गवेषणापूर्ण लेखों को "विज्ञान" में प्राथमिकता दी जावेगी।

३—प्रेषित रचना की प्रतिलिपि अपने पास रक्खें। आवश्यक डाक टिकट प्राप्त होने पर ही अस्वीकृत रचना लौटाई जावेगी।

४—स्वीकृति की सूचना यथा सम्भव शीघ्र ही दी जावेगी। किसी भी लेख में संशोधन, संवर्धन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—"विज्ञान" में प्रकाशित लेखों पर "विज्ञान" का पूर्ण अधिकार होगा।

नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें—

प्रकाशन विभाग

विज्ञान-परिषद्, विज्ञान-परिषद्-भवन

म्योर कालेज, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान

रजिस्टर्ड सं० ए० ३७२

मार्च १९५९

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

प्रधान सम्पादक—डा० देवेन्द्र शर्मा

प्रकाशक—डा० डी० एन० वर्मा, प्रधान मन्त्री विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

मुद्रक—श्री दीनानाथ भार्गव, तीर्थराज प्रेस, ६३ चक, इलाहाबाद—३।